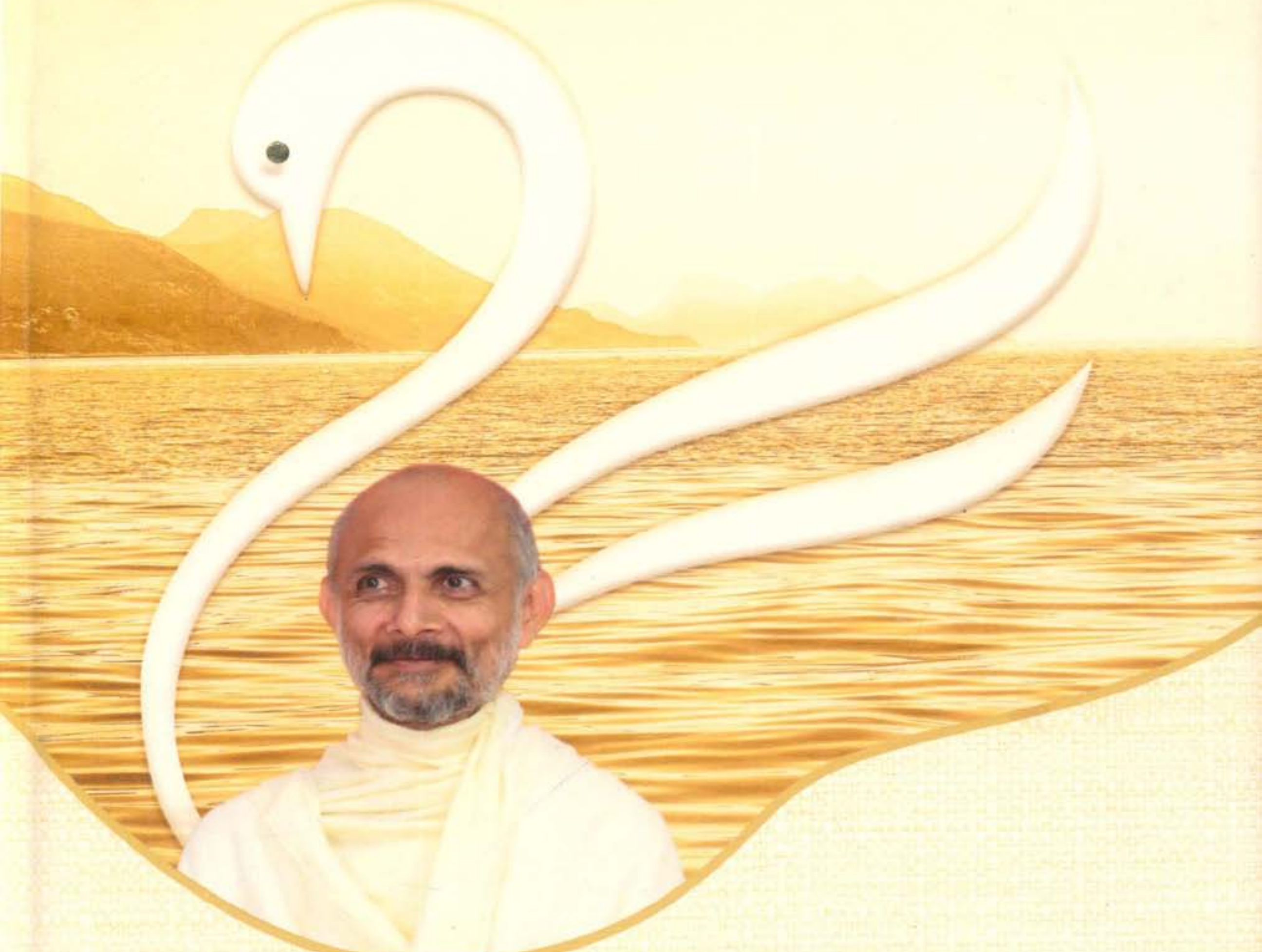

हंसरत्नमहाकाव्यम्

(हिन्दी अनुवाद सहित)

रचयिता
सरस्वतीलब्धप्रसाद-पूज्यपाद-आचार्यदेव-श्रीमद्विजय-रत्नसुन्दरसूरीश्वराणां शिष्यः
मुनिपार्श्वसुन्दरविजयः

उवट्ठिओहं तुब्भण्हं
तव तेयसिरीए...

सिद्धांतमहोदधि पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद्विजय प्रेमसूरीश्वरजी म.सा.

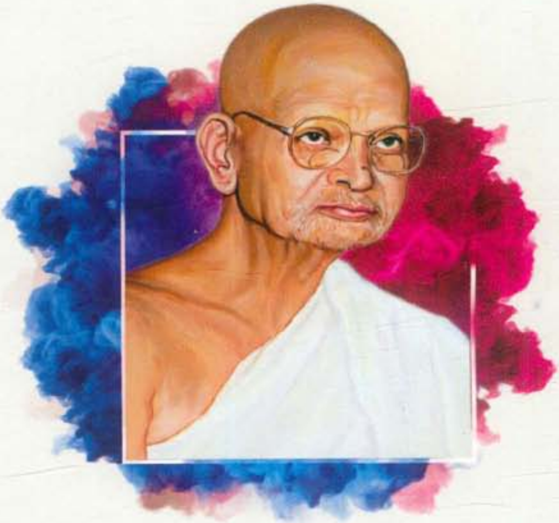

वर्धमानतपोनिधि, न्यायविशारद पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद्विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.

सिद्धांतदिवाकर, गीतार्थमूर्धन्य पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद्विजय जयघोषसूरीश्वरजी म.सा.

संयमैकलक्षी पूज्य मुनिराज
श्री देवसुंदरविजयजी म.सा.

श्रुतसर्जकसम्राट 'पद्मभूषण' प.पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय

रत्नसुंदरसूरीश्वरजी महाराजा की

आचार्यपदवी के २५ वें वर्ष की पूर्णाहुति निमित्त

पुस्तक प्रकाशन के मुख्य लाभार्थी परिवार

प.पू.आ.भ. हंसरत्नसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा से

स्व. विक्रमभाई छोटालाल

स्व. पुष्पाबेन विक्रमभाई

रत्नकुक्षी स्व. पुष्पाबेन विक्रमभाई शाह

(लोद्रावाले) के सुपुत्र

कमलेशभाई की दीक्षा निमित्त

दीना - कमलेश, शीला - जयेश,

प्रतिमा - नितीनकुमार, संजय - हेतल,

अमित - तृप्ति एवं चि. अदित

मातुश्री स्व. शारदाबेन सेवंतीलाल शाह

(पाटणवाले) के आत्मश्रेयार्थ

श्रीमती कनकलत्ता दिनेशभाई

शाह परिवार

पराग-रिना, नीरव-पायल

प्रियांशी, याचना, दियांशी

दिनेशभाई सेवंतीलाल

कनकलत्ता दिनेशभाई

रसिकलाल गफुरचंद

मंजुलाबेन रसिकलाल

श्रीमती मंजुलाबेन रसिकलाल

शेठ परिवार (पालनपुरवाले)

हाल सांताक्रुझ-मुंबई

स्व. प्रेरणाबेन उदाणी

निलेश - हितेश - समीर

सपरिवार

उवट्ठिओहं तुब्भण्हं
तव तेयसिरीए...

प्रशांतमूर्ति गच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

राजप्रतिबोधक, पद्मभूषण पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद्विजय रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.

शासनप्रभावक पूज्यपाद आचार्यदेव
श्रीमद्विजय युगसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.

हंसरत्नमहाकाव्यम्

(हिन्दी अनुवाद सहित)

रचयिता

सरस्वतीलब्धप्रसाद-पूज्यपाद-आचार्यदेव-श्रीमद्विजय-रत्नसुन्दरसूरीश्वराणां शिष्यः

मुनिपार्श्वसुन्दरविजयः

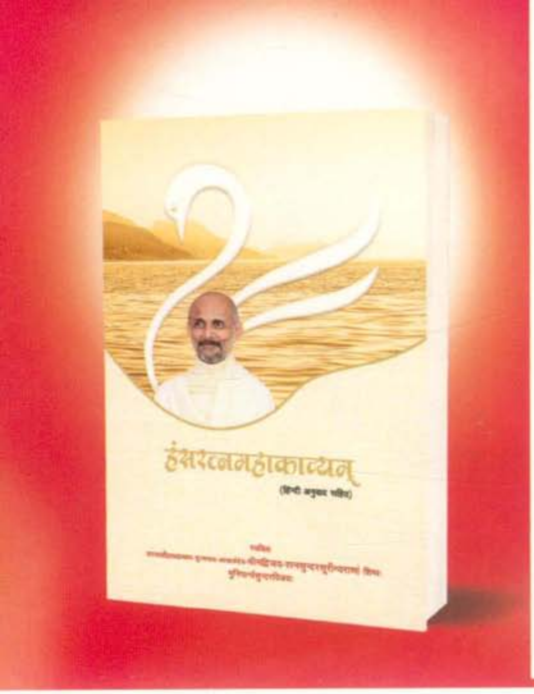

नाम : हंसरत्नमहाकाव्यम्

आशीर्वाद : आचार्यविजयरत्नसुन्दरसूरीश्वराः
आचार्यविजययुगसुन्दरसूरीश्वराः

रचना : मुनिः पार्श्वसुन्दरविजयः

संशेधनम् : मुनिराजश्रीराजसुन्दरविजयाः
मुनिराजश्रीतीर्थबोधिविजयाः

भाषा : संस्कृतम्, हिन्दी ।

: प्रकाशकः - प्राप्तिस्थनं च :

रत्नत्रयी ट्रस्ट
कल्पेश वि. शाह
१४, इलोरा पार्क सोसायटी,
नारणपुरा चार रस्ता,
देरासर के सामने, नारणपुरा,
अहमदाबाद-380013.
फोन : 27680746

रत्नत्रयी ट्रस्ट
प्रवीणकुमार दोशी
२५८, गांधी गली, स्वदेशी मार्केट,
कालबादेवी रोड, मुंबई-400002.
फोन : 22060826

आवृत्ति : प्रथमा

प्रतय : १०००

मुद्रक : नेहज एन्टरप्राईज
१०१, नेहज हाईट्स,
३४ जवाहर नगर रोड नं.४,
गोरेगांव (पश्चिम), मुंबई-400104.
फोन : 022-28736745
मो. 9322227939

समर्पणम्

स्मृति सूरिप्रेम की,
प्रकाश भुवनभानु का,
मार्गदर्शन जयघोषगीता का
और वर्तमान-गच्छाधीश का
बुज्झ बुज्झ का उपदेश...
यह जिनका जीवन-वैभव है वह
साधुसेवातत्पर, स्वाध्यायरसिक
पूज्य मुनिराज
देवसुंदरविजयजी म.सा. के
स्वर्गारोहण रजत वर्ष पर,
तथा
अनंतोपकारी पूज्यपाद गुरूदेव,
सरस्वतीलब्धप्रसाद, राजप्रतिबोधक
आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा. के
सूरिपदारोहण के
रजत महोत्सव पर
उन्हीं की कृपा से सम्पन्न हुई
यह कृति उन्हीं को समर्पित करते हुए
मैं अत्यंत आनंद
अनुभव कर रहा हूं...

मुनि पार्श्वसुंदर विजय

उपकारी अवनितले मोटा...

- जिनका जयवंता शासन दुषमकाल में भी मुझ जैसे बालजीवों को तारने में उपकारक सिद्ध हो रहा है वे आसन्न उपकारी **प्रभु महावीर**
- जिनके ब्रह्मपुंज से विशाल श्रमण-गण का निर्माण हुआ
वे ब्रह्मचर्यसम्राट् पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा**
- जिनके प्रकाश की किरणें हमारे मोह अंधकार को दूर कर देती हैं
वे न्यायविशारद पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा**
- जिनकी गीतार्थता ने सेंकडो शास्त्रीय प्रश्नों के समाधान दिए हैं
वे गीतार्थमूर्धन्य पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा**
- जिनकी प्रशांत छत्रछाया में समुदाय का सुंदर निर्माण हो रहा है
वे वर्तमान गच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा**
- जिनकी स्वाध्यायरसिकता हमारे जीवन का आदर्श है
वे पूज्य मुनिराज **श्री देवसुंदरविजयजी महाराजा**
- जो मेरे जीवननैया के खिवैया हैं
वे अनंतोपकारी, सरस्वतीलब्धप्रसाद पूज्यपाद गुरुदेव आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रत्नसुंदरसूरीश्वरजी महाराजा
- जिनका प्रोत्साहन और आशीर्वाद इस महाकाव्य के सर्जन में मुख्य स्तंभ बने
वे पूज्यपाद गुरुमहाराज आचार्यदेव **श्रीमद् विजय युगसुंदरसूरीश्वरजी महाराजा**
- जिन्होंने मीठी टकोर करके इस महाकाव्य के सर्जन के लिए मुझे प्रेरित किया
वे प्रभावक प्रवचनकार पंन्यासप्रवर **श्री पद्मबोधिविजयजी म.सा.**
- काव्य के विविध प्रकारों में से जिन्होंने मुझे 'महाकाव्य' की रचना करने का सूचन किया और इस महाकाव्य का प्रथम संशोधन किया
वे विद्वद्वर्य पूज्य मुनिराज **श्री तीर्थबोधिविजयजी म.सा.**
- जिन्होंने व्याकरण की दृष्टि से सूक्ष्म संशोधन करके इस काव्य को वास्तव में सुसंस्कृत किया तथा कुछ कुछ काव्य के अनुरुप शास्त्रपाठ भी प्रेषित किये
वे विद्वद्वर्य पूज्य मुनिराज **श्री राजसुंदरविजयजी म.सा.**

- इस काव्य के प्रारंभ से लेकर समाप्ति तक जिनका बहुमूल्य योगदान मुझे प्राप्त हुआ वे पूज्य मुनिराज **श्री वात्सल्यसुंदरविजयजी म.सा.**
- जिन्होंने गुजराती शब्दकोश के माध्यम से गुर्जर-अनुवाद की क्षतियों को दूर किया वे पूज्य मुनिराज **श्री ज्ञानदृष्टिविजयजी म.सा.**
- जिन्होंने सतत सहायता करके मुझे इस सर्जन के कार्य में निश्चिंत रखा वे पूज्य मुनिराज **श्री धरणेन्द्रसुंदरविजयजी म.सा.**
- इस महाकाव्य का सुंदर हिन्दी अनुवाद जिनके द्वारा आलेखित हुआ वे पूज्य साध्वी **श्री संवेगनिधिश्रीजी म.सा.** की शिष्या पूज्य साध्वी **श्री देशनानिधिश्रीजी म.सा.**
- संस्कृत प्रस्तावना प्रेषित करके जिन्होंने इस ग्रंथ को अलंकृत किया वे संस्कृतविशारद, पद्मश्री, **'अभिराज' राजेन्द्र मिश्र**
- दसवें पक्ष के ५२ अलंकारवाले श्लोकों का संशोधन करके जिन्होंने श्लोकों को शुद्ध किया वे विद्वद्वर्य **अमृतभाई पटेल** और विद्वद्वर्य **प्रवीणभाई पंडया**
- इस महाकाव्य को साद्यंत पढकर जिन्होंने आवश्यक सूचन किए वे पंडितवर्य **पारसभाई शाह**
- जिन्होंने संयमजीवन की अनुमति देकर मुझे प्रशस्त मार्ग पर प्रेरित किया वे संसारी पिताश्री **चेतनभाई सूर्यकांतभाई शाह** और संसारी मातुश्री **मयणाबहन चेतनभाई शाह**
- इस संपूर्णकार्य में कदम-कदम पर जिन्होंने मुझे साथ-सहकार और प्रोत्साहन दिया वे उपकारी सहवर्ती मुनिभगवंत...

  पूज्यपाद आचार्यदेव **श्रीमद् विजय पद्मसुंदरसूरीश्वरजी महाराजा**
  पूज्य मुनिराज **श्री भाग्यसुंदरविजयजी म.सा.**
  पूज्य मुनिराज **श्री हृदयसुंदरविजयजी म.सा.**
  पूज्य मुनिराज **श्री परार्थसुंदरविजयजी म.सा.**
  पूज्य मुनिराज **श्री ध्यानसुंदरविजयजी म.सा.**
  पूज्य मुनिराज **श्री निर्दोषसुंदरविजयजी म.सा.**
  पूज्य मुनिराज **श्री श्रेयांसदर्शनविजयजी म.सा.**
  पूज्य मुनिराज **श्री देवर्द्धिसुंदरविजयजी म.सा.**
  पूज्य मुनिराज **श्री आराध्यसुंदरविजयजी म.सा.**
  पूज्य मुनिराज **श्री स्वभावसुंदरविजयजी म.सा.**

25 वाँ प्रतिष्ठा रजत वर्ष

प्रदक्षिणा यत्र मुदा दददभ्य: श्रीदक्षिणां भानुगुरु: प्रदत्ते ।
वयस्य ! तस्य स्मृतिमन्दिरस्य विराजते राजतवर्ष एष: ।।उपजाति:।।

जहाँ आनंद से प्रदक्षिणा देते हुए लोगों को वर्धमानतपोनिधि पूज्यपाद आचार्य भगवंत
श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा कल्याण की दक्षिणा देते है
वह स्मृतिमंदिर का हे मित्र ! यह रजत-वर्ष है ।

प्रशांतमूर्ति सुविशाल गच्छाधिपति प.पू. आचार्यदेव

श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के

आशीर्वचन

मुनिराज श्री पार्श्वसुंदरविजयजी म. योग्य अनुवंदना ।

महान तपसम्राट् आचार्य भगवंत श्री हंसरत्नसूरिजी म.सा. अपने जीवन में आज तक चार बार छमासी तप उपवास, चारमासी तप... आदि तप में एक साथ १६ उपवास के पच्चक्खाण अनुमति लेकर करते थे । जैनशासन के अनेक तपप्रभावकों में वे वर्तमानकाल में तपप्रभावक बने हैं ।

उनके दीर्घतप के प्रभाव से अनेक आत्माएं धर्ममार्ग के प्रति श्रद्धायुक्त बनी हैं । वे तप की आराधना जाप के साथ लगभग मौनपूर्वक करते हैं । उनके तप की अनुमोदना सर्वत्र व्यापक बनी हैं । तप के प्रभाव से अनेक आत्माएं तप में जुडी हैं ।

उनके तपोमय जीवन पर आपने ८०० श्लोकप्रमाण संस्कृतभाषा में 'हंसरत्नमहाकाव्य' की अपूर्व रचना करके उत्तम प्रकार का अर्घ्य अर्पण किया है ।

इस शुभकृति की रचना के लिए मेरे अंतर के आशीर्वाद हैं ।

– આ. રાજેન્દ્રસૂરિના અનુવંદના

दिनांक १६.११.२१, कार्तिक सुदि १२
सांघाणी जैन संघ, घाटकोपर-वेस्ट

गुणानुराग - गुणानुवाद - गुणग्रहण - गुणवान

बाजार में प्रवेश मिलता है पैसे से...
मैदान में प्रवेश मिलता है कौशल्य से..
अखाड़े में प्रवेश मिलता है स्वास्थ्य से...
युनिवर्सिटि में प्रवेश मिलता है बुद्धि से...
परन्तु,
अध्यात्मजगत में प्रवेश मिलता है गुणानुराग से...
कारण ?
संपूर्ण अध्यात्मजगत गुणप्रादुर्भाव का एकमात्र
लक्ष्य लेकर बैठा है। कारण ?
साधक के पास गुणप्रादुर्भाव का यदि लक्ष्य ही नहीं है तो
उसकी तमाम साधनाएं - आराधनाएं और
उपासनाएं मूल्यहीन ही हैं।
और हां! जिस किसी भी साधक के पास
इस गुणानुराग का वैभव है वह साधक
इस वैभव से संतुष्ट नहीं हो जाता।
गुणानुराग का यह वैभव उसे गुणानुवाद के लिए
प्रोत्साहित करता ही रहता है।
गुणानुवाद की उसकी यह सज्जता
उसे गुणग्रहण के लिए सज्ज बनाती रहती है
और गुणग्रहण की उसकी तत्परता
एक मंगल क्षण में उसे स्वयं गुणवान बनाकर ही रहती हैं।

*

मुनिवर हंसरत्नविजयजी।
पंन्यास हंसरत्नविजयजी।
आचार्य हंसरत्नसूरिजी।
मैंने उनकी ये तीनों अवस्थाएं देखी हैं और
जरा भी अतिशयोक्ति के बिना कहूं तो
मैं आज - अभी स्तब्ध हूं। कारण ?

एक समय के कमजोर बीज को
आज मेरे सामने मैं विराट वृक्ष बनकर
खड़ा देख रहा हूं।
एक बार का अनघड़ पत्थर आज नयनाभिराम
प्रतिमा बनकर मुझे आश्चर्यचकित कर रहा है।
स्वजीवन में उन्होंने प्रकट किए तपस्या के यज्ञ की
ज्वालाएं आज आसमान को स्पर्श कर रही हैं।
और उन पावन ज्वालाओं के दर्शन ने ही
सिर्फ आठ वर्ष के संयमपर्याय वाले
मुनिराज श्री पार्श्वसुंदरविजयजी को
उनके गुणवैभव को काव्य में प्रस्तुत करने हेतु
कलम उठाने के लिए मजबूर किया और सज्ज किया।
काव्य में श्लोकों के सर्जन में उन्होंने
छंद - अलंकार - अनुप्रेक्षा आदि का जो मुक्त मन से
उपयोग और प्रयोग किया है
उसका मूल्यांकन तो विद्वज्जन ही कर सकते हैं।
और उसमें भी काव्य के दसवे सर्ग में
उन्होंने अलंकारों का जो रसथाल प्रस्तुत किया है
वह विद्वज्जनों को विस्मयभाव से नृत्य करने हेतु
मजबूर कर दे ऐसा है।

*

मेरे प्रशिष्य मुनिराज श्री पार्श्वसुंदरविजयजी को
इतने आह्लादक काव्यसर्जन के लिए अंतरमन से
बहुत बहुत धन्यवाद तो देता ही हूं परन्तु,
उनके लिए शुभकामना प्रेषित करता हूं कि
आचार्य श्री हंसरत्नसूरिजी के तपोवैभव की
उनके द्वारा की गयी यह प्रशस्ति उनके जीवन में भी
तप के अंतराय को तोड़ने वाली बने और
उसके फलस्वरूप उन्हें शीघ्र अणाहारी पद की प्राप्ति होकर ही रहे।

द: रत्नसुंदरसूरि
आसो वदि ५/२ मुलुंड

"इतिहास" का इतिहास

पं. पद्मबोधिविजय

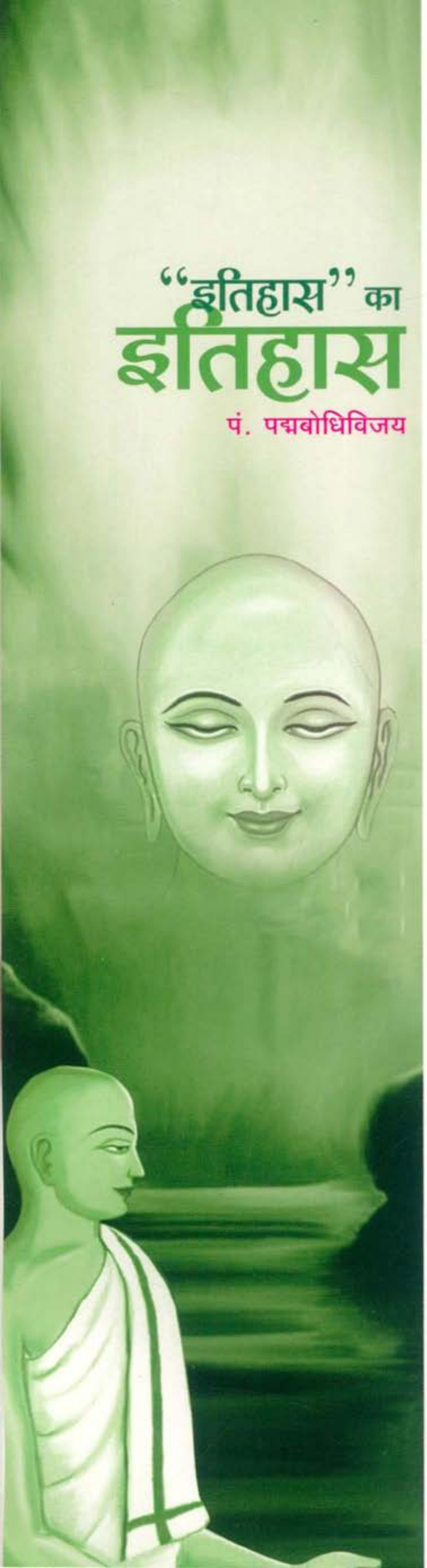

वि.सं. २०७७, संवत इ.स.२०२० का वर्ष, मृगशिर्ष सुदि ६ का दिन था...

रोज की तरह हम श्रमणों की संध्या वाचना थी... वाचनादाता पूज्यपाद आचार्यदेव **श्री रत्नसुंदरसूरीश्वरजी महाराजा** थे।

उनकी वाचना रसपूर्ण रहती थी... कुछ दिन पहले से ही दिव्यतपस्वी पूज्य आचार्य विजय **श्री हंसरत्नसूरीश्वरजी महाराज** के तीसरी बार के १८० उपवास के पारणे की आवाज गुंज रही थी...

और यह कोई व्यक्तिगत अथवा किसी एक समुदाय की सिद्धि का प्रसंग नहीं था अपितु, समग्र जैनशासन के गौरव का प्रसंग था... युगों युगों तक याद रहे ऐसा ऐतिहासिक यह अवसर था।

ये सारी बातें उस संध्या वाचना के समय हो रही थी...

पू.आ. वि. हंसरत्नसूरिजी म.की चरम कक्षा की तप की सिद्धि और साधना को देखने के बाद कई समय से मन में एक विचार घूम रहा था... इस तपस्वी की तपयात्रा का एक संस्कृत ग्रंथ या काव्य बनना चाहिए, उनका जीवन आनेवाले समय तक पहुंचना चाहिए...

संस्कृत भाषा दैवी भाषा है... परंपरा से यह चली आ रही है... वह उसके असली स्वरुप में आज भी अचलता से सुरक्षित है...तो क्यों न इस दिव्यतपस्वी सूरिवर का एक संस्कृत काव्य रचा जाए ? उनकी तपस्या का इतिहास समाविष्ट हो ऐसा एक संस्कृत काव्य क्यों नहीं बन सकता ?

मैंने मेरे मन की बात मेरे शिष्य मुनिराज **श्री तीर्थबोधि वि.म.** से कही... परन्तु, वे अन्यान्य अनेक कार्यों में व्यस्त होने से इस काव्यनिर्माण के कार्य में विलंब हो रहा था... तब इस संध्यावाचना में पूज्यश्री पारणा प्रसंग की, तपस्या की भरपूर अनुमोदना कर रहे थे... वहां मैंने प्रस्ताव रखा काव्य निर्माण का और कहा, ''गुरुदेव ! इस तपस्वी की भीष्म तपस्या तो एक ऐतिहासिक दस्तावेज है, उसे अमर करना हो तो उसका संस्कृत काव्य बनना चाहिए... नाभिनंदन जीर्णोद्धार प्रबंध एक ऐसे ही नज़रों से देखे हुए अहवाल का संस्कृत ग्रंथ है... जिसके द्वारा तत्कालीन इतिहास सुरक्षित हो गया है... और यह कार्य मुनिराज श्री पार्श्वसुंदर विजय महाराज करने में सक्षम है। मेरी विनंति है कि आप आशिष और आदेश दीजिए कि वे इस ऐतिहासिक काव्य को संस्कृतभाषा में आलेखित करें... !''

वह दिव्य घडी और दिव्य क्षण होगी ! बात-बिनति का स्वीकार हुआ.... इस ऐतिहासिक घटना को संस्कृत भाषा में काव्यात्मक रुप में रचने के आदेश का कलश मुनिराज **श्री पार्श्वसुंदर विजय महाराज** के मस्तिष्क पर गजराज ऐसे सूरिराज ने प्रवाहित किया... मुनिवरों ने जयकारे के साथ इस कलशाभिषेक को बधाया... और उसके परिणाम स्वरुप आज एक ऐतिहासिक अवसर को शाश्वत बना देनेवाला संस्कृत भाषा का काव्य निर्माण पाकर संस्कृत साहित्यजगत का एक नजराना बन गया है..

- यह संस्कृत ग्रंथ ''महाकाव्य' के प्रकार में रचा गया है...
- दस पक्ष और ८०० से अधिक श्लोकों के विस्तारवाला यह ग्रंथ है...
- मस्तक को डोलायमान कर दे और कभी-कभी मन को मंत्रमुग्ध बना दे ऐसे श्लोक, उत्तम कल्पनाएं और भाषा की ग्रंथनकला से समृद्ध यह महाकाव्य है...

प्रत्येक पक्ष के प्रारंभ में जो एक-एक श्लोक है वह विशेषरूप से निहारने योग्य है...

उसमें तृतीय पक्ष की समाप्ति के बाद ''एकाक्षरकाव्यम्' का जो श्लोक है वह तो काबिलेदाद है... इन सभी श्लोकों में काव्यसर्जक मुनिराजश्री की शक्ति और भक्ति, प्राप्ति और प्रीति पूर्णरूप से बहती हुई दिखाई दे रही है...

- दीक्षा जीवन के सिर्फ आठ वर्ष के पर्याय में गुरुदेव का शक्तिपात कैसा चमत्कार कर सकता है वह इस मुनिवर द्वारा रचे गये एक एक श्लोक में साक्षात् देखने मिल रहा है...
- १० पक्ष के प्रारंभ में रचे गये ये दस श्लोक इस मुनिवर को संस्कृतविश्व में विख्यात बनाने के लिए सक्षम हैं...

धन्य हे मुनिवर के पुरुषार्थ को, प्रज्ञा को !

प्रथम पक्ष के प्रारंभ में **''अनुलोम-विलोमकाव्य''**
द्वितीय पक्ष के प्रारंभ में **''कर्तृगुप्त श्लोक''**
तृतीय पक्ष के प्रारंभ में **''अन्तरालाप''**
चतुर्थ पक्ष के प्रारंभ में **''एकाक्षर काव्यम्''**
पंचम पक्ष के प्रारंभ में **''क्रियापदगुप्तश्लोक''**
षष्ठ पक्ष के प्रारंभ में **''द्विसंधानकाव्य''**
सप्तम पक्ष के प्रारंभ में **''कल्पनाकाव्य''**
अष्टम पक्ष के प्रारंभ में **''यन्त्रकाव्य''**
नवम पक्ष के प्रारंभ में **''चित्रकाव्य''**
दशम पक्ष के प्रारंभ में **''तुरगपद''**

ये सारे श्लोक संस्कृत विशारदों के हृदय और आंखों को आकर्षित करने में पूर्णरूप से सक्षम सिद्ध होंगे !

हंस को सैंकडो पंख होते हैं वैसे ही आ.वि. हंसरत्नसूरिजी म. के जीवन में भी अनेक गुणरूपी पंख हैं । उनमें से दस पंखों की यहां विभाग के रूप में कल्पना करके प्रस्तुत किए हैं और इसीलिए सर्ग के स्थान पर 'पक्ष' शब्द का उपयोग किया है ।

- प्रत्येक पक्ष में एक-एक प्रकरण का अत्यंत सुंदररूप से वर्णन किया गया है ।

प्रथम पक्ष...

श्री प्रेम-भुवनभानुसूरि समुदायरूपी महावृक्ष का जहां और जब बीजाधान हुआ उस मंगल पल-स्थल का आलेखन तथा इस समुदाय के नींव के पत्थर बननेवाले युवा मुनिभगवंतों का वर्णन इस पक्ष में देखने मिलेगा ।

- यह महाकाव्य मानो दस गर्भगृह से युक्त एक महामंदिर है । उसके एक-एक गर्भगृह का विहंगावलोकन करने जैसा हैं ।

दूसरा पक्ष...

इस पक्ष में लोक की वृक्ष के साथ तुलना की गयी है और तदनुरूप चार गति आदि का वर्णन किया गया है । इस पक्ष में भारतदेश-गुजरात राज्य और कच्छ जिले का काव्यात्मक वर्णन किया गया है तथा हरिभाई (चरित्रनायक का संसारी नाम) के जन्म का वर्णन है ।

तीसरा पक्ष...

इस पक्ष में हरिभाई को होनेवाली सद्‌गुरु की प्राप्ति, मुमुक्षु अवस्था और दीक्षा का वर्णन किया गया है । इस पक्ष में आठ श्लोक समसंस्कृत (=प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषात्मक) हैं और अन्य आठ श्लोक अर्धसंस्कृत (प्रथम और तृतीय पाद संस्कृत में तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद प्राकृत में) हैं । इस महाकाव्य के महामंदिर के प्रत्येक गर्भगृह की एक अनोखी विशेषता है ।

चौथा पक्ष...

इस पक्ष में चरित्रनायकश्री का प्रारंभिक दीक्षाकाल बताया गया है । लालबाग के प्रथम चार्तुमास में मुनिराज (वर्तमान में आचार्य) रत्नसुंदरविजयजी म.सा. ने बालमुनियों को जो वाचना दी थी वह इस पक्ष में गेयकाव्य के रूप में रखी गयी है । चरित्रनायकश्री प्रारंभिक दीक्षाकाल में कैसे उछलते उत्साह से ग्लान मुनिवरों की सेवा करते थे इसका वर्णन इस पक्ष में है ।

पांचवां पक्ष...

इस पक्ष के प्रारंभ में सूर्य और चंद्र का रोचक संवाद है । कविराज ने सूर्य और चंद्र के मुख में शब्द रखे हैं । चरित्रनायकश्री की पंन्यास पदवी का वर्णन है । तप के इस महापंथ के मुसाफिर बनने का मनोरथ कैसे जगा उसका वर्णन है ।

छट्ठा पक्ष...

इस पक्ष में चरित्रनायक दिव्यतपस्वी द्वारा सर्वप्रथमबार किये गये मासक्षमण का वर्णन है तथा देह और आत्मा के भेदज्ञान की बात है और तपयात्रा के नये नये शिखरों को सर करने की उनकी भावना दर्शायी है ।

काव्यमंदिर के एक एक गर्भगृह को निहारने पर ऐसा लगता है कि काव्यसर्जक मुनिवर की कल्पना-बुद्धि और क्षमता भी क्रमशः निखरती जा रही है ।

सातवां पक्ष...

इस पक्ष में चरित्रनायकश्री द्वारा किये हुए सर्वप्रथमबार के १८० उपवास का वर्णन है तथा मुंबई में आयोजित इस तप के एतिहासिक पारणोत्सव का सुदीर्ध वर्णन है । किसी जिनालय की अत्यंत सुंदर पुतलियों के समान प्रहेलिकाएं इस पक्ष की शोभा है ।

आठवां पक्ष...

इस पक्ष में चरित्रनायकश्री के तप और जप का तथा चरित्रनायकश्री के सूरिपदोत्सव का वर्णन है ।

इस पक्ष में मुनिवरश्री की सृजनात्मकता १०८ श्लोकों के रूप में बरस पड़ी है । सबसे बड़े पक्ष का गौरव इस पक्ष को मिला है ।

नौवां पक्ष...

इस पक्ष की विशिष्टता यह है कि इसमें एक भी अनुष्टुप छंद नहीं है । इस पक्ष में विश्वभर में हाहाकार मचानेवाले ''कोरोना वायरस'' का तथा ''लोकडाउन''का वर्णन है । आनेवाली सदी के इतिहासकारों के लिए यह ग्रंथ और यह पक्ष साक्ष्य बन जाएगा । इसमें कोरोनाकाल में किऐ हुए १८० उपवास का तथा उसके पारणोत्सवं का वर्णन है ।

दसवां पक्ष...

इस पक्ष में विविध अलंकारवाले श्लोकों से चरित्रनायक आ.वि. हंसरत्नसूरिजी म.की स्तवना की गयी है तथा श्री प्रेम-भुवनभानुसूरि समुदाय का एक रास आलेखित है ।

- प्रत्येक पक्ष के श्लोको की संख्या ''९'' के अंक में आए ऐसी है जैसे कि -६३-५४-७२-८१-९०-६३-८१-१०८-५४-९९ । नौ अंक को प्राधान्य देकर नवपदजी की एक अंकभक्ति की गयी है ।
- एक कुशल-काबिल शिल्पी की अदा से काव्यसर्जक मुनिवर ने इस काव्यशिल्प की रचना की है ।
- सरस्वतीलब्धप्रसाद गुरूदेवश्री के मंगल आशिष,
- परोपकाररत गुरुमहाराजश्री के अंतरमन के आशिष,
- सहवर्ती और समुदायवर्ती अनेक मुनिवरों की शुभकामना

इन सब के प्रताप से तथा काव्यसर्जक मुनिवरश्री पार्श्वसुंदर विजय म.की मेहनत-पुरूषार्थ ने ऐसी रंगोली रची है कि जिसे देखने-पढने अनेक आंखें तरस उठेगी ।

- युवावस्था में कदम बढा रहे इस मुनिवर से अब अपेक्षा रहेगी कि ऐसे सर्जन आप शासन के चरणों में अर्पण करके संघ शासन समुदाय को समृद्ध बनाइए ।

''नाभिनंदन जीर्णोद्धार प्रबंध'' में उल्लेख मिलता है कि प्रभु आदिनाथ की प्रतिष्ठा के समय दो मुनिवरों ने १८० उपवास किये थे ।

मुनिवर श्री रत्नसागरजी म.सा. और मुनिवर श्री जयमंडन वि.म.सा.

उसके बाद के समय में शायद किसी ने १८० उपवास किये हों तो चंपा श्राविका ने ।

और इस युग में ४-४ बार १८० उपवास करनेवाले यह चरित्रनायक सूरिवर एकमात्र अजोड़ हैं ।

अभी भी उनकी तपयात्रा बिना रूके आगे बढ रही है ।

यह प्रस्तावना लिख रहा हूं तब उनका ९०वां उपवास है । इस काव्यसर्जक मुनिवर से इस महाकाव्य के उत्तरार्ध की अपेक्षा और प्रतीक्षा रहेगी ही, क्योंकि चरित्रनायक सूरिवर आगे भी उनके इस महामार्ग पर अनेक सीमाचिह्न छोड जानेवाले हैं ।

यह इतिहास आनेवाली पीढी के लिए लिखना जरुरी है...

किसी ने लिखे हुए इतिहास में से हम उजियारा प्राप्त करते हैं तो आज लिखे हुए इतिहास से अवश्य कोई जीवन उज्ज्वल बनेगा !

यह महाकाव्य भव्यजीवों के मनमंदिर में प्रतिष्ठित हो ऐसी शुभेच्छा !

आसोज वदि-७, गुरूवार
गुरुपुष्यामृत नक्षत्र
सुरत

राष्ट्रपतिसम्मानितः, महामहोपाध्यायः,
सम्पूर्णानन्दविश्वविद्यालस्य पूर्वकुलपतिः,
पद्मश्रीः, प्रो०''अभिराज'' राजेन्द्रमिश्रः ।

नान्दीवाक्

नित्यशस्यप्रसविनी रत्नगर्भा धरित्रीव संस्कृताख्या देववाण्यपि सन्ततमेव साहितीशस्यं प्रसूते । प्रत्नकाले तु सैवाऽऽसीद् राष्ट्रभाषा विश्वभाषा विदग्धजनभाषा च । अद्याप्यागत्या सैव वर्तते भारतस्य राष्ट्रभाषा हिन्दीविवादवशात् । वृन्दारकवाण्यां स्निह्यन्ति सर्वे । तस्यां श्रद्धावन्तस्सर्वे । किमतः परमाश्चर्यं यत्तस्यां भाषायां स्वातन्त्र्यप्राप्तेरनन्तरमेव प्रायशः शतमितानि महाकाव्यानि प्रणीतानि प्रणीयन्ते च । यावदेकस्य लोकार्पणं जायते, तावत्पञ्चषाणि प्रत्यग्रं रचितानि श्रूयन्ते । अहो तु समासमीनेव गौरिव प्रतीयते संस्कृतगीः ।

तत्रापि परिवर्तितं सम्प्रति महाकाव्यानां लक्षणम् । तच्च मया स्वोपज्ञे नव्यकाव्यशस्त्रेऽ**भिराजयशोभूषणे** सविस्तरं निरूपितम् । एवं गुणविशिष्टाऽभिनवमहाकाव्येषु नवीनतमं वर्तते श्रीमन्मुनिपार्श्वसुन्दरविजयप्रणीतं दशसर्गात्मकं **हंसरत्नमहाकाव्यम् ।** महाकाव्येऽस्मिन् कविः तपागच्छाचार्यश्रीप्रेमभुवनभनुजयघोषराजेन्द्रसूरि-देवसुन्दरविजय-रत्नसुन्दरयुगसुन्दरसूरिधर्मपरम्पराप्रवर्तकं दिव्यतपस्विनं पूज्यपादाचर्य-विजयहंसरत्नसूरीश्वरमभिलक्ष्य तज्जीवनचरितञ्च प्रकाशयितुकामः स्वप्रातिभं कवित्वं समभिव्यनक्ति ।

महाकाव्यस्यास्य शब्दशास्त्रनिकषपरीक्षितकाञ्चनपदबन्धः कस्यापि पाण्डितीमण्डितस्य पाठकस्य समीक्षकस्य वा चित्तमाबन्धं प्रभवति । क्वचिद् भट्टिकाव्ययुधिष्ठिरविजय (धातुकाव्य)-दिशा व्याकरणपाटवप्रदर्शनम्, क्वचिच्च मन्दारमरन्दचम्पूदिशाऽलङ्काराणां निदर्शनम्, क्वचित्पुनर्दण्डिदिशाऽनुलोमविलोमादिचित्रकाव्यरूढिप्रभेदप्रदर्शनम् । कवितल्लजः पार्श्वसुन्दरविजयः स्वकवित्वसामर्थ्यं प्रकृष्टोत्कृष्टशास्त्रज्ञानं पारम्परिककाव्यसरणिसञ्चरणपटुत्वञ्चेति त्रितयमपि युगपत् प्रदर्शयन् समुद्घोषयतीव- हंहो कलिकालजाः साहित्यसेविनः ! संस्कृतभाषेयं चिरनवीना सत्यपि चिरपुराणी । अद्याप्यस्यां जीवन्ति कालिदासभवभूतिदण्डिबाणधनपालहेमचन्द्ररामचन्द्रहस्तिमल्लादयः तिरस्कृत्यात्मानम् ।

भवतु । जीवनचरितात्मकं महाकाव्यमिदं **जयोदयादि**वर्त्माऽनुहरत् स्वीयैरनितरसाधारणैर्वैशिष्ट्यैः मनांस्यावर्जयति सचेतसाम् । तत्रादौ कविः मङ्गलनादशीर्षके पूर्वाचार्येभ्यो नमोवाकं प्रशास्ति । तत्र वर्धमानगौतमभारतीप्रेमभुवनभानुजयघोषराजेन्द्रसूरि-देवसुन्दरविजय-रत्नसुन्दरयुगसुन्दरसूरिगुरुव्रातं सप्रणामं संस्मृत्य कविः श्रीहंसरत्नाह्वमुनीशकाव्यमवतारयति । ततश्च प्रथमसर्गे श्रीप्रेमसूरिभानुविजयवृत्तमुपकल्प्य श्रीभानोर्युवदीक्षां चोपवर्ण्य तदीयमवदानं प्रशंसति शब्दच्छलेन-

सप्तहया न विद्यन्ते नास्ति चारुणसारथि : ।
तथाप्युदयमाप्तोऽयं भानुर्लोकस्य वर्चसे ॥

तस्यैव देशिकोत्तमस्य श्रीभानोरन्तेवासी आसीत् श्रीमान् विजयहंसरत्नसूरीश्वरः यं स्वमहाकाव्ये नायकीकरोति पार्श्वसुन्दरकविः । नाऽत्र जीवनघटनानां प्राचुर्यम् । यतो हि नायकोऽत्र मुमुक्षुः, साधुः, विरक्तः, श्रमणः श्रेयोमार्गाधिरूढश्च ।

गृहस्थनामेव जीवनं पुनर्भवति उच्चावचघटनाकदम्बकपर्याकुलम्, न पुनर्विरागिणाम् । तेषां तु जीवनमेकप्रख्यमेकरसं, प्रायशो निर्घटनमेव सन्दृश्यते । वस्तुतस्तेषां लोकोद्धारसरणिरेव मिथो भिद्यते, तेषां तपो भिद्यते । तत्रैव दृश्यते शबलत्वम् । तया दृष्ट्यैव महाकाव्यमिदं महीयते । यतो ह्यसाधारणं हंसरत्नचरितं भाति ।

काव्ये प्रथन्तां नाम वक्रोक्त्यौचित्यध्वनिप्रभृतीनि तत्त्वानि परन्तु काव्यशरीरमेव तत्र सर्वप्रथममाकर्षति। तत एवाचार्यवामनो रीतिमेव काव्यसर्वस्वं मनुते। रीतिर्भवति काव्यपदबन्धः, पदसंघटना वा । सा पदसंघटना महाकाव्येऽस्मिन् पदे पदे प्रभविष्णुतां प्रकटयति । क्वचिद् भाषासमकं, क्वचित् कर्तृगुप्तिं, कवचिदनुप्रासच्छटा, क्वचिन्नामधातुप्रयोगः, क्वचित्पुनश्चित्रबन्धरसालङ्काराः । कवेः शाब्दीं प्रौढीं, पदशय्यां, पाकदाक्ष्यं, विन्यास-विदग्धरीतिश्च पाठं पाठं मुग्धोऽस्मि जातः । **एतादृशा अपि समर्थाः कवयो जीवन्ति मम युगे इति कृत्वा महान्तमभिमानभारमपि समुद्वहामि ।** अस्य महाकाव्यस्य विषये वस्तुतः पुष्कलं वक्तव्यं वर्तते । परन्तु नात्राऽवसरः । केवलं पद्यमेकं प्रस्तूय तत्प्रतिभां प्रणौमि-

वह्निर्नीरति शर्वरी दिवसति श्वानश्च शार्दूलति
खद्योतो हरिदश्वति ज्ञति जडः पङ्गुस्तथाऽऽशुगति ।
शल्यं पुष्पति सर्षपो नगति रे ! मूढो वदान्त्यत्यहो !
किं किं गुर्वनुकम्पया भवति नो ? या सर्वसिद्धिप्रदा ॥

एभिरेव मिताभिप्रायवचोभिर्महाकाव्यस्यास्य कर्तुश्चास्य संस्कृतसाहितीजगती पक्षतो भूयो भूयोऽभिनन्दनं करोमि ! किञ्च-

हंसरत्नमुनिर्गेयो गाता च पार्श्वसुन्दरः ।
राजसुन्दर आशंसी काव्यं तदभिराजते ॥

सप्रणयम्
-पद्मश्रीः, मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः ।
शिमला, ११.११.२१.

जीवितमहाकाव्यम्

काव्यम् !

यस्मिन् लालित्यं स्याद्, माधुर्यं स्याद्, रसः स्याद्, लयः स्याद्, नैसर्गिकता स्याद्, ओजः स्याद्, अलङ्काराः स्युः, छन्दांसि स्युरित्यादि । दिव्यतपस्विनं पूज्याऽऽचार्यविजयहंसरत्नसूरिणं विलोक्याऽऽभाति यदुत तस्मिन्नपि काव्यमेकं समाविष्टमस्ति...

सहजताया लालित्यं,
माङ्गलिकस्य माधुर्यं,
वैराग्यस्य रसः,
जापस्य लयः,
स्वभावस्य नैसर्गिकता,
सत्त्वस्य ओजः,
आत्मगुणरूपा अलङ्काराः,
तपसां विविधछन्दांसि...

एतत् काव्यं यस्मिन् समाविष्टमस्ति स हंस एतस्मिन् महाकाव्यमानसे विलसन् दरीदृश्यते ।

समन्तात् पर्यालोच्य एष हंसः स्वेतरभिन्नो विभाति मे....

- अस्यानशनमेव अशनं, न तु मुक्ताफलम् ।
- असौ विवेक्ति सारासारं, न तु क्षीरनीरम् ।
- अयं रज्यति ध्यानलीलायां, न तु जलक्रीडायाम् ।
- एषोऽन्तर्विहारी, न तु जल-स्थल- नभस्तलविहारी ।
- अस्य सविधे ॐकारः श्रूयते, न तु क्रेङ्कारः ।

अहो ! विलक्षणमस्य चरितम् ।

द्विवर्षपूर्वे पूज्यगुरुदेवैः सह विहरमाणा वयं खरडी-विहारधमनि समागताः । तत्र दिव्यतपस्विनो महत्तपः प्रचलदासीत् । द्वात्रिंशदुपवासोपरि स तस्मिन् दिने पूज्यगुरुदेवसविधे नूत्नप्रत्याख्यानं जिघृक्षितवान् । पूज्यगुरुदेवैः सह सर्वेऽपि जिनचैत्ये चैत्यवन्दनं कृतवन्तः । प्रत्याख्यानावसरे पूज्यगुरुदेवा अवदन्- हंसरत्न ! अद्य भवान् पारणकं करोत्वित्यहमिच्छामि ।'' पूज्यगुरुदेवानां वचनमङ्गीकृत्य स पारणकमकरोत् । दिव्यतपस्विनस्तद्दिने दिव्यसमर्पणमप्यनुभूतम् ।

अस्य जीवतो महापुरुषस्य एवंविधा बहवः प्रसङ्ग कर्णोपकर्णतया श्रुताः, प्रत्यक्षं दृष्टाश्च । एते प्रसङ्गाः सर्वेषां कृते प्रेरणाऽऽस्पदाः सन्ति ।

यथा प्रभोर्विद्यमानतायां निर्मिता प्रतिमा जीवितस्वामित्वेन प्रख्यायते तथेदं दिव्यतपस्विनो विद्यमानतायां निर्मितं महाकाव्यमपि जीवितमहाकाव्यत्वेन प्रख्यास्यत इति मे प्रत्ययः ।

गते वर्षे पद्मभूषणपुरस्कृत-परमोपकारि-पूज्यपादगुरुदेव-आचार्यभगवत्-श्रीमद्विजय-रत्नसुन्दरसूरीश्वराणां, कार्यकुशल-पूज्यगुरुमहाराज-आचर्यदेव-श्रीमद्विजय-युगसुन्दर-सूरीश्वराणां च कृपामासाद्य काव्यसृष्टेरुपक्रमः कृतः ।

प्रत्येकपक्षेऽहं प्रत्यग्रां संवेदनामनुभूतवान् । पूज्यदिव्यतपस्विनि अहोभावो मे नितरां प्रवृद्धः । प्रतिपदं कल्पनाजगतः सौन्दर्यमाविरभवत् । काव्यसृष्टेरेष आह्लादश्चिरं स्थास्यति ।

पूज्यपादगुरुदेवा अस्य महाकाव्यस्य मुखं स्वस्य आमुखं प्रदाय अलङ्कृतवन्तः । पूज्यगुरुदेवानामाशीर्वचनमस्य ग्रन्थस्य गौरवमस्ति ।

पूज्यगुरुमहाराजानामपि अस्मिन् महाकाव्यसर्जने महानुपकारो वर्तते प्रेरितवन्तस्तेऽपि प्रतिपदं माम् ।

अस्या महाकाव्यसृष्टेः फलत्वेन पूज्यदिव्यतपस्विनि वाचकानामनुरागो वरीवर्धेत, अहं च पूज्यदिव्यतपस्विनो गुणांशान् प्राप्नुयामिति भावयामि ।

प्रान्ते, महाकाव्येऽस्मिन् मया यत्किमपि हीनमधिकं वा लिखितं स्यात्, पूज्यदिव्यतपस्विन आशयविरुद्धं, जिनाज्ञाविरुद्धं वा लिखितं स्यात्तर्हि तत्कृते मिथ्या-दुष्कृतं याचे ।

गुरुचरणरजः,
मुनिपार्श्वसुन्दरविजयः ।
दीपालिकादिनम्, वि.सं.२०७७
मङ्गलापुरी (मुलुंड)

अनुक्रमणिका

क्रम	विषयः	विषय	पत्राङ्कः
१)	मङ्गलनादः ।	मंगलनाद ।	१-७
२)	अनुलोम-विलोमकाव्यम् ।	अनुलोम-विलोमकाव्य ।	९
३)	प्रथमपक्षे, महागच्छतरोः बीजन्यासः ।	पहले पक्ष में-महागच्छरूपी वृक्ष के बीज आरोपित हुए ।	१०-२५
४)	दीक्षितानां युवसाधूनां स्वरूपम् ।	दीक्षित युवा-मुनिभगवंतों का स्वरूप ।	२६-३१
५)	कर्तुगुप्तश्लोकः ।	कर्तृगुप्त श्लोक ।	३३
६)	द्वितीयपक्षे लोकवृक्षः ।	दूसरे पक्ष में लोकवृक्ष ।	३४-३९
७)	जन्मभूमिः, जननी जनेतारौ च ।	जन्मभूमि, जननी और जनेता ।	४०-४५
८)	जन्मोत्सवः ।	जन्मोत्सव ।	४६-४९
९)	अन्तरालापः ।	अन्तरालाप ।	५१
१०)	तृतीयपक्षे हरेः सद्गुरुप्राप्तिः ।	तीसरे पक्ष में- हरि की सद्गुरु-प्राप्ति ।	५२-६५
११)	हरेः प्रव्रज्याग्रहणम् ।	हरि की दीक्षा ।	६६-७५
१२)	एकाक्षरकाव्यम् ।	एकाक्षरकाव्य ।	७७
१३)	चतुर्थपक्षे मुनिहंसरत्न-विजयस्य संयमनन्दनम् ।	चौथे पक्ष में मुनि हंसरत्नविजय का संयमजीवनरूपी नंदनवन ।	७८-९०

क्रम	विषयः	विषय	पत्राङ्कः
१४)	साधूनां शुश्रूषा ।	साधुभगवंतों की सेवा ।	९०-१०३
१५)	क्रियापदगुप्तश्लोकः ।	क्रियापदगुप्त श्लोक ।	१०५
१६)	पञ्चमपक्षे सूर्याचन्द्रमसोः संवादः ।	पांचवें पक्ष में सूर्य और चंद्र का संवाद ।	१०६-१२१
१७)	मुनिहंसरत्नविजयस्य दीक्षितः परिकरः ।	मुनि हंसरत्नविजयजी का दीक्षित परिवार ।	१२२-१२५
१८)	पन्न्यासपदवी, तपोविचारश्च ।	पंन्यासपदवी और तप का विचार ।	१२४-१३५
१९)	द्विसन्धानकाव्यम् ।	द्विसंधानकाव्य ।	१३७
२०)	षष्ठपक्षे प्रथम- मृत्युञ्जयतपः, देहाऽऽत्मनोर्भेदविचारः ।	छट्ठे पक्ष में प्रथम मासक्षमण और देह-आत्मा के भेद का विचार ।	१३८-१५३
२१)	महातपसो भावना मुम्बापुरीवर्णनं च ।	बड़े तप की भावना और मुंबईनगरी का वर्णन ।	१५४-१५९
२२)	कल्पनाचित्रम् ।	कल्पनाचित्र (काव्य)	१६१
२३)	सप्तमपक्षे अशीत्युत्तर शतोपवासरूपमहातपः ।	सातवें पक्ष में, १८० उपवास की तपस्या ।	१६२-१६८
२४)	प्रहेलिकात्रयम् ।	तीन प्रहेलिका ।	१६८-१७७
२५)	पारणकमहोत्सवः ।	पारणा महोत्सव ।	१७८-१८९
२६)	यन्त्रकाव्यम् ।	यन्त्रकाव्य ।	१९१
२७)	अष्टमपक्षे, दिव्यतपस्विनस्तपःप्रमाणम् ।	आठवें पक्ष में-दिव्य तपस्वी के तप का प्रमाण ।	१९२-१९७

क्रम	विषयः	विषय	पत्राङ्कः
२८)	गुणरत्नसंवत्सरतपः ।	गुणरत्नसंवत्सरतप ।	१९८-२०८
२९)	सूरिपदाऽऽरोहणम् ।	सूरिपद पर आरुढ हुए ।	२०८-२१३
३०)	पञ्चप्रस्थानाऽऽराधना ।	पंच प्रस्थान की आराधना ।	२१२-२१५
३१)	सूरीणां जपनप्रमाणम् ।	सूरिदेव द्वारा किये गए जाप का प्रमाण ।	२१४-२२१
३२)	सूरीणामुपदेशः ।	सूरिभगवंत का उपदेश ।	२२०-२२९
३३)	चित्रकाव्यम् ।	चित्रकाव्य ।	२३१
३४)	नवमपक्षे महामारिः, लोकबन्धश्च ।	नौवे पक्ष में महामारि और लोकडॉउन ।	२३२-२५३
३५)	चतुर्थवारस्य षाण्मासिकतपः ।	चौथी बार के १८० उपवास ।	२५४-२५५
३६)	तुरगपदम् ।	तुरगपद ।	२५७
३७)	दशमपक्षे, अलङ्कारहंसः ।	दसवे पक्ष में अलंकार हंस ।	२५८-२८५
३८)	प्रेमभुवनभानुसूरि-समुदायरासः ।	प्रेम-भुवनभानुसूरि समुदाय का रास ।	२८६-२९९
३९)	उपसंहारः ।	उपसंहार ।	२९८-३०१
४०)	प्रशस्तिः ।	प्रशस्ति ।	३०२-३०७

	णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स	
	अनन्तलब्धिनिधान-श्रीगौतमस्वामिने नमः || || गणसम्पत्समृद्धाय श्रीसुधर्मस्वामिने नमः	
	गणधराऽऽननमण्डपनर्तक्यै श्रीसरस्वतीदेव्यै नमः	
	तपागच्छाऽऽचार्य-श्रीप्रेम-भुवनभानु-जयघोष-राजेन्द्रसूरि-देवसुन्दरविजय-रत्नसुन्दर-युगसुन्दरसूरीभ्यो नमः	

दिव्यतपस्वि-पूज्यपादाचार्यविजयहंसरत्नसूरिजीवनोद्योतकं

हंसरत्नमहाकाव्यम्

मङ्गलनादः

ऐन्द्रैरावणगर्जतर्जनपरो, यस्य स्वभिख्यारव,
ऐन्द्रै रावणकृत्कशैरपि न यात्युच्चैःश्रवा यद्गतिम् ।
ऐन्द्रै रावण एष निष्प्रभ इहैश्वर्यैः स्वयं लुण्ठितै-
र्यस्य ज्ञानश्रियः पुरः स जयतु, श्रीवर्धमानो जिनः ||१|| शार्दूलविक्रीडितम् ||

मंगलनाद

- इन्द्र की ऐरावण की गर्जना की तर्जना करनेवाली जिनकी कीर्ति की आवाज है, इन्द्र की चाबुक से तर्जना करने पर आवाज करनेवाला उच्चैःश्रवा (इन्द्र का घोडा) भी जिनकी गति को हरा नहीं सकता और स्वयं लूटे हुए इन्द्र के ऐश्वर्य से भी रावण जिनकी ज्ञानरूपी लक्ष्मी के समक्ष निस्तेज है उस वर्धमानस्वामी की जय हो...१

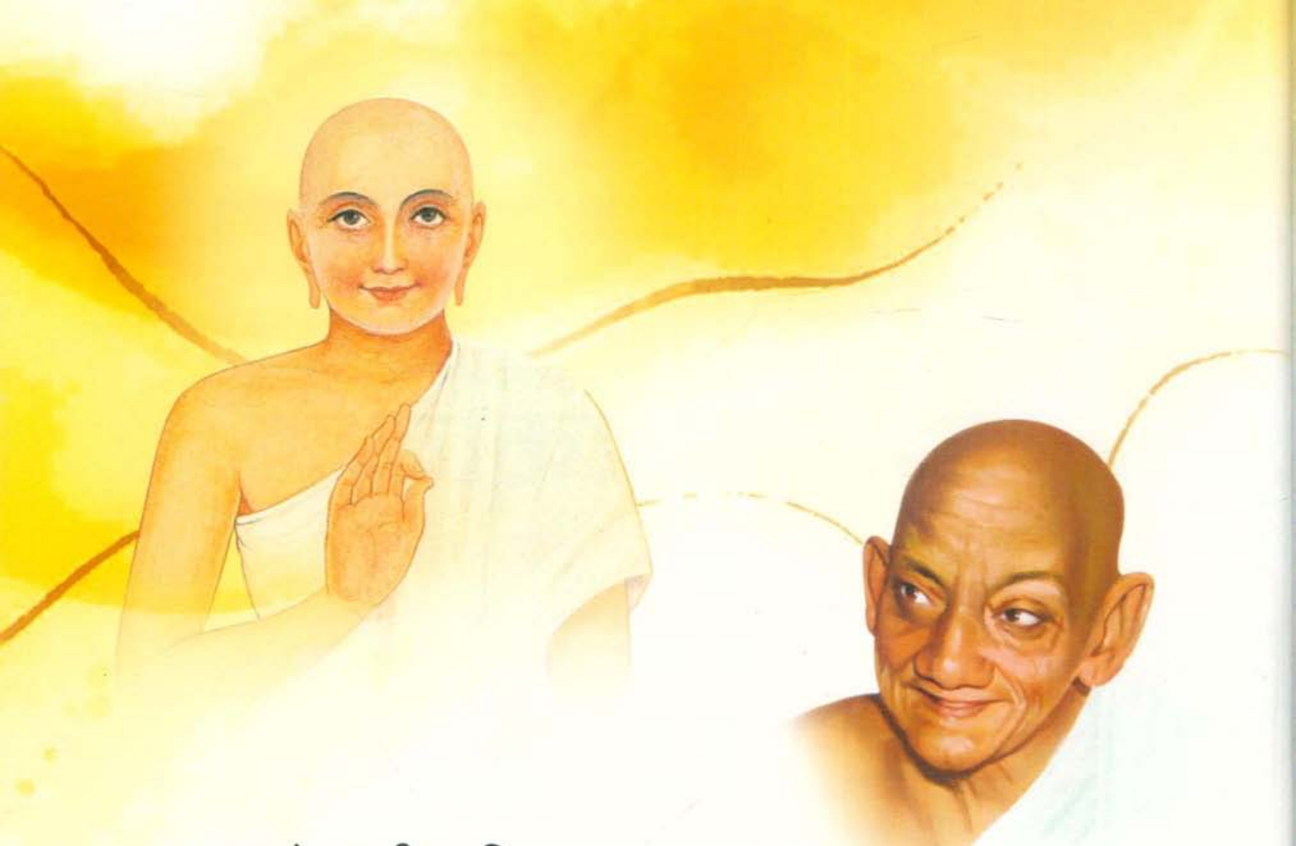

यस्य क्रमाब्जे लुठतीन्द्रभूति-
र्येनोपलब्धा सकलेन्द्रभूतिः ।
तं सन्मतेः शिष्यमिहेन्द्रभूतिं,
नौमि प्रकामं गदितेन्द्रभूतिम् ॥२॥ इन्द्रवज्रा ॥

माला यस्या, निजसितविभानिर्जितेन्दूस्रमाला,
हंसश्चाङ्घ्रौ, विलसति यथा, संयमे साधुहंसः ।
वीणालीनं, वरकरयुगं, यां नमन्ति प्रवीणा,
वाणी सा मे, हरतु दवथुं, संहृतासत्यवाणी ॥३॥ मन्दाक्रान्ता ॥

चत्वार्यास्यानि ब्रह्माऽमलगुणसुरभिं, घ्रातुमाविश्चकार,
गाम्भीर्यं यस्य मातुं, सलिलनिधितले, श्रीपतिः संविवेश ।
शम्भुर्नेत्रं तृतीयं, विकृतिविकलतां, कल्पयामास द्रष्टु-
माचार्यप्रेमसूरिः, स जयतु समये, कर्मशास्त्रप्रवीणः ॥४॥ स्रग्धरा ॥

- जिनके चरणकमलों में इन्द्र की संपत्ति लोटती है, जिनके द्वारा समस्त आत्मा की संपत्ति प्राप्त की जा चुकी है और जिनके द्वारा आत्मा की संपत्ति का वर्णन किया गया है उस प्रभु वीर के शिष्य इन्द्रभूति (गौतमस्वामी) को मैं अत्यंत इच्छापूर्वक नमन करता हूं...२

- जिनकी माला ने अपनी श्वेत प्रभा से चन्द्र के किरणों के समुह को जीत लिया है, साथ ही जैसे संयम में श्रेष्ठ मुनि विलास करते हैं वैसे जिनके चरण में हंस विलास करता है, जिनके दो सुंदर हाथ वीणा में लीन हैं और जिन्हें विद्वान् नमन करते हैं, साथ ही जिसने असत्य वाणी का संहार किया है वे सरस्वती देवी मेरे दुःख को दूर कीजिए...३

- जिसकी निर्मल गुणरूपी सुगंध को सुंघने के लिए ब्रह्मा ने चार मुख बनाए, जिसकी गंभीरता को नापने के लिए अरे ! विष्णु ने भी समुद्र के तल में प्रवेश किया, जिसकी निर्विकारता को देखने के लिए शिवजी ने तीसरी आंख रची उन कर्मशास्त्र में प्रवीण, आचार्य देव श्रीमद् विजय प्रेमसूरिजी महाराजा जिनशासन में जय प्राप्त करें...४

नैकान् करान् भुवि विमुञ्चति भानुरेष,
हर्तुं तमं रजनिजं परमत्र चित्रम् ।
मोहान्धकारहरणे विभु केवलं रे !,
प्रोदञ्चितं करयुगं भुवनैकभानोः ॥५॥ वसन्ततिलका ॥

विरतिरतिनिमग्नः संविभग्नाघराज्यः,
सुमुनिषु गुणसक्तः संविभक्तस्वभोज्यः ।
दुरितगरविनाशे यश्च मन्त्रायमाणः,
स जयतु जयघोषाऽऽचार्यवर्योऽसमानः ॥६॥ मालिनी ॥

भव्येभ्यो यः साम्यरत्नं चिरत्नं,
दत्त्वा दिव्यं दैन्यदुःखं प्रहन्ति ।
वक्त्रं यस्यातिप्रफुल्लप्रसूनं,
सोऽस्मान् श्रीमान् पातु राजेन्द्रसूरिः ॥७॥ शालिनी ॥

विश्रान्ततामुपगतो जिनदर्शने यो,
विश्रामणा मुनिततेर्विहिता च येन ।
विश्रामधामसदृशो भवदुर्गमार्गे,
श्रीदेवसुन्दरगुरुर्द्युतरूपमः सः ॥८॥ वसन्ततिलका ॥

- यह सूर्य रात्रि के अंधकार को दूर करने के लिए पृथ्वी पर सैंकडों कर (=किरणों) को छोड़ता है परन्तु, एक आश्चर्य है कि-मोह के अंधकार को दूर करने के लिए पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरि महाराज के ऊपर उठे दो कर (हाथ) ही समर्थ हैं...५
- विरति के आनंद में मग्न, जिन्होंने पाप का राज्य तोड़ दिया है, गुण में आसक्त, मुनियों के लिए जिन्होंने अपने आहार को विभाजित किया है (अर्थात् संविभागी) और पापरूपी विष के लिए जो मंत्ररूप बने हैं उस अद्वितीय आचार्यदेव श्रीमद् विजय जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा की जय हो...६
- भव्य जीवों को दिव्य और प्राचीन समतारत्न देकर उनके दीनता के दुःख को जो दूर करते हैं और जिनका मुख अत्यंत विकसित पुष्प है वे पूज्यपाद आचार्य देव श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा हमारी रक्षा करें...७
- जिन्होंने जिनेश्वरप्रभु के दर्शन से विश्राम पाया, जिनके द्वारा मुनिभगवंतों की सेवा की गयी, जो भवजंगल के मार्ग पर विश्वासधाम समान हैं वे पूज्य मुनिराज देवसुंदरविजयजी कल्पवृक्ष समान हैं...८

कल्याणालय ! रम्यपुण्यनिचय ! ध्वस्तासुमत्संशय !,
सत्कारुण्यकुशेशय ! श्लथभय ! प्रज्ञानिधे ! चिन्मय ! ।
विज्ञातव्यवहारनिश्चयनय ! श्रीभाग् ! विशुद्धाऽऽशय !,
याचेऽहं तव रत्नसुन्दरसूरे ! सान्निध्यमाजीवनम् ॥९॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

कार्येषु दक्षः, शमिभक्तिसक्तः,
तपोऽनुरक्तः, समयस्थितिज्ञः ।
लोकप्रियः शान्तमुखः सहिष्णुः,
सूरीश्वरोऽयं, युगसुन्दराऽऽह्वः ॥१०॥ उपजातिः ॥

प्रमादं प्रमादं हरन्तं स्तवीमि,
शरण्यं स्मरं विस्मरन्तं स्मरामि ।
जिनेन्द्रस्य जापं जपन्तं जपामि,
गुरुव्रातमेनं निकामं नमामि ॥११॥ भुजङ्गप्रयातम् ॥

हंसार्चितं श्रीजिनराजहंसं,
हंसाधिरूढां च पुनः प्रगाय ।
हंसोज्ज्वलश्लोककरं सृजामि,
श्रीहंसरत्नाऽऽह्वमुनीशकाव्यम् ॥१२॥ इन्द्रवज्रा ॥

- हे कल्याण के आवास ! सुंदर पुण्य के समुह से युक्त ! जीवों के संशय को ध्वस्त करने वाले, करूणा के कमल समान ! कमजोर हुआ है भय जिनका ऐसे ! प्रज्ञा के भंडार ! ज्ञानमय ! व्यवहार और निश्चयनय को जानने वाले ! कल्याण के भाजन ! विशुद्ध आशय वाले हे रत्नसुंदरसूरि महाराजा ! आपके आजीवन सांनिध्य की मैं याचना करता हूं...९
- कार्यों में निपुण, मुनियों की सेवा में आसक्त, तप में अनुरागी, समय और स्थिति को जानने वाले, लोकप्रिय, शांत मुखवाले और सहिष्णु ऐसे यह आचार्य विजय युगसुंदरसूरीश्वरजी म.सा. हैं...१०
- प्रमा (=ज्ञान) को देने वाले, प्रमाद को हरने वाले, जो शरण लेने योग्य हैं वैसे, कामदेव को भूलने वाले जिनेश्वर का जाप करने वाले ऐसे इन गुरुभगवंतों के समुह की विशेष रूप से स्तवना करता हूं, स्मरण करता हूं, जपता हूं और नमन करता हूं...११
- हंस (=सूर्य) के द्वारा पूजित श्री जिनेश्वररूपी राजहंस का और हंसारूढा (सरस्वतीदेवी) का पुनः प्रकृष्टरूप से गान करके, हंस जैसी उज्ज्वल कीर्ति को करने वाले ऐसे आचार्य विजय हंसरत्नसूरीश्वरजी महाराजा के काव्य की रचना करता हूं...१२

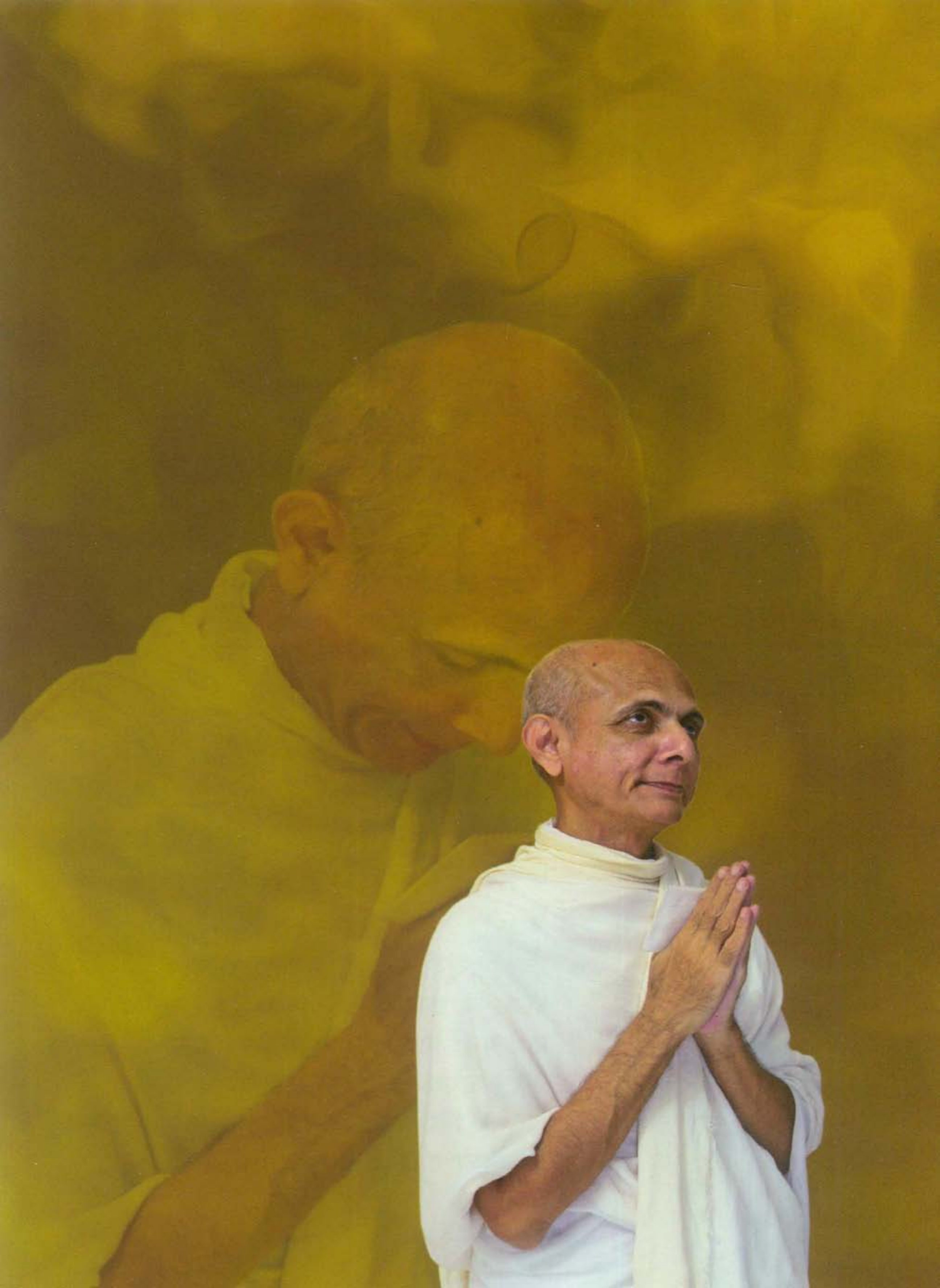

अनुलोम-विलोमकाव्यम्

नौमि काममसत्यारी, [1]वैज्ञौ संमतगौ रवी ।
वीरगौतमसंज्ञौ वै, रीत्या सममकामिनौ ।।

- असत्य के दुश्मन, सार को जानने वाले, सम्यक् मत को प्राप्त करने वाले, इच्छारहित, ''वीर और गौतम'' नाम के दो सूर्य को रीति से, इच्छापूर्वक मैं नमन करता हूं ।
- इस श्लोक की विशेषता यह है कि उसके प्रथम दो पाद का विपरीत उच्चारण करें तो तीसरा और चौथा पाद बनता है, जबकि तीसरे और चौथे पद का विपरीत उच्चारण करें तो प्रथम और दूसरा पाद बनता है ।

१. ''वैः सारः'' (८७) - सौभरिप्रणीतैकाक्षरनाममालायाम् । (वैः-१/१)

।। प्रथमः पक्षः ।।

(महागच्छतरोः बीजन्यासः)

अनन्तभवविस्तारनिस्तारस्य निबन्धनम् ।
शत्रुञ्जयाऽऽह्वशैलेन्द्रं, नौमि सर्वार्थसाधनम् ।।१।।

एकदा तस्य सोपानमुत्तरन्तौ तपोधनौ ।
आस्तां कल्याणसोपानाऽऽरुरुक्षू द्वौ मुनीश्वरौ ।।२।।

किं तौ देवौ दिवो भ्रष्टौ जम्बूद्वीपस्य वा रवी ? ।
इत्येवं कल्पयामासुर्जना दृष्ट्वा तयोस्तनू ।।३।।

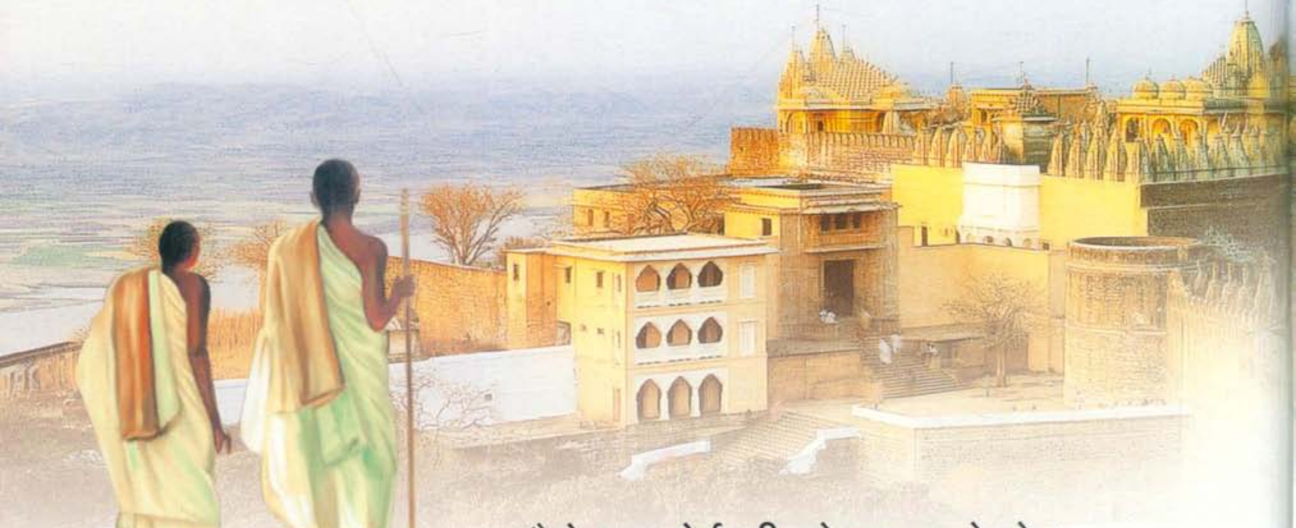

न्यस्तैकेन स्वदोर्वल्ली, देहावष्टम्भहेतवे ।
गृहीता साऽपरेण स्वकर्मस्थगनहेतवे ।।४।।

ईषन्नम्रकटीकम्रस्तत्राऽऽद्यः गुल्मसन्निभः ।
अपरो महावृक्षाऽऽभो, दृढकायो महामतिः ।।५।।

नेत्रे तु जीवरक्षार्थं, संलग्ने धरणीतले ।
दृष्टिः किन्तु तयोर्भाविभावभूमिविहारिणी ।।६।।

।। पहला पक्ष ।।

(महागच्छरूपी वृक्ष के बीज आरोपित हुए...)

- अनन्तसंसाररूपी विस्तार को तरने में कारणरूप और सर्व अर्थों को सिद्ध करने वाले श्री शत्रुंजयगिरिराज को मैं नमन करता हूं...१
- कल्याण के सोपानों पर आरोहण करने की इच्छा रखने वाले दो मुनिभगवंत एक बार उस शत्रुंजय पर्वत की सीढियां उतर रहे थे...२

- ''क्या वे देवलोक से रास्ता भटक जानेवाले दो देव हैं या फिर जंबूद्वीप के दो सूर्य हैं ?'' उन मुनिभगवंतों के देहलालित्य को देखकर लोग इस प्रकार कल्पना कर रहे थे...३
- उन दो मुनिभगवंतों में से एक मुनिभगवंत ने अपने शरीर को सहारा देने के लिए अपने हाथरूपी वेल को (दूसरे मुनिभगवंत के हाथ में) रखी और दूसरे मुनिभगवंत ने कर्म को रोकने के लिए उनके उस हाथरूपी वेल को (अपने हाथों में) धारण किया...४
- उन दो मुनिभगवंतों में से थोडी सी झुकी हुई कमर से सुंदर ऐसे प्रथम मुनिभगवंत लघुवृक्ष के समान प्रतिभासित हो रहे थे और महामतियुक्त दृढशरीर वाले दूसरे मुनिवर, बडे वृक्ष के समान प्रतीत हो रहे थे...५
- उन दोनों मुनिभगवंतों के नयन जीवरक्षा हेतु पृथ्वीतल से जुडे हुए थे परन्तु, दृष्टि तो भविष्यकालीन स्थितिरूप भूमि पर विचरण कर रही थी...६

अतिचक्रमतुः कम्रौ, सोपानानि क्रमौ क्रमात् ।
राज्याद्राज्ये यथा चक्री, सर्वभूमिजयोत्सुकः ॥७॥

कावेताविति प्रश्नस्य, सूत्तरमस्ति यत्तयोः ।
आद्यः **श्रीप्रेमसूरीशः, श्रीभानुविजयो**ऽपरः ॥८॥

द्विसहस्रतमे वर्षे, षडधिके (२००६) च वैक्रमे ।
यात्रा तु प्रचलन्त्यासीत्तयोः सद्गुरुशिष्ययोः ॥९॥

तदा गम्भीरवाचैवं, भानुविजयसंयतम् ।
उवाच प्रेमसूरीशः-''भानो ! शृणु वचो मम ॥१०॥

पाठशाला मुमुक्षूणां, या त्वयाऽत्र प्रचाल्यते ।
रोचते सा प्रकामं मे, वैराग्यजननी परा ॥११॥

न निर्ग्रन्थं विना तीर्थं, निर्ग्रन्थास्तीर्थवाहकाः ।
तस्माद्रचय निर्ग्रन्थमालां नव्यां मनोरमाम् ॥१२॥

- जैसे सर्वभूमि को जीतने की इच्छा रखनेवाले चक्रवर्ती एक राज्य से दूसरे राज्य में जाता है वैसे ही वे दोनों मुनिभगवंतों ने क्रमशः सोपान लांघे...७
- ये दो मुनिभगवंत कौन है ? इस प्रश्न का उत्तर है कि पहले मुनिभगवंत- **आचार्यदेव श्रीमद् विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज** हैं और दूसरे मुनिभगवंत **पंन्यास भानुविजयजी महाराज** हैं...८
- विक्रम संवत २००६ के वर्ष में उस गुरू और शिष्य की यात्रा चल रही थी...९
- तब गंभीर वाणी में आ. वि. प्रेमसूरीश्वरजी महाराज ने पू.पं. भानुविजयजी महाराज से कहा, ''भानुविजय ! मेरी एक बात सुनिए...१०
- वैराग्य को उत्पन्न करनेवाली मुमुक्षुओं की पाठशाला जो तुम्हारे द्वारा यहां (शत्रुंजय आयंबिल खाते के भवन में चलायी जा रही है वह मुझे बहुत अच्छी लगती है...११
- निर्ग्रंथ के बिना तीर्थ नहीं हैं, निर्ग्रंथ ही तीर्थ को वहन करता है अतः निर्ग्रंथों की नयी और सुंदर हारमाला रचिए...१२

नव्ययुवमुनिश्रेण्या, दीप्येत सङ्घयौवनम् ।
दूरीभवेत्ततः क्षिप्रं, विग्रहादिः पुरातनः ॥१३॥

तीर्थोद्धारः श्रुतोद्धारो, जायेयातामिह स्फुटम् ।
युवर्षीणां प्रभावेण, युवदीक्षाः प्रवर्तय ॥१४॥

सामर्थ्यं मतिचातुर्यं, वाचस्पत्यं सुयुक्तयः ।
विद्यन्ते युवपार्श्वेऽतो, युवदीक्षाः प्रवर्तय ॥१५॥

फलद्रूपभुवा सस्यनिष्पत्तिर्जायते ध्रुवम् ।
यूनैवं कार्यनिष्पत्तिर्युवदीक्षाः प्रवर्तय ॥१६॥

साध्यते सानुमद्भेदो, वज्रेणैवासतां तथा ।
युवभिर्निग्रहः साध्यो, युवदीक्षाः प्रवर्तय ॥१७॥

नव्यं बलं नवा दृष्टिः, प्रत्यग्रा कार्यपद्धतिः ।
युवमुनिसकाशे स्याद्, युवदीक्षाः प्रवर्तय ॥१८॥

- नयी युवा मुनियों की श्रेणी से संघ की युवावस्था सुशोभित हो उठेगी और पुराने संघर्ष आदि तुरन्त दूर होंगे...१३
- तीर्थोद्धार और श्रुतोद्धार उन युवा मुनिभगवंतों के प्रभाव से अवश्य होगा। अतः युवाओं की दीक्षा का प्रवर्तन करो...१४
- सामर्थ्य, मति की चतुराई, बोलने की कला और युक्तियां युवाओं के पास होती है। अतः युवाओं की दीक्षा का प्रवर्तन करो...१५
- उपजाऊ भूमि से जिस प्रकार निश्चित रूप से फसल उगती है उसी प्रकार युवाओं के द्वारा निश्चित रूप से कार्य सम्पन्न होते हैं। अतः युवाओं की दीक्षा का प्रवर्तन करो...१६
- जिस प्रकार पर्वत का भेदन वज्र से ही संभव है उसी प्रकार दुष्टों का निग्रह युवाओं के द्वारा ही होता है। अतः युवाओं की दीक्षा का प्रवर्तन करो...१७
- नयी शक्ति, नयी दृष्टि और नयी कार्यशैली युवा मुनियों के पास होती है। अतः युवाओं की दीक्षा का प्रवर्तन करो...१८

स्यात् क्षयोपशमस्तीव्रो, गूढशास्त्रावगाहने ।
युवर्षीणामतो वच्मि, युवदीक्षाः प्रवर्तय ।।१९।।

भाविनि बहुलाभाय, स्युर्युवमुनिसत्तमाः ।
सङ्घाय किल तस्मात्त्वं, युवदीक्षाः प्रवर्तय ।।२०।।

निर्णीतं तु मया चित्त एवमनेकहेतुभिः ।
युवदीक्षा हि कालेऽस्मिन्, सदुपायः किलोन्नतेः'' ।।२१।।

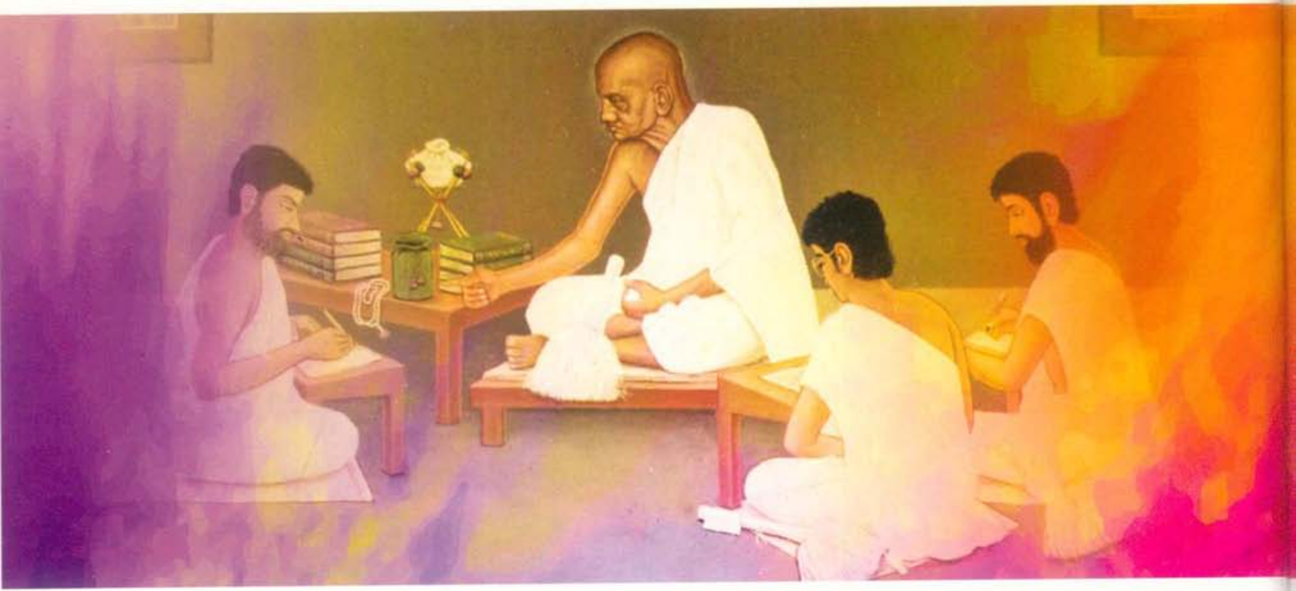

एवमुक्त्वा गुरुप्रेमसूरीशो विरराम वै ।
श्रुत्वा गुर्वनुशास्तिं तां, मुदितो भानुसन्मुनिः ।।२२।।

विस्मेरनयनद्वन्द्व, उन्निन्द्रमुखपङ्कजः ।
उद्भिन्नपुलकव्रातः, सस्मितरदनच्छदः ।।२३।।

नीध्रवत्प्रणतग्रीवः, स्थगिताङ्गुलिकम्पनः ।
उल्लसद्धर्षकल्लोललोलतारासरोवरः ।।२४।

- गहन शास्त्रों को जानने में युवा मुनिभगवंतों का क्षयोपशम (बुद्धिमत्ता) तीव्र होता है । अतः युवाओं की दीक्षा का प्रवर्तन करो...१९
- संघ के लिए भविष्य में युवा मुनिभगवंत अत्यंत लाभकारी सिद्ध होंगें । अतः युवाओं की दीक्षा का प्रवर्तन करो...२०
- इस प्रकार मेरे द्वारा मन में विचार किया गया है कि, 'युवाओं की दीक्षा ही इस काल में उन्नति का सुंदर उपाय है'...२१

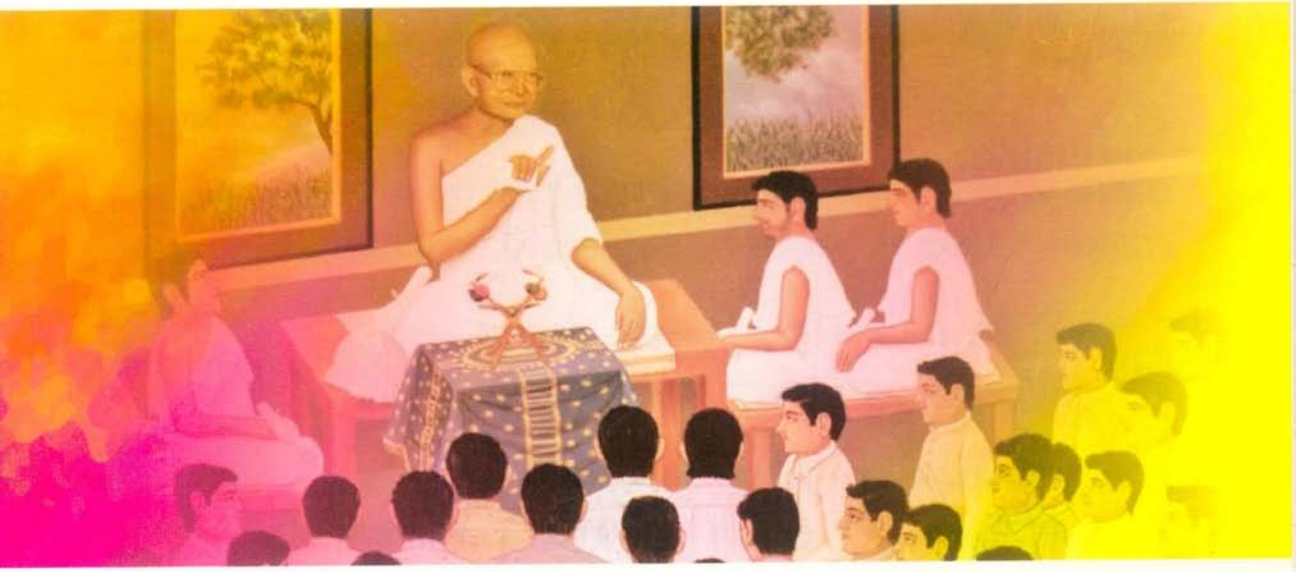

- इतना बोलकर आ.वि. प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा ने विराम लिया और गुरू की हितशिक्षा सुनकर पूज्य पंन्यास भानुविजयजी महाराज आनंदित हुए...२२
- प्रफुल्लित हैं नयन जिनके, खिल उठा है मुखकमल जिनका, विकसित हो उठे हैं रोम-रोम जिनके और जिनके होठों पर स्मित हैं...२३
- छत के झुके हुए कोने के समान झुकी हुई है ग्रीवा जिनकी, साथ ही उंगलियों का कंपन जिन्होंने रोक लिया है, तथा उछलती हर्ष की लहरों से चपल ऐसी पुतली रूपी सरोवर से जो सुंदर हैं...२४

बाष्पाऽऽर्द्रपक्ष्मसङ्घातः, श्रीभानुविजयस्तदा ।
''तथेति'' प्रोच्य गुर्वाज्ञां, स्वीचकार विचारकः ॥२५॥ त्रिभिर्विशेषकम्[१] ॥

''न मया सेत्स्यते किञ्चिद्, गुर्वाज्ञयैव सेत्स्यते ।
गुर्वाज्ञामनुसृत्यैवं, श्रेयो मे निश्चयं भवेत् ॥२६॥

ततः सम्पादयिष्यामि, गुर्वाज्ञां सत्वरं''त्विति ।
चिन्तयामास भानुः स, शासनाभ्युदयेच्छुकः ॥२७॥ युग्मम् ॥

उप्तं बीजं तदैवाहो ! महागच्छविनिर्मितेः ।
व्यहरच्च ततो भानुः, सम्प्राप्तगुर्वनुग्रहः ॥२८॥

मुम्बापुर्यां समागत्य, निहत्य मोहजालकम् ।
उद्धृता युवका नैकाः, पङ्कजा इव पङ्कतः ॥२९॥

प्रवचनस्य नादेन, हत्वाऽविरतिराक्षसीम् ।
स जागरितवान् भव्यान्तःस्थविरतिदेवताम् ॥३०॥

---

१. एकद्वित्रिचतुश्छन्दोभिर्मुक्तकसन्दानितकविशेषककलापकानि ॥ ८/११ - काव्यानुशासनम् ॥

- आंसू से आर्द्र हैं पलकों का समुह जिनका ऐसे विचारक पूज्य पंन्यास भानुविजयजी महाराज ने 'तहत्ति' कहकर गुर्वाज्ञा का स्वीकार किया...२५
- मेरे द्वारा कुछ भी सिद्ध नहीं होगा अपितु गुर्वाज्ञा से ही (कार्य) सिद्ध होगा । अतः गुर्वाज्ञा के अनुसरण में ही मेरा कल्याण निश्चित है...२६
- अतः ''मैं शीघ्रता से गुर्वाज्ञा का पालन करूं'' इस प्रकार शासन के अभ्युदय की इच्छा रखनेवाले पूज्य पंन्यास भानुविजयजी महाराज ने विचार किया...२७
- उसी समय महागच्छ के निर्माण का बीज आरोपित हुआ और जिन्होंने गुरूकृपा प्राप्त कर ली है ऐसे पूज्य पंन्यास भानुविजयजी महाराज ने विहार किया...२८
- मुंबई में पधारकर पूज्य पंन्यास भानुविजयजी महाराज ने मोहजाल का भेदन करके जैसे कमल को बाहर निकाला जाता है वैसे ही उन्होंने अनेक युवाओं का उद्धार किया...२९
- प्रवचन के नाद से अविरतिरूपी राक्षसी का हनन करके भव्यजीवों के हृदय में स्थित विरतिदेवता को उन्होंने जागृत किया...३०

गुरुवाग्झल्लरीं श्रुत्वा, त्यक्त्वा ममत्ववल्लरीम् ।
संसारलहरीं तीर्त्वा, भविजनाः प्रवव्रजुः ॥३१॥

भानुविजयवाचैवं, प्राप्तभवविरागताः ।
गोष्पदीकृतसंसारास्तीर्णा नैकयुवोत्तमाः ॥३२॥

आतोद्यनादैः सह पुष्पवृष्ट्या,
सन्मङ्गलैश्चाप्तसमूहतुष्ट्या ।
नैके युवानो गुरुहस्तयुग्माद्,
धर्मध्वजं प्राप्य सुखीबभूवुः ॥३३॥ इन्द्रवज्रा ॥

दशसु दिक्षु सत्कीर्तिः[२], प्रसृतैवं तदा किल ।
''श्रीभानुविजयो नव्यो, युवदीक्षाप्रवर्तकः'' ॥३४॥

सकृदपि विश्रुत्य श्रीभानुविजयसद्गिरम् ।
न स्यात्कोऽपि कृती तादृग्, यो न स्पृशेद्विरागिताम् ॥३५॥

श्रीभानुविजयो दृष्टो, येन सकृदपि प्रभुः ।
जायन्ते तस्य चित्ते सद्भावा नानाप्रकारकाः ॥३६॥

---

२. सर्वदिग्व्यापी साधुवादः कीर्तिः (दश० अ०९, सूत्र ४) ।

- गुरुवाणी की झालर सुनकर ममत्वरूपी वेल को छोडकर, संसाररुपी लहर को तिरकर, कई भव्य जीवों नें दीक्षा ग्रहण की...३१
- पूज्य पंन्यास भानुविजयजी म.सा. के वचन से विरागता को प्राप्त करनेवाले और संसार को पोखर जितना सीमित करनेवाले कई युवा तिर गये...३२
- वाजिंत्रों के नाद के साथ, पुष्पों की वृष्टि के साथ, अनेक प्रकार के मंगल के साथ और आप्तपुरुषों को तुष्ट करके अनेक युवा गुरुदेव के हाथों रजोहरण स्वीकार करके सुखी हुए...३३
- तब दसो दिशाओं में इस प्रकार कीर्ति फैल गयी कि, ''पूज्य पंन्यास भानुविजयजी कोई नये पधारें हैं जो युवादीक्षाप्रवर्तक हैं''...३४
- सिर्फ एक बार पंन्यास श्री भानुविजयजी म.सा. की वाणी को सुनकर वैराग्य की स्पर्शना न करे ऐसा एक भी पुण्यशाली नहीं मिलेगा...३५
- एक बार भी जिन्होंने प्रभु पंन्यास श्री भानुविजयजी म.सा.को देख लिया। उनके चित्त में अनेक प्रकार के शुभभाव उत्पन्न होते हैं...३६

यथा हि–

सप्तहया न विद्यन्ते, नास्ति चारुणसारथिः ।
तथाऽप्युदयमाप्तोऽयं, भानुर्लोकस्य वर्चसे ॥३७॥

गवि प्रकाशं सुमनोविकासं,
जाड्यस्य नाशं विदधानमेनम् ।
शुच्यम्बरेशं प्रविलोक्य भाति,
भानु[3]र्हि भानुर्नहि भानुरन्यः ॥३८॥ उपजातिः ॥

दृष्ट्वा तपोंऽशुं रविभाःसमानं,
शश्चन्द्रिकां [4]वा वदनेऽत्र भानोः ।
तदेव मत्वा किल पुष्पदन्तौ,
हन्तानुधावन्ति चकोरचक्राः ॥३९॥ उपजातिः ॥

तमांसि दूरतो यान्ति, परमतेज इन्वति ।
भानूदये नृणां चित्तं, मोदते चक्रवाकवत् ॥४०॥

---

३. ते लुग्वा । (सि.हे. ३/२/१०८) । अनेन सूत्रेणाऽत्र भानुपदेन पन्न्यासभानुविजयो ग्राह्यः ।
४. वा समुच्चयार्थकः । - वा समुच्चय उद्दिष्टम् (२६) महाराजशाहराजस्यैकाक्षरनाममालायाम् ।

- जैसे कि-सात अश्व विद्यमान नहीं है और अरुण नाम का सारथि भी उपस्थित नहीं है फिर भी यह भानु (पूज्य पंन्यास भानुविजयजी) जगत को प्रकाशित करने के लिए उदित हुआ है...३७

- **सूर्य के पक्ष में**, - पृथ्वी पर प्रकाश, पुष्पों का विकास और (शारीरिक) जडता को जो दूर करता है, शुद्ध आकाश के स्वामी ऐसे इसे (सूर्य को) देखकर ऐसा लगता है कि सूर्य ही सूर्य है और कोई भी सूर्य नहीं।

- **पूज्य पंन्यास भानुविजयजी के पक्ष में** - शब्द के विषय में प्रकाश, सज्जनों का विकास और (आंतरिक) जडता को दूर करते हैं वे श्वेतांबर मुनिओं के स्वामी इन्हें देखकर ऐसा लगता है कि पूज्य पंन्यास भानुविजयजी ही सूर्य हैं और कोई सूर्य नहीं है...३८

- सूर्य की किरण जैसी तप की प्रभा और (चंद्र जैसी) आनंद की चांदनी को पूज्य पंन्यास भानुविजयजी के मुख पर निहारकर उस मुख को ही सूर्य-चंद्र मानकर चकोर पक्षी और चक्रवालपक्षी उनके पीछे भाग रहे हैं...३९

- **सूर्य के पक्ष में** - अंधेरे दूर से ही चले जाते हैं, परमतेज का विस्तार होता है, सूर्य का उदय होने पर लोगों का मन चक्रवाक की तरह आनंदित होता है...

- **पूज्य पंन्यास भानुविजयजी के पक्ष में** - पाप दूर से ही चले जाते हैं, परमतेज (ग्रंथ) का विस्तार होता है, पू.पं.भानुविजयजी का उदय होने पर लोगों का मन चक्रवाक की तरह आनंदित होता है...४०

सप्तनया हया यस्य, सारथिः करुणाऽरुणः ।
स उदेति गुरुर्भानु-र्दयानामोदयाचलात् ॥४१॥

एवमनेकसद्भावभावितामलचेतसः ।
श्रीभानुविजयं लोका, मुक्तकण्ठं हि तुष्टुवुः ॥४२॥

सङ्घे सङ्घे विधायोच्चैः, प्रवचनानि सद्गुरुः ।
तारयामास भव्यान् स, तरीव घोरसागरे ॥४३॥

किं सिंहनादः ? किमु मेघनादः ?,
किं सागरोद्भूतगभीरघोषः ?
एवं विकल्पानि समुद्बभूवुः,
श्रुत्वा गिरं तस्य सतां मनस्सु ॥४४॥ इन्द्रवज्रा ॥

वैराग्योप्तिर्मनस्तृप्तिः, समितिगुप्तिरोचनम् ।
भानुविजयवाणीनां, फलान्येतानि जज्ञिरे ॥४५॥

एवं प्रवचनैस्तस्य, निर्नष्टाशुभवासनाः ।
जगृहुर्बहवो दीक्षां, धर्मशिक्षाभिलाषिणः ॥४६॥

- सात नय जिनके सात अश्व हैं और करुणा नाम का अरुण सारथि है वे गुरु पू.पं.भानुविजयजी दया नाम के उदयाचल पर्वत से उदित होते हैं''...४१

- इस प्रकार अनेक शुभभाव से भावित मनवाले लोगों ने मुक्तकंठ से पंन्यास श्री भानुविजयजी महाराज की स्तवना की...४२

- गहन सागर में जहाज के समान उस सद्‌गुरुदेव ने प्रत्येक संघ में प्रवचन करके भव्य जीवों को तार दिया...४३

- ''यह क्या सिंहनाद है? या फिर मेघनाद? या फिर सागर में से उत्पन्न होने वाला घोष?'' इस प्रकार के विकल्प उनकी वाणी सुनकर श्रोता के मन में उत्पन्न होते थे...४४

- वैराग्य का वपन, मन की तृप्ति, समिति और गुप्ति के प्रति रूचि-ये सब पंन्यास प्रवर श्री भानुविजयजी म.सा. के प्रवचन के फल हैं...४५

- इस प्रकार उनके प्रवचन से जिनके अशुभ संस्कार नष्ट हो चुके हैं ऐसे धर्म की शिक्षा की इच्छा रखनेवाले कई लोगों ने दीक्षा ली...४६

(दीक्षितानां युवसाधूनां स्वरूपम्)

जातास्तेभ्यो बुधाः केचित्, केचन च तपस्विनः ।
केचन कर्मशास्त्रस्याऽऽध्येतारः सर्जकास्तथा ॥४७॥

केचित् संशोधनाऽऽसक्ता, वक्तारोऽपि च केचन ।
लोकोपयोगिसाहित्यसर्जने पटवोऽऽपरे ॥४८॥

मधुकर इवालिप्ता, माधुकर्यां सलब्धिकाः ।
मण्डलीसत्ककार्येषु, सन्नद्धा विगतस्पृहाः ॥४९॥

ग्लानविश्रामणारक्ताः, सातदातार उत्तमाः ।
केचन कष्टसाध्यानां, नियमानां च धारकाः ॥५०॥

उत्सर्गादेः परिच्छेदात्, स्फीताऽऽशया असंशयाः ।
मार्गानुसारिणः सर्वे, केचिन्मार्गोपदेशकाः ॥५१॥

स्वपराऽऽगमसंविज्ञाः, प्रज्ञाधारिषु शेखराः ।
स्वाध्यायगुञ्जनेनाहो !, मुखरीकृतदिङ्मुखाः ॥५२॥

निर्व्यूढगुरुसन्दिष्टकार्यमालाः कलाऽऽलयाः ।
तर्कनिशातधीछिन्नमिथ्यावचनशृङ्खलाः ॥५३॥

सूक्ष्मबादरजीवानां, रक्षणे विहिताऽऽदराः ।
सूक्ष्मेक्षिकां च बिभ्राणाः, साधवो भूविभूषणाः ॥५४॥ अष्टभिः [४]कुलकम् ॥

---

४. पञ्चादिभिश्चतुर्दशान्तैः कुलकम् ॥ ८/१२ ॥ काव्यानुशासनम् ॥

(दीक्षित हुए युवा-मुनिभगवंत का स्वरूप)

- दीक्षित उन सब में से कुछ विद्वान हुए, कुछ तपस्वी हुए, कुछ कर्मशास्त्र का अध्ययन करनेवाले और कुछ सृजन करनेवाले हुए...४७
- कुछ संशोधन में आसक्त हुए, कुछ वक्ता हुए और कुछ लोकभोग्य साहित्य के सृजन में कुशल हुए...४८
- कुछ मुनिवर मधुकर की तरह अलिप्त, गोचरी में लब्धिवाले, मांडली के कार्यों में तत्पर और स्पृहा बिना के हुए...४९
- ग्लान की सेवा में रक्त, शाता देनेवाले, उत्तम ऐसे कुछ मुनिवर कष्टसाध्य नियमों को धारण करनेवाले हुए...५०
- उत्सर्ग आदि के ज्ञान से सुंदर आशयवाले तथा संशय बिना के ऐसे सभी के सभी मार्गानुसारी हुए और कुछ मार्ग के उपदेशक हुए...५१
- स्वसमय और परसमय को जाननेवाले, प्रज्ञाधारियों में श्रेष्ठ ऐसे उन्होंने स्वाध्याय के गुंजन से दिशाओं को भी मुखर कर दी...५२
- गुरु द्वारा दर्शाये गये कार्यों के समुह को पूरा करनेवाले, कला के स्थान समान तथा तर्क से तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा मिथ्यावचनरुपी जंजीर को तोडनेवाले हुए...५३
- सूक्ष्म-बादर जीवों की रक्षा में आदर रखनेवाले, सूक्ष्मेक्षिका को धारण करनेवाले ऐसे पृथ्वी के भूषण समान साधु हुए...५४ (आठ श्लोकों का समूह)

नूत्नदीक्षितरत्नानां, प्रौढसाधुसमौजसाम् ।
दर्शनेन जना ऊचुः-''बहुरत्ना वसुन्धरा'' ॥५५॥

तेषां वीरैकभक्तानां, वीरमार्गानुगामिनाम् ।
दर्शनेन जना ऊचुः-''वीरभोग्या वसुन्धरा'' ॥५६॥

एवमनेकसच्छिष्यपरिवारितविग्रहः ।
विरेजे स गुरुर्भानुर्बहुशाखान्वितद्रुवत् ॥५७॥

श्रीप्रेमसूरिराजानां, मनोरथं प्रपूरयन् ।
गच्छं विरचयामास, गुच्छं मालाकरो यथा ॥५८॥

साधुरत्नखनिर्गच्छस्तत्रापि रत्नतल्लजः ।
हंसरत्नाभिधानेन, शिष्यो भानोर्बभूव यः ॥५९॥

अबालसाध्यकार्याणां, कर्ता बाल्येऽपि दीक्षितः ।
तस्याहं जीवनं वक्ष्ये, चित्तसिन्धुविधूदयम् ॥६०॥ युग्मम् ॥

- प्रौढ साधु जैसा है तेज जिनका ऐसे नूतन दीक्षितरत्नों को देखकर लोगों ने कहा कि, ''यह पृथ्वी अनेक रत्नोंवाली है''...५५
- श्री वीर के एक मात्र भक्त तथा वीर के मार्ग पर जानेवाले उन्हें देखकर लोगों ने कहा कि, ''यह पृथ्वी वीरों के द्वारा भोगने योग्य है''...५६
- इस प्रकार अनेक सुंदर शिष्यों से लिपटी हूई देहवाले ऐसे पूज्य पंन्यास भानुविजयजी कई शाखाओं से लिपटे हुए वृक्ष की तरह सुशोभित हुए...५७
- पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज के मनोरथ की पूर्ति करते हुए उन्होंने जिस प्रकार माला बनानेवाला पुष्प के गुच्छ की रचना करते हैं उस प्रकार गच्छ की रचना की...५८
- वह गच्छ साधुरुपी रत्नों की खदान है। उसमें भी श्रेष्ठतम रत्न के समान मुनि श्री हंसरत्नविजयजी हैं जो पंन्यास श्री भानुविजयजी के शिष्य हुए...५९
- जो बालदीक्षित होने के बावजूद अबालसाध्य (कष्टसाध्य) कार्य को करनेवाले बने । ऐसे मनरुपी सागर के लिए चंद्र के उदय समान उनके जीवन को मैं कहूंगा...६०

युगो सुधी जळहळशे

जन्मादीनि पवित्राणि, तस्य वक्ष्ये यथाक्रमम् ।
नन्दवर्धनशीलानि, गुणस्थानकरोहवत् ॥६१॥

सन्ति सद्‌गुणपुष्पाणि, तस्य जीवननन्दने ।
चिन्वन्तु स्वाभिप्रेतानि, विज्ञप्तिरिति मे सताम् ॥६२॥

एवं श्रीप्रेमभानुप्रवरविरचितो, दर्शितो गच्छराजः,
सम्प्रत्यप्यात्मसौख्यं, निजशरणगतान्, यो ददाति प्रभूतम् ।
जीयाद् यावद्रवीन्दू, स किल भुवि सदा, तेन सार्धं तथाऽऽयं
पक्षः स्वर्गापवर्गप्रद इह भविनामादिमः स्वादिमाऽऽढ्यः ॥६३॥ स्रग्धरा ॥

॥ इति प्रथमः पक्षः समाप्तः ॥

भुवनभानुनां अजवाळां

- गुणस्थानक के आरोहण की तरह आनंद बढाने के स्वभाववाले उनके पवित्र जन्म आदि को मैं यथाक्रम कहूंगा...६१
- उनके जीवनरुपी नंदनवन में अनेक सद्‌गुणरुपी पुष्प हैं। उनमें से जो आपको पसंद आये उन्हें चून लीजिएगा ऐसी सज्जनों से मेरी विनती है...६२
- इस प्रकार पूज्याचार्यदेव श्रीमद्विजय प्रेमसूरीश्वरजी महाराज ने तथा पूज्य पंन्यास भानुविजयजी महाराज ने (आगे जाकर पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज ने) रचा हुआ सुविशाल गच्छ, जो आज भी अपने शरणागत को बहुत आत्मसुख देता है उसे (इस पक्ष में) दर्शाया गया है ।

  ''यावच्चंद्रदिवाकर'' वह गच्छ और उसके साथ स्वादिष्टतापूर्ण, भवि जीवों को स्वर्ग और मोक्ष देनेवाले इस पक्ष की जय हो...६३

॥ पहला पक्ष समाप्त ॥

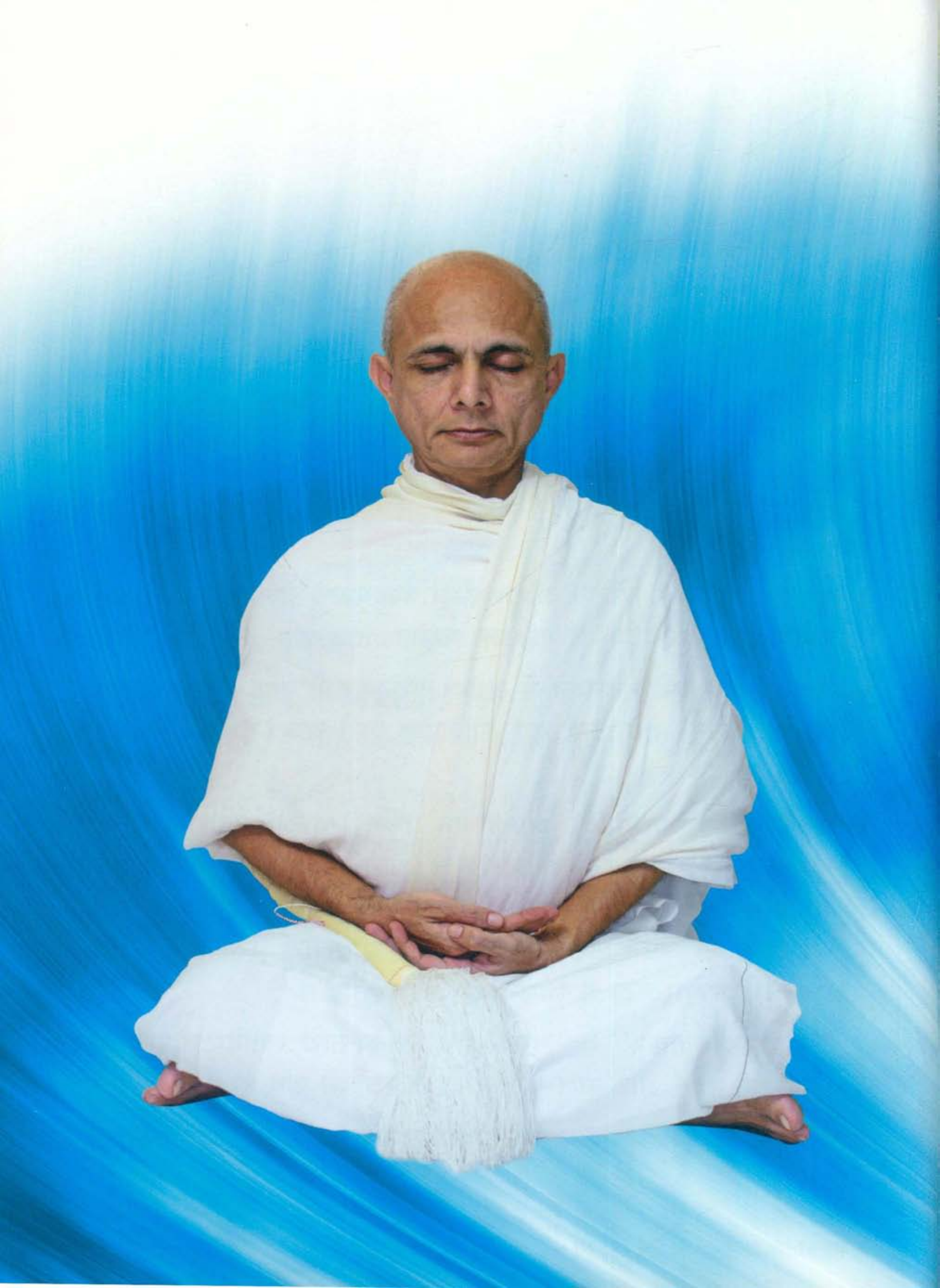

कर्तृगुप्तः श्लोकः

धृत्वाऽपि हंसरत्नस्य, हृदयं मातुमक्षमः ।
कर्तृगुप्तमिदं वाक्यं, मर्यादा पञ्चवार्षिकी ।।

- **समुद्र भी आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी का हृदय नापने के लिए असमर्थ है । इस वाक्य में कर्ता गुप्त है उसे जानने के लिए पांच वर्ष की मर्यादा देता हूं ।**

इस श्लोक में कर्ता गुप्त रूप में है । अतः इसे कर्तृगुप्त श्लोक कहा जाता है ।
(धृत्वन्=समुद्र) सामान्यतया धृत्वा का ''धारण करके'' ऐसा अर्थ किया जाता है, परन्तु यहां धृत्वा का अर्थ समुद्र है, जो यहां कर्ता रूप में है, परन्तु सहज ध्यान में नहीं आता ।

॥ द्वितीयः पक्षः ॥

(लोकवृक्षः, हरेर्जन्म बाल्यञ्च)

क्रीडायां यस्य हस्ताद्, मृदुलतररजःसत्कणान् निःसृतान् वै,
सूर्योस्रैर्दीप्यमानान्नभसि विलसतस्तान्, विलोक्याऽऽदितेयाः ।
श्रीहस्तोत्सृष्टनिष्का, इम इति दधते, मोदमानाः स्वचित्ते
तं नत्वा वर्धमानं, विबुधजनमुदे, वच्मि पक्षं द्वितीयम् ॥१॥ स्रग्धरा ॥

(लोकवृक्षः)

अनादिनिधनो लोकवृक्षश्चित्रो विराजते ।
गत्याख्याभिश्च शाखाभिश्चतुर्भिः समलङ्कृतः ॥२॥

सन्ति तासां च शाखानां, प्रशाखा बहुलाः पराः ।
दर्शयामि समासेन, किञ्चिदत्रानुप्रेक्षया ॥३॥

तिर्यग्गतिसदाख्येयं, शाखा तु प्रथमा मता ।
प्रशाखे तस्य विज्ञेये, द्वे त्रसस्थावराभिधे ॥४॥

तत्र स्थावरनाम्नी या, प्रशाखा परिदृश्यते ।
सा बहुपल्लवाऽऽकीर्णा, पट्वी स्पर्शैकसद्गुणे ॥५॥

विवेचितानि पत्राणि, पृथ्व्यादिजातिभिस्तथा ।
प्रजातयोऽपि हा ! सन्ति, नैकास्तेषां बुधैर्मताः ॥६॥

॥ दूसरा पक्ष ॥

(लोकवृक्ष, हरि का जन्म और बचपन)

- खेल में जिसके हाथों से सरकी हुई, सूर्य की किरणों से चमकती, आकाश में विलास करती ऐसी रजकणों को देखकर ''यह तो लक्ष्मी के हाथों से निकलने वाली सुवर्ण-मुद्राएं हैं'' ऐसा मानकर मन में हर्षित देव उन्हें (रजकणों को) ग्रहण करते हैं उन वर्धमानस्वामी को नमस्कार करके, विद्वान पुरूषों के आनंद के लिए मैं दूसरे पक्ष को कहता हूं...१

(लोकवृक्ष)

- अनादि-अनंत ऐसा लोकवृक्ष सुंदर लग रहा है जो ''गति'' नाम की चार शाखाओं द्वारा अलंकृत है...२
- उन शाखाओं की भी कई प्रशाखाएं हैं उन्हें अनुप्रेक्षा के द्वारा संक्षेप से एवं कुछ अंशों में बता रहा हूं...३
- तिर्यंचगति नाम की पहली शाखा है और उसकी त्रस और स्थावर नाम की दो प्रशाखाएं जानिए...४
- वहां स्थावर नाम की जो प्रशाखा दिख रही है वह बहुत सारे पर्णों से भरी हुई है और स्पर्श नाम के एक ही गुण में कुशल है...५
- वे पर्ण पृथ्वी आदि (पृथ्वीकाय आदि) जातियों से विभाजित हैं और विद्वानों के द्वारा उनकी प्रजाति भी अनेक मानी गयी हैं...६

त्रसाऽऽख्यायां प्रशाखायां, जातिभिर्द्वीन्द्रियादिभिः ।
पर्णानि सन्ति भिन्नानि, वीर्याधिकानि च क्रमात् ॥७॥

प्रायेणास्या हि शाखाया आर्त्तानि पल्लवानि वै ।
स्वविषयप्रसक्तानि, दीर्णान्यज्ञानकीटकैः ॥८॥

नरकगतिनाम्नीयं, शाखेह द्वितीया मता ।
सन्ति सप्तप्रशाखाश्च, तस्या दुःखप्रदायिकाः ॥९॥

क्रमेण भीषणाऽऽकाराः, कारावासनिभा हि ताः ।
तासां प्रत्येकपर्णानि, सहन्ते व्यसनं चिरम् ॥१०॥

परमाधार्मिकाभिख्यासस्यकीटकदंशनैः ।
तुदन्ति तानि पत्राणि, मिथः सङ्घर्षणेन च ॥११॥

तृतीयाऽथ सुशाखाऽस्ति, विबुधगतिसञ्ज्ञकः ।
प्रशाखाः स्युश्चतस्रोऽस्य, वैमानिकादिभेदतः ॥१२॥

पल्लवानि विभक्तानि, तासामिन्द्रादिजातिभिः ।
उन्निन्द्राणि सुरूपाणि, पञ्चविषयभाञ्जि च ॥१३॥

परं परस्परा[1]सूयापरिखिन्नानि तानि तु ।
दर्पेण स्पर्द्धमानानि, वृथा परितपन्ति रे ! ॥१४॥

१. ईसाए दुहि अन्नो, अन्नो वेरियणकोवसंतत्तो ।
अन्नो मच्छरदुहिओ, नियडीए विडंबिओ अन्नो ॥ ३८८ ॥ भवभावना ॥

- त्रस नाम की प्रशाखा में पर्ण द्वीन्द्रियादि जातियों से भिन्न हैं और क्रमशः अधिक शक्तिवाले हैं...७
- प्रायः करके इस शाखा के पत्ते आर्त होते हैं, अपने विषयों में आसक्त होते हैं और अज्ञानरूपी कीडों के द्वारा छिन्न-भिन्न होते हैं...८
- नरक गति नाम की यह दूसरी शाखा मानी गयी है। उसकी सात प्रशाखाएं दुःख देने वाली है...९
- क्रम से भीषण आकार वाली, कारावास के समान वे प्रशाखाएं हैं और उनके पत्ते दीर्ध समय तक दुःखों को सहन करते हैं ...१०
- परमाधामी नाम के पर्णकीट के (पत्ते खा जाने वाला कीड़ा) दंस से और परस्पर संघर्ष से वे पत्ते पीडित होते हैं...११
- अब, तीसरी देवगति नाम की शाखा है, उसकी वैमानिक आदि भेद से चार प्रशाखाएं होती हैं...१२
- उन प्रशाखाओं के ''इन्द्र''आदि जातियों द्वारा विभाजित किये गये पर्ण प्रफुल्लित, सौंदर्यवान और पांचों इन्द्रियों के विषय से युक्त हैं - भोग करने वाले हैं...१३
- परन्तु परस्पर ईर्ष्या से अभिभूत वे अहंकार से स्पर्द्धा करते हुए बेवजह ही परिताप करते हैं...१४

तुर्या मनुजनाम्न्यस्ति, शाखाऽत्र हृदयङ्गमा ।
कर्माकर्माऽऽख्यभूभेदाद्, द्वे प्रशाखे स्मृते बुधैः ॥१५॥

अकर्मभूमिसञ्ज्ञायां, प्रशाखायां सुदृश्यते ।
युगलपर्णसङ्घातः, श्रान्तिदुःखविवर्जितः ॥१६॥

कर्मभूमिप्रशाखायां, पर्णानि द्विविधानि च ।
एकानि प्राप्ततत्त्वानि, मूढानि चेतराणि तु ॥१७॥

तत्र च मूढपर्णानि, रज्यन्ति भोगसङ्कुले ।
कषायाऽऽतपतप्तानि, क्षरन्ति कालतस्ततः ॥१८॥

यानि तु प्राप्ततत्त्वानि, धुर्याणि धर्मकर्मणि ।
आजन्मसंविरक्तानि, गीयन्ते तानि कोविदैः ॥१९॥

संसिद्धसर्वकर्माणि, मुक्तानि कर्मणोऽपि च ।
च्यवन्ते तानि कालेन, लभन्ते पदमक्षरम् ॥२०॥

श्लाघ्यानि तानि भुव्यत्र, वर्यपर्णानि धर्मिभिः ।
जन्मादीनि पवित्राणि, तेषां गेयानि चाऽऽमुदा ॥२१॥

श्रीहंसरत्ननाम्नः सत्पर्णस्यैतादृशस्य तु ।
वर्णयामि सुवृत्तान्तं, जन्मादीनां यथाक्रमम् ॥२२॥

- चौथी मनुष्यगति नाम की सुंदर शाखा है । कर्मभूमि और अकर्मभूमि के भेद से उसकी दो प्रशाखाएं विद्वानों द्वारा बतायी गयी है...१५
- अकर्मभूमि नाम की प्रशाखा में श्रम और दुःख से रहित जुगलबंध पत्तों का समुह दिखता है...१६
- कर्मभूमि नाम की प्राशाखा में दो प्रकार के पत्ते हैं १. जो तत्त्व को प्राप्त कर चुके हैं । २. मूढ...१७
- वहां जो मूढ पर्ण हैं वे भोगों के समुह में लीन रहते हैं और कषायों के ताप से तप्त ऐसे वे समय बीतने पर वहां से बिखर जाते हैं...१८
- साथ ही, जो तत्त्व प्राप्त कर चुके हैं, जो धर्मकार्य में अग्रसर और जन्म से ही वैरागी है, ऐसे पर्णों का गुणगान विद्वानों द्वारा किया जाता है...१९
- जिनके तमाम कार्य सिद्ध हो चुके हैं और पुनः जो कर्मों से भी मुक्त हो चुके हैं वे काल के परिपाक से च्यूत हो जाते हैं और अक्षरपद को प्राप्त करते हैं...२०
- वे श्रेष्ठपर्ण यहां धरती पर धर्मीजनों के द्वारा प्रशंसा करने योग्य हैं और उनके पवित्र जन्म आदि आनंद से गान करने योग्य हैं...२१
- ऐसे ही श्री आ.वि. हंसरत्नसूरि नाम के सुंदर पर्ण के जन्म आदि के वृत्तांत का वर्णन मैं यथाक्रम करता हूं...२२

(जन्मभूमिः, जननीजनेतारौ च)

नृरत्नखनिरेषोऽस्ति, **भारतो** ज्ञानभारतः ।
अस्मिन् **गुर्जरदेश**श्च, राजते नाकपूरिव ॥२३॥

खं यदाऽऽच्छादयन्त्यब्दा, विधुकलास्वसूयया ।
तदा प्रावृषि गव्यत्र, कलास्तन्वन्ति केकिनः ॥२४॥

जाड्यखिन्नतनोर्जाड्यवारणाय किमुच्चकैः ।
हेमन्ते कुर्कुटा अत्र, गायन्त्यर्कोदयस्तवम् ? ॥२५॥

सूर्यदेवः प्रकोपेन, ग्रीष्मे तापयति क्षितिम् ।
शमयन्ति तदा तप्तां, तां देव्यो नर्मदादयः ॥२६॥

विविधभोज्यनेपथ्यभाषाभूषादिभिः स्फुटम् ।
भूमिरियं सदाकालं, कलावती हि गुर्जरी ॥२७॥

प्राच्यस्थापत्यदर्शेन, हृष्यन्ति लोकचक्षुषः ।
तीर्थयात्रां च कृत्वाऽत्र, शान्तिमेति मनो नृणाम् ॥२८॥

सर्वधर्मसहिष्णुत्वं, निर्विवादं सुदृश्यते ।
भ्राजते जैनसाम्राज्यं, तत्र वर्यं विशेषतः ॥२९॥

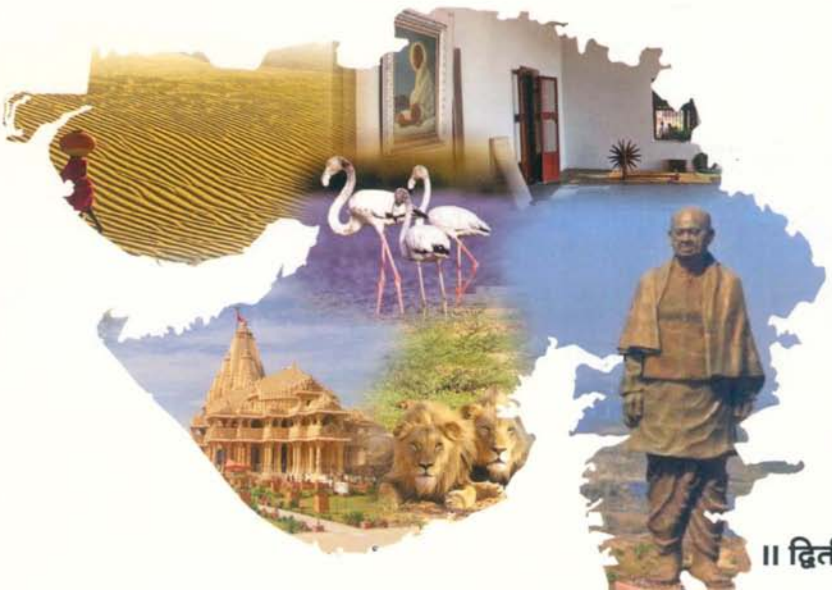

(जन्मभूमि, जननी और जनेता)

- ज्ञानरूपी प्रकाश में रत ऐसा यह **भारतदेश** तो वास्तव में नररत्नों की खदान है और उसमें **गुजरातराज्य** देवलोक की नगरी की तरह आलोकित है...२३

- वर्षाकाल में बादल चंद्र की कलाओं के प्रति ईर्ष्याभाव से जब आकाश को ढंकते हैं तब यहां (गुजरात में) धरती पर मोर कलाओं का विस्तार करते हैं...२४

- जड़ बने हुए शरीर की जड़ता को दूर करने के लिए ही क्या हेमन्तऋतु में यहां (गुजरात में) मुर्गे ज़ोर से (प्रातः काल में) सूर्योदय की (स्वागत) स्तवना गाते हैं...२५

- ग्रीष्मऋतु में जब सूरज देवता प्रकोप के द्वारा धरती को तपाते हैं तब नर्मदा आदि देवियां तप्त उस भूमि को शांत करती हैं...२६

- विविध प्रकार के भोजन, वेशभूषा, भाषा, अलंकार आदि से निश्चित तौर पर यह गुजरात की भूमि सदा कला से पूर्ण होती है...२७

- यहां (गुजरात में) प्राचीन स्थापत्यों के दर्शन से लोगों की आंखें हर्षित होती है और तीर्थयात्रा करके लोंगों का मन शांत होता है...२८

- वहां (गुजरात में) विवादरहित सवधर्मसहिष्णुता देखने मिलती है और विशेष करके जैनधर्म का साम्राज्य चमकता हुआ दिखाई दे रहा है...२९

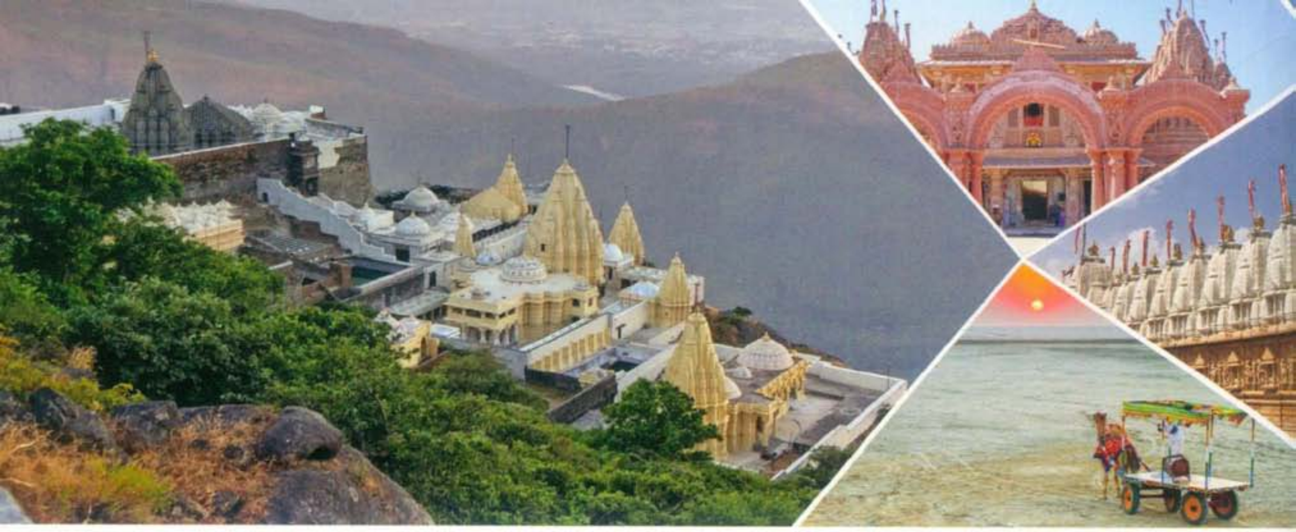

रैवताचलशङ्खेशशत्रुञ्जयादिनामतः ।
चकासत्यत्र तीर्थानि, सङ्कीर्णानि सदा जनैः ॥३०॥

पांसवोऽप्यत्र रे ! पूताः, सद्गुरुपादपांसुभिः ।
तेन निसर्गतो लोकाश्चलन्ति धर्मवर्त्मनि ॥३१॥

अत्रापि राजते **कच्छ**नामा देशो मनोरमः ।
भद्रेश्वरादितीर्थैर्यो, मण्डितः सुयशोधरः ॥३२॥

विजयाविजयौ यत्र, शीलवन्तौ सुदम्पती ।
बभूवतुः सुविख्याते, सेयं कच्छधरा वरा ॥३३॥

मरावपीह कच्छस्य, मृदः सिताश्चकासति ।
द्योतत उज्ज्वला कीर्तिर्मन्ये ह्यस्य कणे कणे ॥३४॥

पर्वाणि चात्र दिव्यानि, सञ्जायन्ते पदे पदे ।
अत्रत्यानां सतां मन्ये, पर्वैव जीवनं खलु ॥३५॥

सारल्यधृतिवीर्यादिगुणगन्धधरोद्गमाः ।
सन्तस्तत्र विराजन्त, आकृष्टगुणिषट्पदाः ॥३६॥

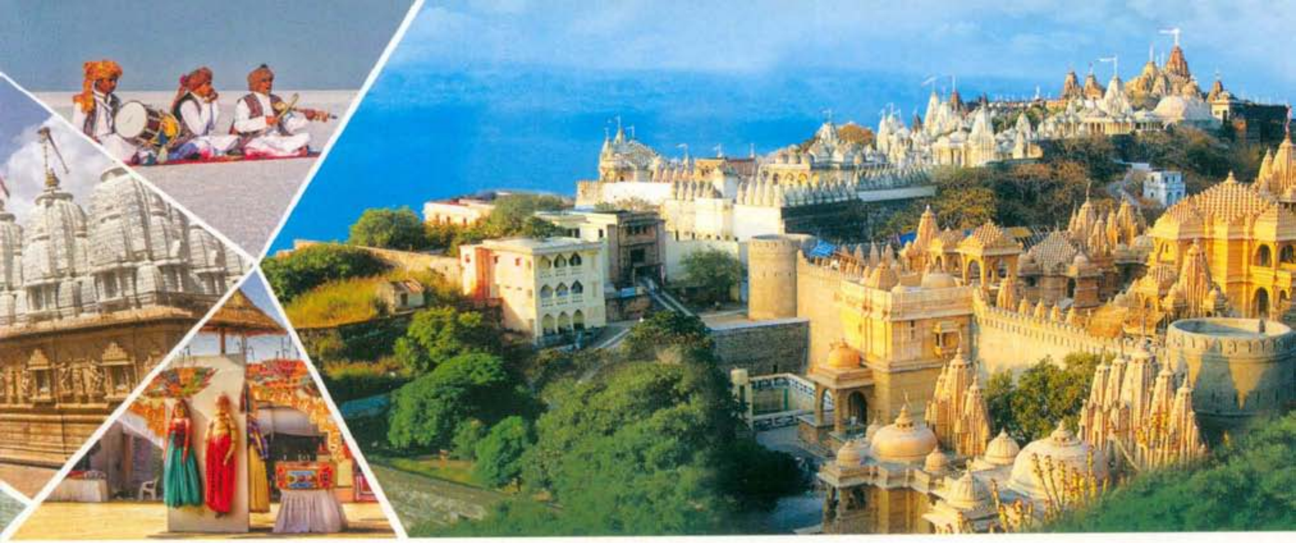

- भक्त लोगों से भरे हुए गिरनार, शंखेश्वर, शत्रुंजय आदि नाम वाले तीर्थ यहां (गुजरात में) शोभा दे रहे हैं...३०

- यहां (गुजरात में) सद्‌गुरू की चरणरज से रजकण भी पावन है इसलिए स्वाभाविक रूप से यहां लोग धर्म के मार्ग पर आगे बढ रहे हैं...३१

- इस गुजरात में भी शुभ यश को धारण करने वाले भद्रेश्वर आदि तीर्थों से मंडित सुंदर ऐसा **कच्छ** नाम का देश शोभा दे रहा है...३२

- विजय सेठ और विजया सेठानी नाम के शीलवान विख्यात दंपत्ति जहां हुए वह यह सुंदर कच्छ की धरती है...३३

- यहां कच्छ के रेगिस्तान में भी सफेद मिट्टी शोभा दे रही है (जिसे देखकर) मैं मानता हूं कि इस कच्छ की उज्जवल कीर्ति (रेत) के कण-कण में चमक रही है...३४

- यहां (कच्छ में) कदम-कदम पर दिव्य पर्व मनाये जाते हैं, यहां बसने वाले सज्जनों का जीवन ही वास्तव में पर्व है ऐसा मैं मानता हूं...३५

- सरलता, धैर्य, वीर्य आदि गुणरूपी गन्ध को धारण करने वाले पुष्प जैसे सज्जन यहां (कच्छ) में बिराजते हैं जिन्होंने गुणीजनरूपी भ्रमरों को आकर्षित किया है...३६

कदाचिद्विहरन्तीनां वसन्तीनां कदाचन ।
कच्छेऽच्छसाधुसाध्वीनां, प्रसरो दृश्यते शुभः ॥३७॥

कच्छ **आधोइ**सद्ग्रामो, धाम सुकृतिसन्ततेः ।
शस्यसद्धर्मसस्यानामुत्पत्तिभूश्च शोभते ॥३८॥

अस्य ग्रामस्य वास्तव्यो, **देवजी**नामश्रावकः ।
प्रबुद्धो यः **कलापूर्णसूरीणां** सुवचोऽमृतैः ॥३९॥

श्रीभद्रेश्वरतीर्थस्य, यात्रायां गतवान् हि सः ।
गुरूक्ता नियमाः सर्वे, तेनाऽऽत्ता निजश्रेयसे ॥४०॥

राजीनाम्नी प्रिया ह्यस्य, प्रियधर्मा पतिव्रता ।
जिनाऽऽज्ञाप्रतिबद्धा च, शीलालङ्कारभूषिता ॥४१॥

- कभी विहार करते और कभी स्थिरता करते ऐसे सुंदर साधु-साध्वीजी भगवंतों का शुभ समुह कच्छ में दिखता हैं...३७

- इस कच्छ में प्रशंसनीय ऐसे सद्‌धर्मरूपी धान्य का उत्पत्ति स्थान और सुकृत की सन्तति का धाम ऐसा **आधोई** गांव शोभा दे रहा है...३८

- इस गांव के निवासी **देवजीभाई** नाम के श्रावक हैं जिन्होंने **अध्यात्मयोगी पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरीश्वरजी महाराजा** के वचनरूपी अमृत से बोध प्राप्त किया है...३९

- श्री भद्रेश्वर तीर्थ के छ''री'' पालित संघ में वे गये और (उस संघ में) गुरूभगवंत ने जितने भी नियम कहे वे सारे उन्होंने स्वकल्याण के लिए ग्रहण किये...४०

- पतिव्रता, जिनाज्ञा में प्रतिबद्ध, शीलरूपी अलंकार से भूषित और धर्म है प्रिय जिन्हें ऐसी इस श्रावक की **राजीबेन** नाम की श्राविका थी...४१

(जन्मोत्सवः)

वैक्रमाब्देऽग्निपादाभ्रबाहुमिते (२०२३) हि चैत्रके ।
दशम्यां कृष्णपक्षस्य, सा सूते स्म सुतं वरम् ॥४२॥

पूर्णचन्द्रसमं वक्त्रं, मृगाक्षिसदृशौ दृशौ ।
पद्मपत्रसमाङ्गुल्यो, वृत्ताबाहू सुदर्शनौ ॥४३॥

ग्रीवा तु वलयाऽऽकारा, कुवलयसमौ करौ ।
ललाटमर्धचन्द्राऽऽभमौष्ठौ कोकनदोपमौ ॥४४॥

एवं सुमांसलं गात्रं, पुत्रस्य सर्वलक्षणम् ।
दृष्ट्वा हृष्टौ निजे चित्ते, तौ मातापितरौ भृशम् ॥४५॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

फलं जिनार्चनस्येदं, सद्गुरोः सेवनस्य च ।
पुत्रलाभ इति स्वान्ते, चिन्तयामासतुर्हि तौ ॥४६॥

शिष्टलोकाः समाहूता, मिष्टभोज्यं वितारितम् ।
महतां खलु जन्मापि, स्यान्महोत्सवकारणम् ॥४७॥

वारंवारं मुखं तस्य, दृष्ट्वा रोकेन्दुसोदरम् ।
सतां मुखसरोजानि, स्फुटितानि मुहुर्मुहुः ॥४८॥

(जन्ममहोत्सव)

- विक्रम संवत २०२३, चैत्र वदि १० के दिन उन्होंने सुंदर ऐसे पुत्र को जन्म दिया...४२
- पूर्णचन्द्र जैसा मुख, हिरन की आंख जैसी आंखें, कमल के पत्र जैसी उंगलियां, सुंदर ऐसे गोल बाहु...४३
- कंकणाकार वाली (गोल) गर्दन, कमल जैसे हाथ, अर्ध चंद्र जैसा भाल और लाल कमल जैसे दो होठ...४४
- इस प्रकार के सर्वलक्षण वाले, हुष्ट-पुष्ट ऐसे पुत्र के शरीर को देखकर माता-पिता अपने मन में अत्यंत आनंदित हुए...४५
- परमात्मा की पूजा का एवं सद्‌गुरु की सेवा का यह फल है कि हमें पुत्र प्राप्ति हुई-इस प्रकार उन्होंने (माता-पिता ने) मन में सोचा...४६
- शिष्टलोगों को बुलाया गया, मिठाइयों का वितरण किया गया क्योंकि महापुरूषों का जन्म भी महोत्सव का कारण बनता है...४७

- पूनम के चन्द्र जैसे उसके मुख को बार-बार देखकर सज्जनों के मुखरूपी कमल बार-बार खिल उठे...४८

आत्मीयैर्हरिरित्याख्या, तस्मै दत्ता सुधीवरैः ।
चिन्तयित्वा यदायत्यां, मोहेभं स हनिष्यति ॥४९॥

जनन्युद्यानपालीव, संस्कारवारिसेचनम् ।
चकार हरिगुल्मे सा, गुल्मोऽपि ववृधे क्रमात् ॥५०॥

कन्दुकक्रीडया क्रीडन्, गच्छन् नित्यं जिनालयम् ।
यापयति स्म कालं स्वं, प्रवर्धमानया मुदा ॥५१॥

प्रायेण ज्ञायते न स्वबाल्यं कदा प्रयात्यतः ।
सूर्योऽपि यौवनं प्राप्य, बाल्यस्मृत्या तपत्यहो ! ॥५२॥

एकदा जीवने तस्य, किञ्चित्तु घटितं नवम् ।
तदहं क्रमतो वक्ष्ये, सावहिता भवन्तु भोः ! ॥५३॥

मया दर्शितो लोकवृक्षः किलादौ,
ततो गुर्जरत्रा पवित्रा च यत्र ।
हरेर्जन्म बाल्यं च प्रोक्ते क्रमेण,
स जीयाद् द्वितीयो धरायां सुपक्षः ॥५४॥ भुजङ्गप्रयातम् ॥

॥ इति द्वितीयः पक्षः समाप्तः ॥

- बुद्धिशाली ऐसे स्वजनों के द्वारा ''भविष्य में यह मोहरूपी हाथी का हनन करेगा । ''इस प्रकार सोचकर उसे (बालक को) **हरि** (जिसका अर्थ सिंह भी होता है) इस प्रकार नाम दिया...४९

- माता ने मालिन की तरह उस हरिरूपी पौधे पर संस्काररूपी पानी का सिंचन किया और वह पौधा भी क्रम से बढता गया...५०
- प्रतिदिन गेंद के खेल से खेलने वाला और जिनालय जाने वाला ऐसा वह (हरि) अपने समय को बढते हुए आनंद से बीता रहा है...५१
- प्रायः करके खुद का बचपन कब गुजर जाता है यह पता नहीं चलता इसलिए अहो ! युवावस्था को प्राप्त करनेवाला सूर्य भी अपने बचपन के स्मरण से तप रहा है...५२
- एक बार उसके जीवन में कुछ नयी घटना घटित हुई जिसे मैं क्रम से कहूंगा । अतः सावधान रहना...५३
- जहां प्रारंभ में मेरे द्वारा लोकवृक्ष बताया गया, उसके बाद पवित्र गुजरात और क्रमशः हरि का जन्म तथा हरि का बचपन बताया गया वह यह दूसरा पक्ष पृथ्वी पर विजयश्री को प्राप्त करे...५४

॥ दूसरा पक्ष समाप्त ॥

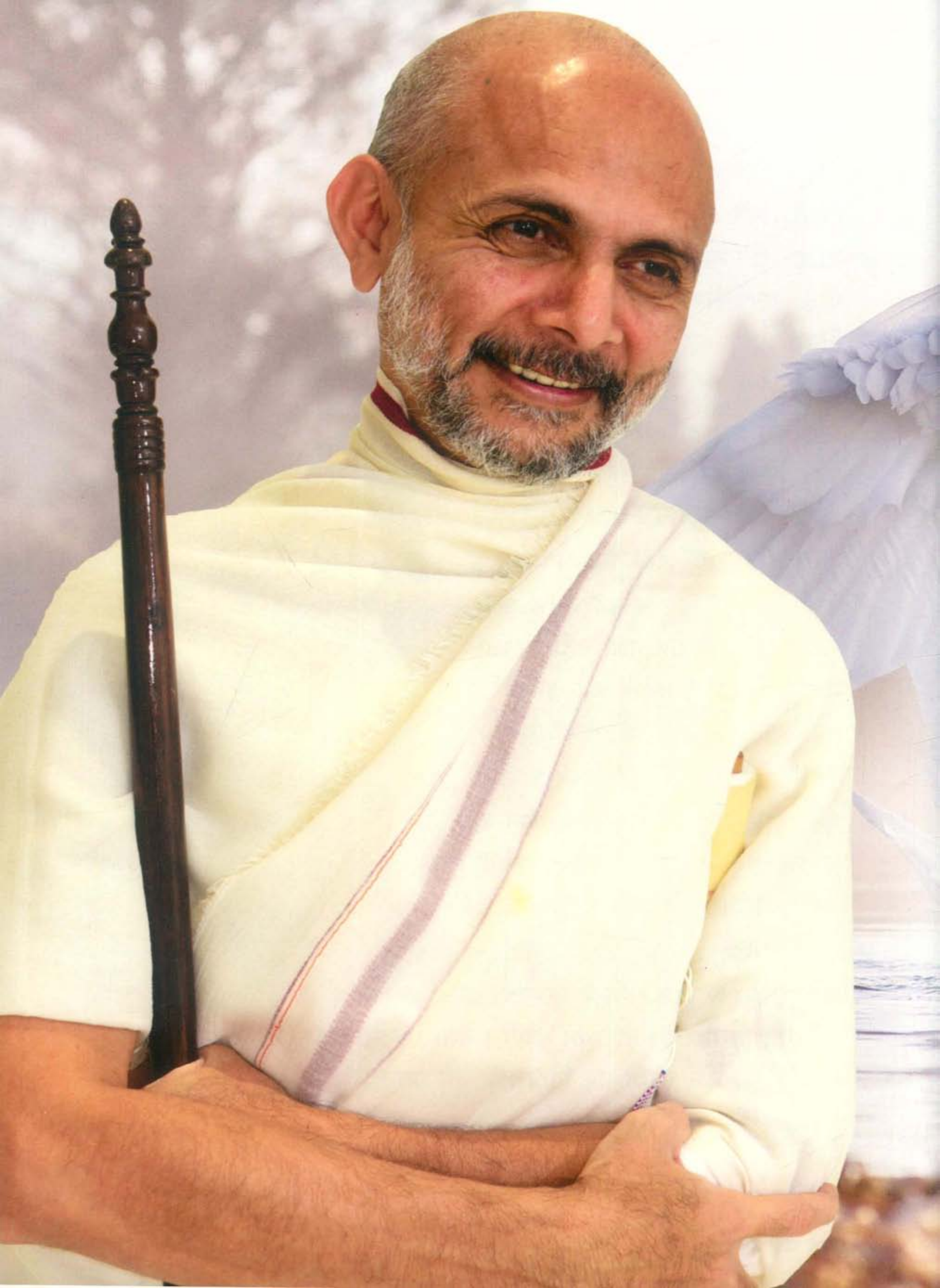

अन्तरालापः

भिक्षूणामर्थनीयः कः ? कः खगः श्वेतवर्णकः ?
कश्चाक्षयपदं दत्ते ? श्रीमान् हंस ऋषीश्वरः ॥

- भिक्षुकों के लिए प्रार्थना करने योग्य कौन है ?- श्रीमान् (श्रीमंत) ।
  कौनसा पक्षी सफेद रंग वाला है ?- हंस ।
  कौन मोक्ष देता है ?- ऋषीश्वर (गुरु) ।
  = गुरुदेव आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी श्रीमान् (=कल्याण से युक्त) है ।
- इसमें तीन प्रश्न प्रथम तीन पंक्तियों में है और उनके उत्तर चौथी पंक्ति से मिल जाते है और साथ ही इस चौथी पंक्ति में ऋषीश्वर ऐसे आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी कल्याण से युक्त है ऐसा अर्थ भी द्योतित होता है ।

- यहां ''हंस'' इस शब्द को 'ते लुग्वा' (सि.हे.३/२/१०८) नियम से ''हंसरत्न'' शब्द समझना है । आगे भी जहां 'हंस' शब्द से 'हंसरत्न' शब्द का ग्रहण किया हो वहां इस सूत्र का योग समझना ।

॥ तृतीयः पक्षः ॥

(हरेः सद्गुरुप्राप्तिः, मुमुक्षुत्वं, दीक्षा च)

अबीभत्सोऽहास्यो, मलदलन उग्रो गतभयो,
भ्रवभ्रान्त्या भीतस्तरलघटनायामतरलः ।
अदीनश्चारोद्रौ, निजतनुविभूषाविरहितो,
रसातीतं नत्वा, श्रमणमिह पक्षं प्रविदधे ॥१॥ शिखरिणी ॥

वर्धमानतपःसत्काऽष्टोत्तरशतसम्मिता ।
ओलिका प्रचलन्त्यासीद्, भुवनभानुसद्गुरोः ॥२॥

मुम्बापुरीमहापुर्यामायोजितस्तदा किल ।
लालबागप्रभागे तु, तस्याः पारणकोत्सवः ॥३॥

सङ्घे सङ्घे प्रजातानि, तपांसि विविधानि तु ।
महतामुत्सवे कः स्यादनुत्सवमनाः किल ? ॥४॥

महाजनकृताऽऽह्वानो, वाद्यमण्डलेसत्कृतः ।
भुवनभानुसूरीशस्तदा तत्र विवेश सः ॥५॥

तपःपूततनुं दृष्ट्वा, भुवनभानुसद्गुरोः ।
सुजना भक्तिभावेनाऽनमद् भृशं कृतादराः ॥६॥

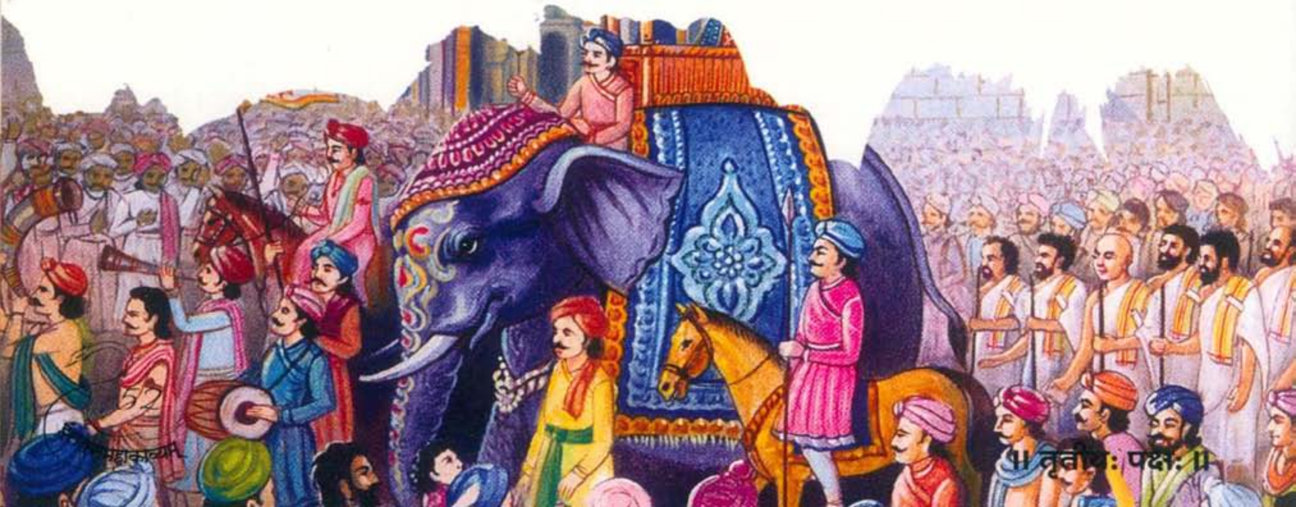

॥ तीसरा पक्ष ॥

(हरि की सद्गुरुप्राप्ति, मुमुक्षु अवस्था और दीक्षा)

- जो बीभत्स नहीं हैं (बीभत्सरस का निरास), हास्यरहित हैं (हास्यरस का निरास), पाप को दलने में उग्र हैं (शांतरस का निरास), भय रहित हैं (भयानकरस का निरास), भवभ्रमण से डरे हुए हैं (वीररस का निरास), तरल घटना में अतरल=स्थिर हैं (अद्भुतरस का निरास), दैन्य रहित हैं (करुणारस का निरास), रौद्रता रहित हैं (रौद्ररस का निरास), खुद के शरीर की विभूषा नहीं करने वाले (श्रृंगाररस का निरास) ऐसे रस से अतीत हो चुके मुनि को नमस्कार करके मैं पक्ष की रचना करता हूं...१
- उस समय पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. को वर्धमानतप की १०८ वी ओली चल रही थी...२
- तब मुंबई महानगर में लालबाग नाम के विस्तार में उस ओली के पारणोत्सव का आयोजन किया गया था...३
- (इस अवसर पर) प्रत्येक संघ में विविध प्रकार की तपस्याएं हुई, वास्तव में महापुरुषों के उत्सव में उत्सव बिना के मन वाला कौन होता है ?...४
- महाजनों ने जिनकी अगुवानी की, वाद्यमंडली ने (बेन्ड आदि) जिनका सत्कार किया ऐसे पूज्यपाद आ.वि. भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा ने वहां (लालबाग में) प्रवेश किया...५
- पूज्यपाद आ.वि. भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. के तप से पावन ऐसे शरीर को देखकर किया है आदर जिन्होंने ऐसे सज्जन इस प्रकार भक्तिभाव से झुके...६

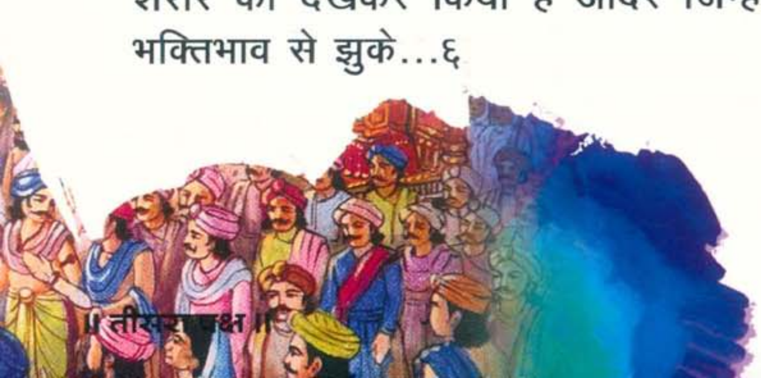

(निम्नोक्ता अष्टश्लोकाः समसंस्कृतरूपाः सन्ति)

यथा हि–

समयसारसंबुद्धं, धीरं विमलचेतनम् ।
चरणकरणाऽगारं, कलहदवतोयदम् ॥७॥

परमसुखसंलीनं, समताकेलिमन्दिरम् ।
सोमकलाघटाहारिनयनं जनसंमतम् ॥८॥

मिहिरालोकसंहारिवदनं, मारमारणम् ।
नयखविहगं हिंसामायाकोपविदारणम् ॥९॥

अपारकरुणावाहं, रागगदनिवारणम् ।
भवसागरबोहित्थं, जीवहितपरायणम् ॥१०॥

विहतममताजालं, सुजनकुलसेवितम् ।
असूयानागमयूरं, मानगिरिपविं गुरुम् ॥११॥

देवदानवसङ्घातनतचरणसारसम् ।
गुणहंसकुलाऽऽवासविमलचित्तमानसम् ॥१२॥

मोहभयहरं वीरं, महागच्छधराधरम् ।
ससंवरं निरीहं च, वैरवारणवारणम् ॥१३॥

मङ्गलवरदं सूरिवरं सङ्घधुरावहम् ।
भूरिसूरिनतं [१]भूरिसुतं वन्दे निरामयम् ॥१४॥ अष्टभिः कुलकम् ॥

---

१. अत्र ''भूरि'' शब्दः द्रव्यवाचकोऽस्ति, न तु गुणवाचकः ।

जैसे कि (नीचे के आठ श्लोक समसंस्कृत में हैं = प्राकृत और संस्कृत दोनों प्रकार से पढे जा सकते हैं)

- जैसे कि समय के सार को जानने वाले, धीर, संसार का पार पानेवाले, चरण-करण के गृहसमान, कलहरुपी दावानल के लिए बादल...७
- परमसुख में लीन, समता के क्रीडा स्थान समान, चंद्र की कलाओं के समूहसमान सुंदर नयन वाले और लोक में सहमत...८
- सूर्य के प्रकाश का संहार करनेवाला मुख है जिनका वे, कामदेव का नाश करनेवाले, नयरुपी आसमान के विषय में पंछी, हिंसा-माया और क्रोध का नाश करने वाले...९
- अपार करुणा बहाने वाले, रागरुपी रोग का निवारण करनेवाले, भवसागर में जहाज समान और जीवहित में परायण...१०
- नष्ट कर दी है ममता की जाल जिन्होंने वे, सज्जनों के समूह द्वारा सेवित, ईर्ष्यारुपी नाग के लिए मोर समान, मानरुपी पर्वत के लिए वज्र समान ऐसे गुरु...११
- देव-दानव के समुह द्वारा नमन किये गये हैं जिनके चरणकमल, गुणरुपी हंस के समूह के आवासस्थान समान विमल चित्तरुपी मानसरोवर...१२
- मोह का भय हरनेवाले, वीर, बड़े गच्छ के राजा, संवर सहित, इच्छा रहित, मद रुपी हाथी को रोकनेवाले...१३
- मंगल और वर को देनेवाले, संघ की धुरा को वहन करनेवाले, अनेक आचार्यों द्वारा नमन किया गया हैं जिन्हें ऐसे रोग रहित भूरिबेन के पुत्र आचार्यदेव (विजय भुवनभानुसूरिजी) को मैं वंदन करता हूं...१४

हरिरपि समं पित्रा, गतो मलाडधामनि ।
ददर्श विमलाऽऽदर्शसोदरं गुरुतल्लजम् ।।१५।।

प्रवचने निषण्णः सोऽशृणोत् सद्गुरुसद्गिरम् ।
द्राक्षाक्षीरमधुभ्योऽपि, मधुरां श्रवणप्रियाम् ।।१६।।

यथा हि-
ज्ञेया श्रीः कुटिला कषायविषया, प्रोज्झ्या मनोदंशका
धार्यं धर्मधनं जडेषु विरतिः, कार्या परा धीधनैः ।
देयं स्वार्जितमर्थिने त्विति जना !, मा विस्मरन्तूत्तमाः !
कुल्यावत् कुरचिल्लवत् कनकवत्, कङ्कालवत् कूपवत् ।।१७।।
।। शार्दूलविक्रीडितम् ।।

वह्न्याखेटकमङ्गमत्र तनुमान्, निःसङ्ग एवेत्यहो !,
निर्लेप्योऽपि करोति रागजनितस्नेहेन कर्मार्जनम् ।
श्रुत्वा स्वादुवचो गुरोरपि बुधो, यात्यक्षयं नाऽक्रियः,
खाटीवत् खगवत् खवत् खजपवत्, खर्जूरवत् खञ्जवत् ।।१८।।
।। शार्दूलविक्रीडितम् ।।

प्राप्तव्या शुचिताऽपवर्गसुखदा, वृष्यं दयाम्भो भृशं,
त्याज्या दुष्परिणामदायिकुगुणा, धार्यं च तुर्यव्रतम् ।
दुर्भेद्या वृतिरात्मरक्षणकृते, रच्या यमानां परा,
गङ्गावद् गडयित्नुवद् गरलवद्, गाङ्गेयवद् ग्राववत् ।।१९।।
।। शार्दूलविक्रीडितम् ।।

- हरि भी पिता के साथ मलाड गया और वहां उसने (सर्वप्रथम बार) स्वच्छ दर्पण जैसे उत्तम गुरुमहाराज (पूज्यपाद भुवनभानुसूरिजी म.सा.)को देखा...१५
- प्रवचन में वह बैठा और वहां उसने अंगूर-खीर और शहद से भी मीठी, कर्णप्रिय ऐसी गुरु की वाणी सुनी...१६
- जिस प्रकार-लक्ष्मी को नीक जैसी कुटिल(वक्र) जाननी चाहिए, कषाय और विषयों को केंकडे की तरह मन को डसने से रोकना चाहिए, सुवर्ण की तरह धर्मरुपी धन को धारण करना चाहिए, हाडपिंजर की तरह जड के विषय में बुद्धिशालियों को विरति (विरसता) आत्मसात् करनी चाहिए, कुंए की तरह स्वयं द्वारा कमाया गया (धन) याचक को देना चाहिए । हे उत्तम मनुष्य ! आप इतनी बातें मत भूलना...१७
- यह शरीर अरथी की तरह अग्नि का शिकार बनेगा, जीव पंछी की तरह निर्मल है और आकाश के समान अलेप्य है फिर भी वह घी समान राग से उत्पन्न होनेवाले चिकनेपन से कर्म का अर्जन करता है और खजूर जैसी रसपूर्ण गुरु की वाणी सुनकर भी जो ज्ञानी पंगु की तरह निष्क्रिय है वह मोक्ष को प्राप्त नहीं करता...१८
- गंगा जैसी निर्मल शुद्धि को आत्मसात् करना चाहिए, पुनः बादल की तरह दयाभाव का पानी खूब बरसाना चाहिए, अशुभ परिणाम देनेवाले दुर्गुणों को विष की भांति छोड देना चाहिए, भीष्म के समान चौथा व्रत (ब्रह्मचर्य) धारण करना चाहिए और आत्मा की रक्षा के लिए चट्टान जैसी दुर्भेद्य नियमों की बाड़ रचनी चाहिए...१९

घोष्यस्ताररवेण शासनजयः, प्राप्यं पवित्रं यशो,
वाच्या वाग्मसृणा प्रतापनिचयश्चार्ज्यस्तपस्साधनात् ।
हेयो दूरत एव दुर्जन इहान्धः सन्नृपूषाऽऽगमे,
घण्टावद् घनसारवद् घुसृणवद्, घर्मांशुवद् घूकवद् ॥२०॥
॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

''धन्यः श्लाध्यो, गुरुरयमहो !'', देवजीश्राद्ध एवं
श्रुत्वा भानोर्मधुरवचनं, चिन्तयामास चित्ते ।
''दास्याम्येनं, स्वतनुज''मिति, प्राप्तहर्षातिरेक-
स्तुष्टो यस्माद्, भवति सुगुरोर्योग एवं न शीघ्रम्
॥२१॥ मन्दाक्रान्ता ॥

दुर्लभोऽत्र गुरोर्योगः, सद्गुरोस्तु सुदुर्लभः ।
तत्रापि प्रत्ययश्चित्ते, दुर्लभादपि दुर्लभः ॥२२॥

एको भिनत्ति सत्पात्रमपरस्तु परीक्षते ।
भेदः कुगुरुसद्गुर्वोर्मध्ये पाषाणशाणयोः ॥२३॥

समक्रियौ समाऽऽचारौ, समाना बहिरङ्गता ।
परं तयोर्मनो भिन्नं, चित्रमितः परं किमु ? ॥२४॥

- घंट की तरह शासन का जयघोष बुलंद आवाज में करना चाहिए, कपूर जैसा पवित्र यश प्राप्त करना चाहिए, केशर जैसी कोमल वाणी बोलनी चाहिए, सूर्य जैसे तप की साधना करके प्रताप का पूंज प्राप्त करना चाहिए, सत्पुरुषरुपी सूर्य का आगमन होने पर जो उल्लू की तरह अंध हो जाते हैं ऐसे दुर्जन को छोड देना चाहिए...२०
- पूज्यपाद आ.वि. भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज के मधुर वचन सुनकर देवजी नाम के श्रावक ने (हरि के पिताजी ने) इस प्रकार मन में सोचा, ''अहो ! यह गुरु धन्य हैं, प्रशंसनीय हैं और इन्हें मैं मेरा पुत्र (दीक्षा हेतु) अर्पित करूंगा'' इस प्रकार अत्यंत हर्ष पाकर वे तुष्ट हुए क्योंकि सुगुरु का योग इस प्रकार शीघ्र नहीं होता...२१
- गुरु का योग दुर्लभ है, सद्‌गुरु का योग उससे भी दुर्लभ है और वह योग होने के पश्चात् सद्‌गुरु के प्रति मन में विश्वास जगना दुर्लभ से भी दुर्लभ है...२२
- एक सत्पात्र को (सज्जन को अथवा भाजन को) तोड देता है और दूसरा उसका परीक्षण करता है, इसलिए कुगुरु और सद्‌गुरु के बीच पत्थर और कसोटी के पत्थर जितना अंतर है...२३
- समान क्रियावाले, समान आचारवाले और समान बाह्य प्रवृत्तिवाले होने के बावजूद भी वे (कुगुरु और सद्‌गुरु) दोनों का मन भिन्न होता है । इससे बडा आश्चर्य क्या होगा ?...२४

वह्निर्नीरति शर्वरी दिवसति, श्वानश्च शार्दूलति,
खद्योतो हरिदश्वति ज्ञति जडः, पङ्गुस्तथाऽऽशुगति ।
शल्यं पुष्पति सर्षपो नगति रे !, मूढो वदान्यत्यहो !,
किं किं गुर्वनुकम्पया भवति नो ?, या सर्वसिद्धिप्रदा ॥२५॥
॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

शैत्यं न चन्द्रकिरणे, मधुरत्वमाम्रे,
निर्लेपतां न गगने, न नगे स्थिरत्वम् ।
तेजस्वितां न तपने, परिभावयेऽहं,
दृष्टा गुणा यत इहाश्रितभानुपादाः ॥२६॥ वसन्ततिलका ॥

देवजी चिन्तयित्वैवं, जगाम गुरुसन्निधौ ।
स्वपुत्रमर्पयामास, हृदयमिव सोऽपरम् ॥२७॥

गुरुरपि हरिं दृष्ट्वा, सरलं हृदि नन्दितः ।
यतोऽरं विन्दते लक्ष्यमजिह्मगशिलीमुखः ॥२८॥

प्रव्रज्यासत्प्रतिष्ठादिमहोत्सवस्तदाऽभवत् ।
महागीतमहाऽऽनन्दजनसम्मर्दसंयुतः ॥२९॥

हरिरपि स्थितस्तत्र, भुवनभानुसन्निधौ ।
बालानामुत्सवे मोदो, बालमोदो महोत्सवः ॥३०॥

- आग पानी बनता है, रात दिन बनता है, कुत्ता शेर बनता है, जुग्नु सूर्य बनता है, जड बुद्धिमान बनता है, पंगु शीघ्रता से चलनेवाला बनता है, कांटा पुष्प बनता है, सरसों पर्वत बनता है, मूढ विद्वान् बनता है, अहो ! जो तमाम प्रकार की सिद्धि देते हैं उस गुरु की कृपा से क्या क्या नहीं हो सकता ? (अर्थात् सब कुछ हो सकता है)...२५

- चंद्रकिरण में शीतलता नहीं है, आम्रवृक्ष में मधुरता नहीं है, गगन में निर्लेपता नहीं है, पर्वत में स्थिरता नहीं है, सूर्य में तेजस्विता नहीं है ऐसा मैं सोचता हूं । क्योंकि यहां सभी गुण पूज्यपाद आ.वि. भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.के चरण के आश्रित बने दिखाई देते हैं...२६

- देवजीभाई इस प्रकार विचार करके गुरुदेव के सांनिध्य में गए और अपने पुत्र को अर्पण किया, मान लो अपना दूसरा हृदय ही सौंप न दिया हो !...२७

- गुरुदेव (पूज्यपाद आ.वि. भुवनभानुसूरि महाराजा) अत्यंत सरल ऐसे उस हरि को देखकर हृदय में आनंदित हुए, क्योंकि सरल (सीधा) जानेवाला तीर लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करता है...२८

- तब (मलाड में) बडे गीत, अत्यंत आनंद और लोगों की भीड से युक्त ऐसा दीक्षा और प्रतिष्ठा का महोत्सव चल रहा था...२९

- हरि भी पूज्यपाद आ.वि. भुवनभानुसूरि महाराजा की निश्रा में रहा । बालक को उत्सव में आनंद आता है और बालक का आनंद महोत्सव है...३०

तत्रेर्यापथिकासूत्रादूर्ध्वं, किमप्यजानति ।
हरौ प्रेम गुरूणां तु, ववर्ष समतावताम् ॥३१॥

पूर्वाऽसंलब्धप्रेम्णा स, उत्पन्नप्रत्ययो हरिः ।
सोल्लासं सद्गुरोः पार्श्वे, स्थितस्तत्पार्श्वसेवकः ॥३२॥

एकदा गुरुराहूय, पप्रच्छ सरलं हरिम् ।
''किमु ग्रहीष्यसे दीक्षां, सर्वाभीष्टप्रदायिनीम् ?'' ॥३३॥

हरिस्तु चिन्तयामास, बालबुद्ध्या ह्यवक्रहृत् ।
''ईषद्धासे यदीयच्छमाजीवं स्यात्कियत्पुनः ? ॥३४॥

सर्वे ददति सत्कारं, सर्वे कुर्वन्ति चाऽऽदरम् ।
बहिस्तादुग्रशास्ताऽपि, कोमलहृदयो गुरुः ॥३५॥

आपदाकीर्णसंसारे, सुखसंवेदनं कुतः ? ।
चिन्तारहितश्रामण्ये, दुःखसंवेदनं कुतः ?'' ॥३६॥

- वहां इरियावही सूत्र से अधिक कुछ भी न जाननेवाले हरि के प्रति समतावाले गुरुभगवंतों का प्रेम बरसा...३१

- पहले प्राप्त न किया हो ऐसे उस प्रेम से जिसे विश्वास उत्पन्न हुआ है ऐसा हरि उल्लासपूर्वक सद्‌गुरु के पास उनके बगल में सेवक की तरह रहा...३२

- एक बार गुरु ने सरल ऐसे हरि को बुलाकर पूछा -''क्या तुम सर्व इच्छित देने वाली दीक्षा ग्रहण करोगे ?''...३३

- सरल हृदयवाले हरि ने बालबुद्धि से सोचा, ''यदि इतने दिन रहने में इतना आनंद आया है तो आजीवन रहने में कितना आनंद आयेगा ?...३४

- सब सत्कार देते हैं, सब आदर करते हैं, बाहर से उग्र अनुशासनवाले गुरुदेव भी (भीतर से) कोमल हृदयवाले ही हैं...३५

- आपत्तियों से भरसक ऐसे इस संसार में सुख का अनुभव कहां से होगा ? और चिंतारहित ऐसे श्रमणजीवन में दुःख का अनुभव कहां से होगा ?''...३६

एवं विचिन्त्य ''प्रव्रज्यां ग्रहीतुमुद्यतोऽस्म्यहम्'' ।
इत्युवाच हरिर्डिम्भः, प्रहृष्टो गुरुपुङ्गवः ॥३७॥

सोत्साहः कार्यसंरम्भः, शास्त्राऽऽरम्भः समङ्गलः ।
विनीते वाचनाऽऽरम्भः, सद्यो हि फलदो भवेत् ॥३८॥

क्रियावश्यकतां तस्य, दृष्ट्वा हृष्टो गुरूत्तमः ।
प्रददौ निजहस्ताभ्यामाशीर्वादं विशारदः ॥३९॥

आहूता स्वजनास्तस्य, विज्ञापितो निजाऽऽशयः ।
तन्मातापितरौ हृष्टौ, प्रसृतश्च जयारवः ॥४०॥

ज्येष्ठशुक्लचतुर्थ्यां तु, निर्णीतस्तस्य निष्क्रमः ।
श्रीभानुसूरिनिश्रायां, माटुङ्गानामधामनि ॥४१॥

दृष्ट्वा विंशतिभव्यानां, दीक्षासत्कमहोत्सवम् ।
जातो विशेषतः सोऽपि, वैराग्यभावभावितः ॥४२॥

- इस प्रकार विचार करके ''मैं दीक्षा लेने के लिए तैयार हूं'' इस प्रकार हरि बोला और गुरुदेव खुश हुए..३७
- उत्साह के साथ किया गया कार्य का आरंभ, मंगल के साथ किया गया शास्त्र का आरंभ और विनीत के लिए किया गया वाचना का आरंभ तुरन्त ही फलदायी बनता है...३८
- उसकी (हरि की) क्रिया-अवंचकता को देखकर उत्तम ऐसे गुरुदेव प्रसन्न हुए और विद्वान् ऐसे उन्होंने अपने दोनो हाथों से आशीर्वाद दिए...३९
- उसके (हरि के) स्वजनों को बुलाया गया और खुद का आशय बताया गया, उसके माता-पिता आनंदित हुए और जय-जयकार का नाद फैल गया...४०
- ज्येष्ठ सुद ४ के दिन उसकी दीक्षा पूज्यपाद आ.वि. भुवनभानुसूरिजी म.सा.की निश्रा में माटुंगा में तय हुई...४१
- २० मुमुक्षुओं के दीक्षा महोत्सव को देखकर वह (हरि) भी विशेष रूप से वैराग्य से भावित हुआ...४२

(हरेः प्रव्रज्याग्रहणम्)

विंशतिदिनमध्ये हि, गुरुक्रमश्रितेरहो ! ।
सज्जो बभूव दीक्षार्थं, द्वादशवार्षिको हरिः ॥४३॥

दीपाऽऽभतीर्थकृद्बिम्बप्रतिबिम्बितदृग्युगम् ।
जिनालये तमोघ्नं तच्शुशुभाते हरेः परम् ॥४४॥

गुर्वब्दकरुणानीरपिपासुर्नेत्रचातकः ।
उपाश्रये सदा स्मेरवदनः शुशुभे हरिः ॥४५॥

गुणश्रीव्यवसायार्थव्रतदेशाटनेच्छया ।
गृहेऽपि रे ! कटीबद्धः, प्रकामं स व्यभाद् हरिः ॥४६॥

शुभाह्नि शुभवेलायामनेकसूरिसन्निधौ ।
श्रीफलाऽऽस्वादनव्याजाद्, हस्तविन्यस्तश्रीफलः ॥४७॥

केसरतिलकः कण्ठाभरणभूषितो वरः ।
प्रविवेश प्रव्रज्याया, मुमुक्षुर्मण्डपे हरिः ॥४८॥ ॥ युग्मम् ॥

(हरि की दीक्षा)

- गुरुचरण का आश्रय लेने के बीस दिनों में ही बारह साल का हरि दीक्षा लेने हेतु सज्ज हो गया...४३
- दीपक जैसे तीर्थंकर के बिंब से प्रतिबिंबित होनेवाली और पाप को हरनेवाली ऐसी हरि की आंखे जिनालय में अत्यंत चमक उठी...४४
- गुरुरूपी बादल के करुणारूपी पानी को पीने की इच्छावाले नेत्ररुपी चातक जिसके हैं वह मुस्कुराते चेहरेवाला हरि उपाश्रय में शोभा दे रहा था...४५
- गुणरूपी लक्ष्मी के व्यवसाय के लिए व्रतरूपी देशाटन की इच्छा से घर में भी (दीक्षा हेतु) कटिबद्ध ऐसा वह हरि सुंदर दिख रहा था...४६
- शुभ दिन पर, शुभ क्षण पर, अनेक सूरिभगवंतों की निश्रा में, कल्याणरूपी फल को चखने के बहाने से हाथ में रखा है श्रीफल जिसने ऐसा...४७
- केशर के तिलकवाला, कंठाभरण से (हार से) भूषित, सुंदर ऐसे मुमुक्षु हरि ने प्रव्रज्या मंडप में प्रवेश किया...४८

प्रदीर्घाऽऽयामविष्कम्भः, स्तम्भस्तम्भितदुश्चरः ।
रम्यनिवेशसन्मार्गः, सरलधरणीतलः ॥४९॥

गुणैकसंश्रयाऽऽचार्यव्रातमण्डितमञ्चकः ।
सङ्गीतकारसङ्गीतस्वरपूरितदिङ्मुखः ॥५०॥

श्रद्धालुभक्तिसम्भूतहस्ततालश्रुतिप्रियः ।
प्रव्रज्यामण्डपः सोऽयं, ररञ्ज भव्यचेतसम् ॥५१॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

स्वादु रुवन्ति वाद्यानि, गायन्ति मधुरं पिकाः ।
रम्यं स्तुवन्ति वाचाटा, वान्ति सुगन्धिनोऽनिलाः ॥५२॥

उच्चैर्नदन्ति सद्घण्टाः, कण्ठा भान्ति मृदुस्वराः ।
बहवो दक्षिणावर्तशङ्खा मुञ्चन्ति सुस्वनम् ॥५३॥

कलं गुञ्जन्ति किङ्किण्यो, द्वारशाखाऽवलम्बिताः ।
किं ससैन्यः समायातो, मण्डपे नादभूपतिः ? ॥५४॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

- बडी लंबाई और चौडाईवाले, खंभों से जिसने दुर्जनों को रोका है ऐसे, सुंदर प्रवेशमार्गवाले, सरल भूतलवाले...४९
- गुणों के एकमात्र आश्रयरूप ऐसे आचार्यों के समूह से सुशोभित मंचवाले, संगीतकार के संगीत के स्वर से परिपूर्ण दिशाओं के मुखवाले...५०
- श्रद्धालुओं की भक्ति द्वारा उत्पन्न हुई करतलध्वनि से सुंदर ऐसे इस प्रव्रज्या के मंडप ने भव्य जीवों के मन को आनंदित कर दिया...५१
- वाजित्र सुंदर आवाज कर रहे हैं, कोयलें मधुर गान कर रही हैं, चारण सुंदर स्तुति गा रहे हैं और सुगंधी पवन बह रहा है...५२
- घंट जोर से बज रहे हैं, कोमल स्वरवाले (मनुष्यों के) कंठ सुंदर लग रहे हैं और कई दक्षिणावर्त (शंख की विशेष प्रजाति) शंख सुंदर अवाज फैला रहे हैं...५३
- कमान के सहारे लटक रही घुघरियां सुंदर गुंजन कर रही हैं । क्या नाद नाम का राजा सैन्य के साथ इस मंडप में आ गया है ?...५४

स त्रिः प्रदक्षिणां दत्त्वा गत्वा गुर्वन्तिके हरिः ।
दत्तचित्तो विधौ[२] जातो, यथा चकोरबालकः ॥५५॥

समागते मुहूर्ते च, रजोहरणदित्सया ।
मोक्षाऽऽरोहणरज्ज्वाभौ, पुरश्चक्रे गुरुः करौ ॥५६॥

गुरुहस्तात् समादाय, धर्मध्वजं ननर्त सः ।
हरिर्वर्धिष्णुहर्षेण, यथा केकी पयोमुचः ॥५७॥

(निम्नोक्ता अष्टश्लेका अर्धसंस्कृतरूपेण निबद्धाः सन्ति)
अहो ! यानं मया प्राप्तं, घोरसंसारसायरे ।
कल्पद्रुर्मरुभूमौ वा, गिम्हे सीयजलासयो ॥५८॥

लब्धस्तथाऽगदङ्कारः, कसायरोगनासगो ।
अथवा कलिशर्वर्यां, चंदो निम्मलदंसणो ॥५९॥

सदालम्ब्यं हि सोपानं, मोक्खरस्स मिलियं तहा ।
शान्त्यै क्षेमबुभुक्षाया, अमियरसभोयणम् ॥६०॥

२. विधौ - इसमें ''विधु'' और ''विधि'' का श्लेष है ।

- (परमात्मा को) तीन प्रदक्षिणा देकर हरि गुरु के पास गया और जैसे चंद्र के प्रति बालचकोर एकचित्त होता है वैसे ही विधि में वह एकचित्त वाला हुआ...५५
- मुहूर्त आने पर रजोहरण देने की इच्छा से मोक्ष में जाने हेतु रस्सी समान ऐसे दो हाथ गुरु ने आगे किये...५६
- गुरु के हाथों से रजोहरण लेकर हरि ने बढ रहे आनंद के साथ नृत्य किया जैसे मयूर बादल को देखकर नृत्य करता है...५७

(नीचे के आठ श्लोक अर्धसंस्कृत में हैं अर्थात् १-३ पाद संस्कृत में और २-४ पाद प्राकृत में)

- अहो ! मेरे द्वारा गहन संसार में जहाज पाया गया अथवा मरुधर में कल्पवृक्ष प्राप्त किया गया और ग्रीष्मऋतु में शीतल जलाशय मिल गया...५८
- तथा कषायरूपी रोग का नाश करनेवाला वैद्य प्राप्त किया गया अथवा कलियुग की रात्रि में निर्मल हैं दर्शन जिसके ऐसा चंद्र पाया गया...५९
- सुचारु रूप से अवलंबन किया जा सके ऐसी मोक्ष की सीढियां प्राप्त की गई और कल्याण की भूख को शांत करने के लिए अमृत के रस के समान भोजन पाया गया...६०

वज्रो वाऽत्र मयाऽवाप्तो, मानपव्वयचुण्णओ ।
अथवा तपनो दिव्यः, सुत्तपुरिसबोहगो ॥६१॥

सत्पुण्यभ्रमराऽऽकर्षि, कमलं गन्धवाहगं ।
चन्दनमथवा प्राप्तं, संतत्तचित्तसामगं ॥६२॥

अवाप्ता रत्नमञ्जूषा, गुणदारिद्दहारिणी ।
ज्ञानकन्दोद्भवार्थं वा, जलदो हिययंगमो ॥६३॥

दुर्गतौ पततः स्वस्य, धारओ धरणीयलो ।
लब्धो वा करवालोऽत्र, मोहरिउविदारओ ॥६४॥

एवं स भावयामास, रओहरणभूसिओ ।
हरिरानन्दसम्मग्नो, लद्धसंजमभूसणो ॥६५॥ अष्टभिः कुलकम् ॥

रेजतुर्वदने यस्य वाग्गुप्तिमुखवस्त्रिके ।
शुचिवासवृतो नम्रः शुचिलेश्यापवित्रहृद् ॥६६॥

- अथवा मानपर्वत को चूर चूर करने वाला वज्र प्राप्त किया गया अथवा सोयी हुई आत्मा को जगाने वाला दिव्य सूर्य पाया गया...६१
- सज्जनरूपी भौंरों को आकर्षित कर दे ऐसी सुगंध फैलानेवाला कमल पाया गया अथवा संतप्त ऐसे चित्त को शांत करनेवाला चंदन पाया गया...६२
- गुण की दरिद्रता को दूर करनेवाली रत्न की पेटी पायी गयी, अथवा ज्ञानरूपी कन्द की उत्पत्ति के लिए सुंदर बादल पाये गये...६३

- दुर्गति में गिरनेवाली आत्मा को धारण करनेवाला पृथ्वी का तल पाया गया, अथवा मोहशत्रु को हरानेवाली तलवार पायी गयी...६४
- इस प्रकार रजोहरण से भूषित, प्राप्त किया हैं संयम का आभूषण जिसने ऐसे आनंद में मग्न हरि ने सोचा...६५ (आठ श्लोको का समूह)
- जिनके बोलने में वचनगुप्ति और मुख पर मुहपत्ति शोभा देती है वह, श्वेतवस्त्र से युक्त, नम्र और सुंदर लेश्या से पवित्र ह्रदय वाले...६६

समागतो मुनिर्नव्यो, स दीक्षासत्कमण्डपे ।
सन्तोऽनुमोदयामासुस्तं दृष्ट्वा स्फारलोचनाः ॥६७॥ युग्मम् ॥

आस्तां भुक्तिः, सुगन्धोऽपि, व्रतभोज्यस्य पुष्यति ।
विना मिष्टान्नसद्भुक्त्या, पीनाः कान्दविका न किम् ? ॥६८॥

मुष्टिपूर्णेन चूर्णेन, पतता स्वलके शनैः ।
आप्तवान् व्रतिनामाशीर्नूतनदीक्षितस्तदा ॥६९॥

भुवनभानुसूरीशस्तं ददावभिधानकम् ।
श्रीहंसरत्नविजय, इति सन्तुष्टमानसः ॥७०॥

ततः प्रभृति तेनास्मिन्, यज्ञे संयमनामके ।
बह्व्य आहुतयो दत्ताः, शृण्वन्तु ताः सकर्णकाः ! ॥७१॥

श्रामण्यं रे !, गुरुकरुणया, प्राप्तवानुक्तबाल,
आनन्देनाऽयमिह कियता, दर्शितं तन्मया च ।
सर्वेभ्यो वै, कुशलपदवीं, संयमेन्द्रः प्रदद्यात्,
सार्धं तेन, श्रवणरुचिरः, पक्ष एषोऽपि लोके ॥७२॥ मन्दाक्रान्ता ॥

॥ इति तृतीयः पक्षः समाप्तः ॥

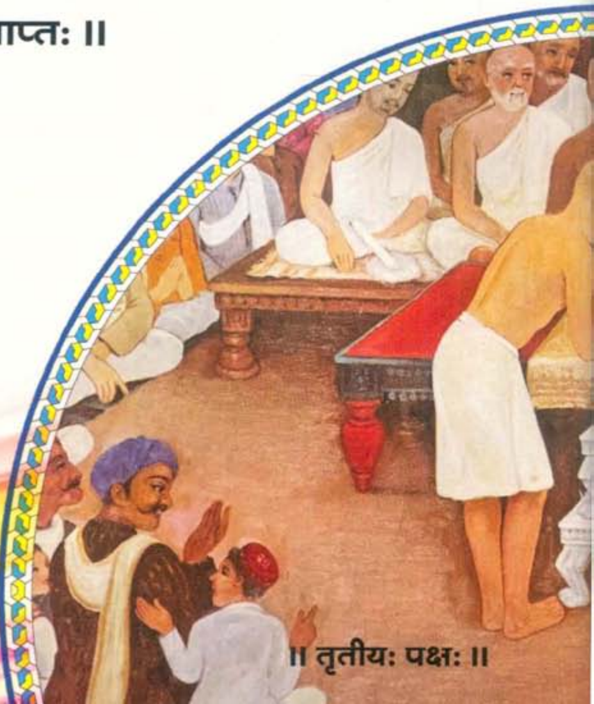

- वे नूतन मुनिराज दीक्षा के मंडप में आये और उन्हें देखकर विकसित नयनवाले ऐसे सज्जनों ने उनकी अनुमोदना की...६७ (दो श्लोकों का समुह)

- खाने की बात तो दूर, व्रत रूपी भोजन की सुगंध भी पुष्ट कर देती है, क्या बिना मिठाई खाए भी (सिर्फ मिठाई की सुगंध से) हलवाई पुष्ट नहीं होते ?...६८

- उस समय अपने मस्तक पर धीरे धीरे गिरते हुए वासक्षेप से नूतन मुनिराज ने आशीर्वाद ग्रहण किए...६९

- संतुष्ट मनवाले उस पूज्यपाद भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा ने उस नूतनदीक्षित को **"मुनि श्री हंसरत्नविजय"** इस प्रकार नाम दिया...७०

- वहां से लगाकर उस मुनिराज के द्वारा संयम नाम के यज्ञ में बहुत सारी आहुतियां दी गयी उसे हे मनुष्य ! आप सुनिए...७१

- गुरुकृपा के द्वारा पूर्व में कहे गये इस बाल (हरि) ने कितने आनंद से श्रमणजीवन प्राप्त किया यह मेरे द्वारा बताया गया । इस लोक में संयम नाम का इन्द्र और उसके साथ सुनने में प्रिय ऐसा यह पक्ष सब को मोक्ष दे...७२

॥ तीसरा पक्ष समाप्त ॥

एकाक्षरकाव्यम्

हे हो हहोऽहहौहाहो, हहहहो हहाहिहः ।
हहहोऽहह ! हेहाहो, हहहे हो हहो हहः ॥

हे=पापहरणे हः=वीरः, हहः=मङ्गलमस्ति जन्म यस्य स, अहहौहाहः =न सन्ति चौर्य-व्याधि-शोक-क्रोधा यस्मिन् स अचौर्यव्याधिशोक-क्रोधः, हहहहः=उन्मत्तगर्वहस्तिनि सिंहः, हहाहिह=भीमकामरूपसर्पे नकुलः, अहह=आश्चर्ये, हहहः=बोधस्य भासुरश्चन्द्रः, हेः=कृपाकरः, हाहः=त्यागस्य निवासः, हहहे हः=हर्षाम्बरगमने वायुपुत्रः, हहः=हास्यस्य वारणः, हहः=हंसरत्नः, अर्थात्=एवंविधगुणसम्पन्न आचार्यविजयहंसरत्नसूरिरस्ति ।

- पाप हरने में वीर, जिनका जन्म मंगल हैं ऐसे, चोरी-व्याधि-शोक और क्रोध जिनमें नहीं है, उन्मत्त ऐसे गर्वरूपी हाथी के विषय में सिंहसमान, भयंकर ऐसे कामरूपी सर्प के विषय में नोलिये के समान, देदीप्यमान ऐसे बोध के चन्द्र, कृपा करने वाले, त्याग के आवास समान, हर्षरूपी आकाश के विषय में वायुपुत्र (=हनुमान), हास्य को निवारने वाले ऐसे अहो ! आचार्यदेव श्रीमद् विजय हंसरत्नसूरीश्वरजी महाराजा है ।

॥ चतुर्थः पक्षः ॥

(मुनिहंसरत्नविजयस्य संयमनन्दनम्)

नत्वा प्रकामं शरदभ्रशुभ्रं, भद्रपदं लब्धत्रिविष्टपाग्रम् ।
श्रीशीतलं मङ्गलनामधेयं, पक्षं चतुर्थं रचयामि वर्यम् ॥१॥ इन्द्रवज्रा ॥

यत्र प्रसन्ना गुरवो भवन्ति,
यत्र प्रशान्ता मुनयो लसन्ति ।
यत्र प्रपिष्टाः कुगुणा रुदन्ति,
तं साधुगच्छं निपुणा वदन्ति ॥२॥ इन्द्रवज्रा ॥

एवं हि लब्ध्वा गुणपूर्णगच्छं,
तुतोष चित्ते मुनिहंसरत्नः ।
किं न प्रसीदेत् समवाप्य मुक्तां,
मुक्तासवर्णो बत हंसरत्नः ? ॥३॥ इन्द्रवज्रा ॥

यद्यप्यमुक्तस्वकबालभाव-,
स्तेने स वै दुर्ललितानि यावत् ।
तावच्चपेटाः प्रददौ गुरुस्तं,
घटं यथा कुम्भकरः सुबुद्ध्या ॥४॥ उपजातिः ॥

हठो महान् तस्य बभूव येन, स्वेष्टार्थसिद्ध्यै यततेतमां स्म ।
विज्ञाय चैवं गुरुणा नियुक्तो, दुःसाध्ययोगेषु विशेषतः सः ॥५॥ उपजातिः ॥

भुवनभानुसूर्याऽऽह्वस्थपतिना विनिर्मितम् ।
श्रामण्यमन्दिरं तस्य, सद्दर्शनीयतां गतम् ॥६॥

॥ चौथा पक्ष ॥

(मुनिराज हंसरत्नविजयजी का संयमरूपी नंदनवन)

- शरदऋतु के बादल जैसे श्वेत, कल्याण को देनेवाले, जो तीनलोक के अग्रभाग को प्राप्त कर चुके हैं ऐसे मंगलनामधारी श्री शीतलस्वामी को प्रकृष्टरूप से नमस्कार करके इस प्रकार चौथे पक्ष की रचना करता हूं...१

- जहां गुरु प्रसन्न होते हैं, जहां प्रशांत ऐसे मुनि शोभा देते हैं और जहां अत्यंत चूर-चूर हो चुके दुर्गुण रोते हैं उसे विद्वान, मुनि का गच्छ कहते हैं...२

- इस प्रकार गुण से पूर्ण ऐसे गच्छ को पाकर मुनिराज हंसरत्नविजयजी मन में आनंदित हुए । क्या मोती को पाकर मोती जैसे वर्णवाला हंस आनंद प्राप्त नहीं करेगा ?...३

- वैसे तो, जिसका खुद का बचपन छूटा नहीं है ऐसे वह मुनिराज जहां शरारत करते हैं वहां जैसे कुंभार घडे को थपाट लगाता है वैसे ही गुरु उन्हें हितबुद्धि से थपाट लगाते थे...४

- उस मुनिराज की हठ हंमेशा बडी रहती थी, जिससे वे अपनी इच्छित वस्तु की सिद्धि हेतु बहुत प्रयास करते थे । इस प्रकार जानकर गुरु ने उन्हें कष्ट-साध्य योगों में विशेष रुप से जोडा...५

- आचार्य विजय भुवनभानुसूरिजी नाम के शिल्पकार के द्वारा उस मुनिराज का ''श्रामण्यमंदीर'' इतना सुंदर बनाया गया कि वह सज्जनों के लिए भी दर्शनीय बना...६

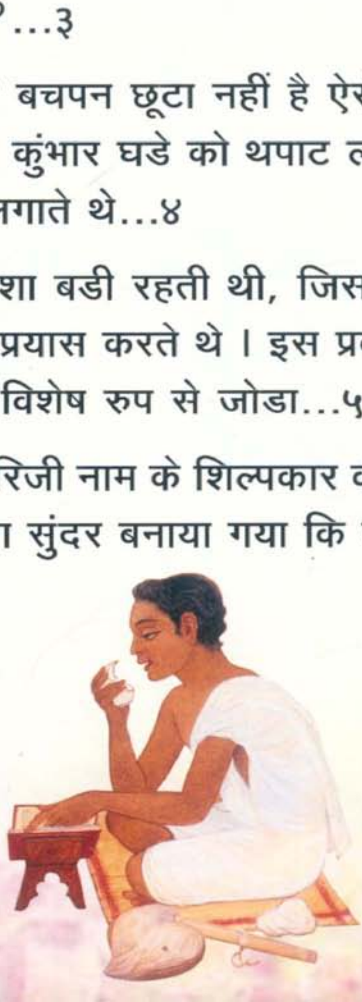

चतुर्मासी बभूवाऽऽद्या, लालबागप्रभागके ।
नूतनव्रतिनस्तस्य, श्रितस्य गुरुपादयोः ॥७॥

अन्यबालर्षिभिः सार्धं, क्वचित्केलिरतं हि तम् ।
विलोक्य चिन्तयामास, भानुसूरिः स्वचेतसि ॥८॥

नियोज्या दुर्दमा एते, योगे कस्मिन्नपि शुभे ।
अनर्घ्यसंयमस्तेषां, निष्फलो न भवेद्यतः ॥९॥

आहूता अथ ते सर्वे, भुवनभानुसूरिभिः ।
उक्तं चातः परं नित्यं, वाचना वो भविष्यति ॥१०॥

दास्यति मुनिराजः **श्रीरत्नसुन्दर**नामकः ।
वाचना श्रूयतां तावत्कर्णपीयूषवर्षिणी ॥११॥

अथ बालर्षयः सर्वे, निर्दिष्टमुनिसन्निधौ ।
जग्मुरामोदभावेन, तरुतले यथाऽध्वगाः ॥१२॥

- गुरुचरण का आशरा लेने वाले उस नूतन मुनिराज का प्रथम चातुर्मास लालबाग में हुआ...७
- अन्य बालमुनियों के साथ कभी-कभी खेल में मग्न ऐसे उन्हें देखकर आचार्य विजय भुवनभानुसूरिजी ने अपने मन में सोचा...८
- दुःख-कष्ट से दमन किया जा सके ऐसे इन बालमुनियों को किसी शुभ योग में नियोजित करना चाहिए जिससे उनका अमूल्य ऐसा संयमजीवन निष्फल न हो जाए...९

- आचार्य विजय भुवनभानुसूरिजी के द्वारा सभी (बालमुनियों) को बुलाया गया और उनसे कहा गया कि ''अब से प्रतिदिन आपकी वाचना होगी...१०
- **मुनिराज रत्नसुंदरविजयजी** श्रवण के विषय में अमृत बरसाने वाली वाचना देंगे जो आपके द्वारा सुनी जाए''...११
- जैसे वृक्ष की छाया में मुसाफिर आए वैसे ही अब तमाम बालमुनि निदिष्ट मुनि (मुनिराज रत्नसुंदर-विजयजी) के सांनिध्य में आनंद से गये...१२

विस्मयनिभृतस्वान्ता, विनयनतकन्धराः ।
विस्फारनयनद्वन्द्वा, विमलहृदयास्तथा ॥१३॥

मुकुलितकराः शान्ताः, कौतुकलोललोचनाः ।
निर्दम्भा निर्भया नम्रा, निर्ग्रन्था प्रेमनिर्भराः ॥१४॥

निषण्णा मूकभावेन, परितस्तस्य सन्मुनेः ।
वाचनां श्रोतुमुत्कण्ठाः, कलकण्ठा अकुण्ठिताः ॥१५॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

मुनिरप्यात्तगुर्वाज्ञो, वाचं सर्वज्ञभाषिताम् ।
बभाषे ज्ञानदानेन[1] ज्ञानीकर्तुं लघून् मुनीन् ॥१६॥

(निम्नोक्ता अष्टश्लेका धनश्रीरागेण गीयन्ते)

यथा हि-
श्रूयतां श्रूयतां वाणी जिनभाषिता,
दुर्लभा कनकरसकूपतुल्या ।
सुगुरुवदनोदिता विबुधजनसेविता,
विरतितरुवृद्धये सार्द्रकुल्या... ॥१७॥

ज्ञानमिह निर्मलं कुमतितमःसूदनं,
धार्यममलाऽऽशयैः संशयघ्नम् ।
मोहनृपकटकनिष्पेषकं चक्रभृद्,
विविधनयगम्भीरं सारपूर्णम्...श्रूयतां...॥१८॥

१. नाणी ण विना नाणं ॥७५॥ निशीथभाष्यम् ॥

- विस्मयभरे हृदयवाले, विनय से झुकी गर्दनवाले, खिल ऊठे दो नयनों वाले और निर्मल हृदय वाले...१३

- जुडे हुए हाथ वाले, शांत, कुतूहलता से चपल आंखे हैं जिनकी ऐसे, निर्दंभ, निर्भय, नम्र, ग्रंथि बिना के और प्रेम से भरे हुए...१४

- मूक भाव से वाचना सुनने के लिए उत्कंठा धारण करनेवाले, मधुर कंठवाले, अकुंठित ऐसे श्रेष्ठ (बालमुनि) उस मुनि (मुनिराज रत्नसुंदरविजयजी)की चारों और बैठ गये...१५ (तीन श्लोकों का समूह)

- गुरु आज्ञा प्राप्त करके मुनिराज रत्नसुंदरविजयजी म.सा.ने सर्वज्ञ भगवंत के द्वारा भाषित, समस्त दोषों को नाश करनेवाली ऐसी वाणी को प्रसारित किया...१६

- जैसे कि- सुवर्णरस के कुंए जैसी दुर्लभ, सुगुरु के मुख से निकली हुई, देवों के द्वारा सेवित, विरतिरूपी वृक्ष की वृद्धि के लिए भीनी नीक जैसी जिनवाणी आपके द्वारा बार-बार सुनी जाए...१७

- कुमतिरूपी अंधकार का नाश करनेवाले, संशय को हरनेवाले, मोहराजा के सैन्य का चूरा करनेवाले, चक्रवर्ती समान, विविधनय से गंभीर, सारपूर्ण, ऐसे निर्मल ज्ञान को निर्मल आशयवाले लोगों को धारण करना चाहिए...१८

शुचितरं दर्शनं तत्त्वरुचिसद्रूपं,
सेव्यमिह पटुजनैर्धर्मभूपम् ।
कर्ममलीमसहरं विपुलसुखराशिदं,
क्षयोपशमोपशमक्षयभेदभिन्नम्...श्रूयतां...।।१९।।

चरणमादरणीयं बुधजनैः कमनीयं,
सन्मूलोत्तरगुणैर्निष्कलङ्कम् ।
कठिनप्रतिमावहैर्गिरिगुहासंस्थितै-
-रादृतं यादृशं प्राग् यथेदम्...श्रूयतां...।।२०।।

असुमदुपमर्दनं व्यलीकसञ्जल्पनं,
मोषणं सुरतरतिः परिग्रहश्च ।
पञ्चसु विरतिरेतेषु कार्या परा,
विरतिरेवाऽस्ति सुखसन्निदानम्...श्रूयतां...।।२१।।

पञ्चसमितिसु त्रिगुप्तिषु चाऽऽदरः,
कार्य उत्तमनरैर्भ्रान्तिभीतैः ।
गानीयममलगुणचक्रमिह वै सतां,
मधुरिमप्रचुरमनोहारिगीतैः...श्रूयतां...।।२२।।

प्रौढगुणसञ्चया गलितदुरिता क्षमा-
-जलवहा गतभयाः शान्तचित्ताः ।
ऊढगणसद्धुराः कर्मसमरे शूराः,
गुरुवरा अभयदाः सेवनीयाः...श्रूयतां...।।२३।।

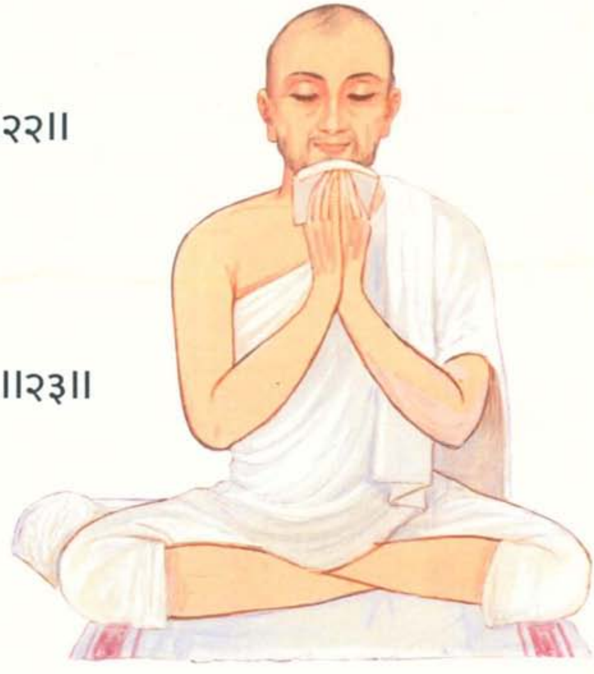

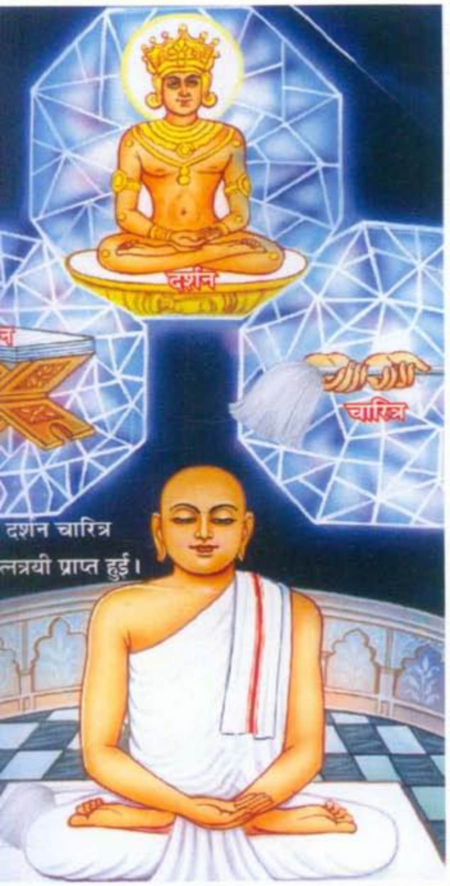

- शुद्धतर, तत्त्वरूचिरुप, धर्म का राजा, कर्म के कचरे को हरने वाला, विपुल सुख राशि को देनेवाला, क्षयोपशम-उपशम और क्षयभेद से विभाजित ऐसा सम्यग्दर्शन यहां बुद्धिमानों के द्वारा सेवन करने योग्य है...१९
- सुंदर, मूल-उत्तर गुणों के द्वारा कलंकरहित, चारित्र विद्वानों के द्वारा आचरण करने योग्य है। जिस प्रकार पर्वत की गुफाओं में स्थित, कठिन प्रतिमाओं को वहन करनेवाले मुनियों ने पहले इस (चारित्र) का आचरण किया था...२०
- जीवों की हिंसा, झूठ बोलना, चोरी करना, मैथुन की रति और परिग्रह-इन पांचों में श्रेष्ठ ऐसी विरति को करना चाहिए, क्योंकि **विरति ही सुख का सच्चा कारण है**...२१
- उत्तम और भवभ्रमण से भयभीत लोगों के द्वारा पांच समिति और तीन गुप्ति में आदर किया जाना चाहिए तथा सज्जनों के निर्मल गुणसमूह का मधुरता से प्रचुर ऐसे सुंदर गीतों से गान किया जाना चाहिए...२२
- परिपक्व गुणों के समूहवाले, जिनके पाप पिघल चुके हैं ऐसे, दयारुपी जल को वहन करनेवाले, भय रहित, शांत चित्तवाले, वहन की है गण की धुरा जिन्होंने ऐसे कर्मसंग्राम में शूरवीर, अभय को देनेवाले गुरुभगवंत सेवन करने योग्य हैं...२३

मेरया वर्तिनो ये हि सहवर्तिनः,
कुशलयोगेषु कुशलत्वमाप्ताः ।
मोक्षपूःप्राप्तये प्रस्थिता अध्वगा,
मुनिजनैस्ते समुपासनीयाः..श्रूयतां...॥२४॥

वैराग्यं कुट्टिमं यत्र, स्तम्भा अभिग्रहास्तथा ।
सुभित्तिश्चर्जुता यत्र, द्वारं धैर्यं सुविस्तृतम् ॥२५॥

यत्र यवनिका गुप्तिः, संवरो द्वारपालकः ।
प्रहरी चाप्रमादाऽऽह्वो, निस्तन्द्रो कलिनिश्यपि ॥२६॥

छदिर्गुरुप्रसादोऽस्ति, तोरणं स्वनिरीक्षणम् ।
व्रता यत्र महाकुम्भाः, सोपानानि तपांसि च ॥२७॥

उल्लोचो यत्र सद्बोधो, गवाक्षा नयदृष्टयः ।
स्वगुणैरेव तुङ्गं तत्, संयमसौधमुच्यते ॥२८॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

भवागाधगर्ते स्खलन्तं पतन्तं,
रुदन्तं लपन्तं वपुष्मन्तमन्तात् ।
समुद्धृत्य निःश्रेयसे प्रेषयन्मा,
मुनित्वं समालभ्य मुह्यन्तु भो ! भोः ! ॥२९॥ भुजङ्गप्रयातम् ॥

श्रमणतामभिलभ्य मुनीश्वराः !,
शिथिलतां न हि यान्तु सुसंयमे ।
सुबहुभिः प्रलयैरपि मन्दरो,
न तरलो भवतीह कदाचन ॥३०॥ द्रुतविलम्बितम् ॥

- जो मर्यादापूर्वक वर्तन करते हैं, शुभ योगों में कुशलता प्राप्त कर चुके हैं, मोक्षपुरी को प्राप्त करने निकले यात्री हैं ऐसे सहवर्ती मुनिभगवंत भी मुनियों के द्वारा उपासना करने योग्य हैं...२४
- जहां वैराग्य की फर्श है तथा अभिग्रहों के स्तंभ हैं, जहां सरलता दिवार है और धैर्य विशाल द्वार है...२५
- जहां गुप्ति परदा है, संवर द्वारपाल है, अप्रमाद नाम का प्रहरी है जो कलियुग की रात्रि में भी तंद्रारहित है...२६
- जहां गुरुकृपा छत है, आत्मनिरीक्षण तोरण है, व्रतो जहां बडे कुंभ है और तपस्या सीढियां है...२७
- जहां सद्‌बोध चंदरवा है, जहां दृष्टियां झरोखे हैं, वह स्वयं के गुणों से ही ऊंचा संयम महल कहा जाता है...२८ (चार श्लोकों का समूह)
- भव की अगाध गर्त में फिसलते, गिरते, रोते और विलाप करते जीव को (उस गर्त के) भीतर से उद्‌धृत करके जो मोक्ष में पहुंचाता है उस साधुत्व को प्राप्त करके हे जीव ! मोह मत करना...२९
- साधुत्व को प्राप्त करके हे मुनिभगवंत ! संयम में शिथिल मत बनना । मेरुपर्वत अनेक प्रलयों से भी कभी अस्थिर नहीं होता...३०

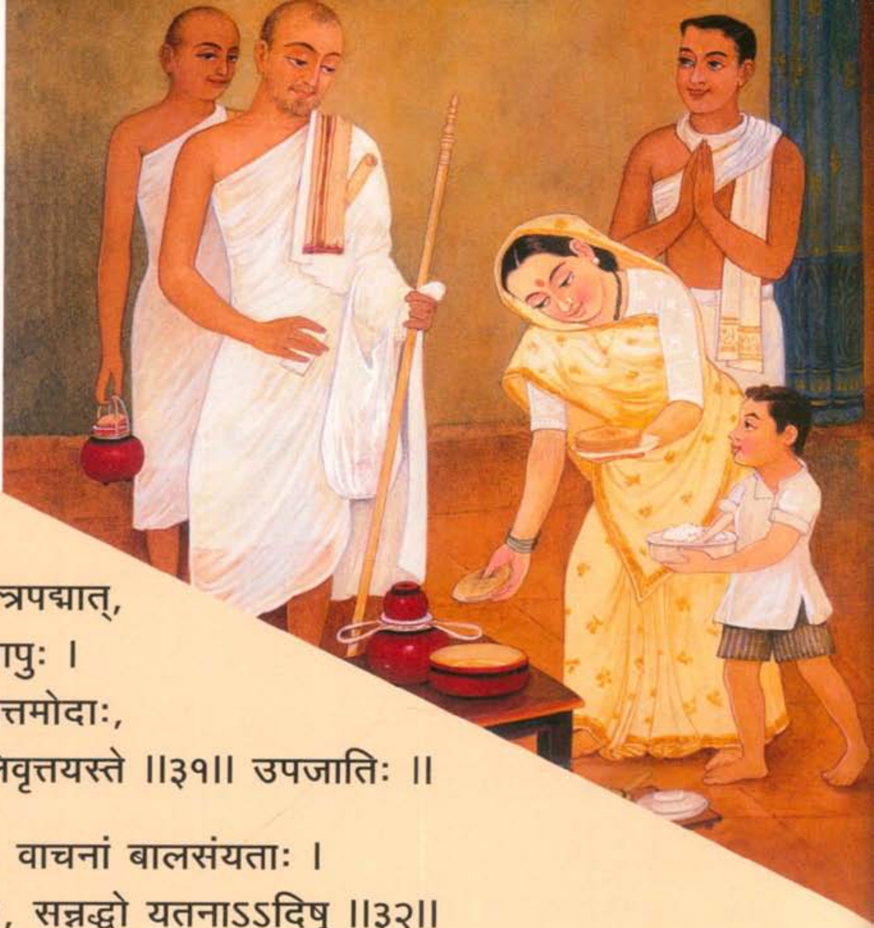

निशम्य वाणीं गुरुवक्त्रपद्मात्,
प्रमापुरुं गन्धमयं समापुः ।
लग्ना तदा गुञ्जितुमात्तमोदाः,
सत्यं हि प्रोक्ता अलिवृत्तयस्ते ॥३१॥ उपजातिः ॥

एवं हि प्रत्यहं श्रुत्वा, वाचनां बालसंयताः ।
हंसरत्नोऽपि सञ्जातः, सन्नद्धो यतनाऽऽदिषु ॥३२॥

[२]ग्लानं ज्ञात्वा न सेवेत, दोषभाक् स भवेन्मुनिः ।
एवं विज्ञाय स ग्लानसेवारतोऽभवत्तमाम् ॥३३॥

दूरमपि प्रयाति स्म, भिक्षार्थमेष उद्यतः ।
मुनीनां भाक्तितः श्रेष्ठं, किं नृजन्मतरोः फलम् ? ॥३४॥

परिष्ठापनसत्काऽऽसीद्, दूरं मूत्रस्य तत्र भूः ।
तत्परिष्ठापनार्थं रे !, मुनीनां लाभकाङ्क्षिणौ ॥३५॥

विमलबोधिहंसादिरत्नविजयसंयतौ ।
अहंपूर्विकया सायं, लाभार्थं चक्रतुर्युधम् ॥३६॥ ॥ युग्मम् ॥

---

२. जे भिक्खू गिलाणं सोच्चा नच्चा न गवेसइ... अणुग्घाइयं ॥१०-३७॥ निशीथसूत्रम् ।

- गुरु के मुखरूपी कमल से वाणी को सुनकर, सुगंधी ऐसी ज्ञान की पराग को उन्होंने (बालमुनियों ने) प्राप्त किया और तब आनंद प्राप्त करनेवाले वे गुंजन करने लगें। वे जो मधुकरवृत्ति वाले कहे गये हैं वह सत्य ही है...३१
- इस प्रकार प्रतिदिन वाचना सुनकर यह बालमुनि हंसरत्नविजयजी यतना आदि के विषय में विशेषरुप से सज्ज बने...३२
- उन्हें अप्रतिपाती गुणवाली ग्लानसेवा प्रिय थी और गुरुदेव के लिए निर्दोष गोचरी लाना अच्छा लगता था...३३
- यह उद्यत मुनि भिक्षा हेतु दूर भी जाते। **मुनि की भक्ति से बढकर मानव-जन्मरूपी वृक्ष का श्रेष्ठ फल और क्या हो सकता है?**...३४
- वहां (लालबाग में) मूत्र-परिष्ठापन की भूमि दूर थी। मुनियों के मूत्र-परिष्ठापन का लाभ लेने की इच्छा रखने वाले मुनिराज विमलबोधिविजयजी और मुनिराज हंसरत्नविजयजी ''मैं पहला-मैं पहला'' इस प्रकार संध्या के समय में लाभ लेने हेतु (मीठा) झगडा करते थे...३५-३६ (दो श्लोकों का समूह)

वाचनायाः प्रभावेन, सञ्जातास्तस्य वृत्तयः ।
शुद्धाः शुद्धतराः शुद्धतमाः क्रमेण सन्मुनेः ॥३७॥

सर्वेषां भोजनात्पश्चाद्, विवृद्धमशनादिकम् ।
स भुङ्क्ते स्म ह्यनाकाङ्क्षी, निर्विकल्पं यतीश्वरः ॥३८॥

सेवको मन्दपुण्यानां, सञ्जातः सुविशेषतः ।
पुण्यानुबन्धिपुण्यस्योपार्जनस्य मिषाद् नु सः ? ॥३९॥

(साधूनां शुश्रूषा)

ये शिष्यविकलाः प्रौढाः, स्थविराश्च त्रिधा गणे ।
सेवते स्म स तान्नित्यं, चीवरक्षालनाऽऽदिभिः ॥४०॥

सत्पन्न्यासपदव्यर्थं, **जयतिलक**सन्मुनेः ।
विनेयो भवितुं जातो, नद्ध एकस्तु वार्द्धके ॥४१॥

कथितं गुरुणा कस्तं, पालयिष्यति भाविनि ।
हंसरत्नमुनिस्तूर्णमूचिवान् भक्तिनिर्भरः ॥४२॥

मा करोतु गुरो ! चिन्तामहं सज्जोऽस्मि तत्कृते ।
तं परिपालयिष्यामि, मंस्ये धन्यं च जीवनम् ॥४३॥

- वाचना के प्रभाव से उस मुनिराज की वृत्ति क्रमशः शुद्ध, शुद्धतर और शुद्धतम हुई...३७
- सब के भोजन के पश्चात् जो गोचरी बढती थी उसे आकांक्षारहित मुनिराज बिना विकल्प (बिना पसंदगी के) ले लेते थे...३८
- पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जित करने के बहाने से ही क्या वे मंदपुण्यवाले (मुनिभगवंतों) के विशेष रुप से सेवक बने ?...३९

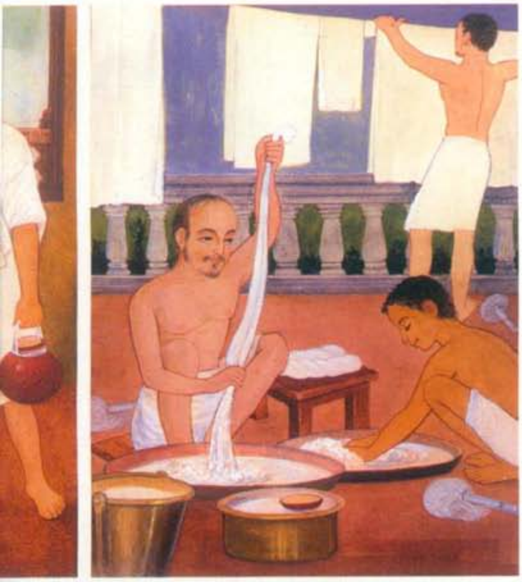

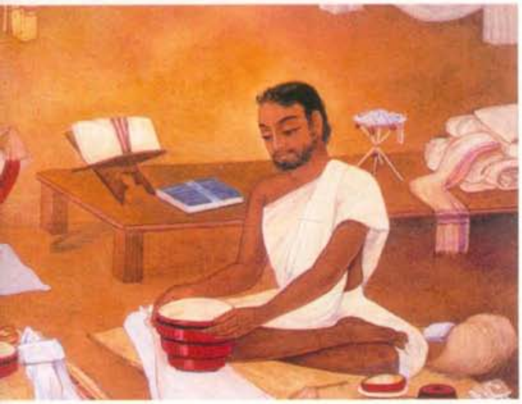

(साधुभगवंत की सेवा)

- गच्छ में जो शिष्य बिना के, उम्रदराज और तीन प्रकार के स्थविर थे, उनकी यह मुनिभगवंत वस्त्रों का काप निकालना आदि द्वारा प्रतिदिन सेवा करते थे...४०
- **मुनिराज जयतिलकविजयजी** की पंन्यासपदवी के लिए एक मुमुक्षु वृद्धावस्था में शिष्य बनने के लिए तैयार था...४१
- गुरुदेव द्वारा कहा गया कि-''भविष्य में इन्हें कौन संभालेगा ?'' तब भक्तिसभर मुनिराज हंसरत्नविजयजी म.सा. ने तुरन्त कहा-''गुरुदेव ! चिंता मत कीजिए, उसके लिए मैं सज्ज हूं। उन्हें मैं संभालूंगा और मेरे जीवन को मैं धन्य मानूंगा''...४२-४३

गुरुणा समनुज्ञातो, वार्द्धकेऽपि स दीक्षितः ।
श्रीत्रिभुवनतिलक, इति नाम्ना प्रकीर्तितः ॥४४॥

प्रव्रज्याया द्वितीयाब्दे, स कर्करोगपीडितः ।
बभूव कर्मदोषेण, कर्माधीन्यं हि दुःखदम् ॥४५॥

यद्यपि स प्रशान्तात्मा, रुष्यति स्म क्वचित्परम् ।
हंसरत्नमुनिर्नम्रः, साम्येन सहते स्म तत् ॥४६॥

प्रियं तस्याऽकरोद् भावैरप्रियं च न्यवारयत् ।
यथाशक्यं समाध्यर्थं, हंसरत्नमुनीश्वरः ॥४७॥

यावच्चरमनिःश्वासं, सिषेवे तं मुनीश्वरम् ।
अवाप सातसत्कर्मसञ्चयं तत्प्रभावतः ॥४८॥

[३]कर्मणो निबिडा ग्रन्थिस्त्रुट्यति मुनिसेवनात् ।
वैयावृत्यमतोऽमोघं, प्रोक्तं मौनीन्द्रशासने ॥४९॥

वैयावृत्येन सिद्ध्यन्ति, कार्याणि ह्यचिरेण रे ! ।
तेनैव च प्रणश्यन्ति, व्यथाव्याधिविपत्तयः ॥५०॥

---

३. गिलाणं वैयावच्चं करेमाणे समणे निग्गंथे ।
महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति ॥१०॥ व्यवहारसूत्रम् ।

- गुरुदेव द्वारा अनुज्ञा दी गई और उस मुमुक्षु ने वृद्धावस्था में भी दीक्षा ग्रहण की और उनका नाम **"मुनिराज श्री त्रिभुवनतिलकविजयजी"** रखा गया...४४

- दीक्षा के दूसरे वर्ष में कर्म के प्रभाव से वे (मुनि त्रिभुवनतिलकविजयजी) कैंसर रोग से पीडित हुए, वास्तव में कर्म की आधीनता दुःख देनेवाली सिद्ध होती है...४५

- वैसै तो, वह मुनिभगवंत प्रशांत थे फिर भी कभी-कभार (पीडा के कारण) गुस्सा कर बैठते, परंतु मुनिराज हंसरत्नविजयजी समतापूर्वक उसे सहन कर लेते...४६

- उस मुनिभगवंत की समाधि के लिए मुनि हंसरत्न-विजयजी शुभभावों से यथासंभव उनका प्रिय करते थे और अप्रिय दूर करते थे...४७

- अंतिम सांस तक मुनिराज हंसरत्नविजयजी ने उनकी सेवा की और उसके प्रभाव से शाता वेदनीय कर्म बांधा...४८

- कर्म की जटिल ग्रंथि मुनि की सेवा से टूट जाती है। अतः जिनशासन में वैयावच्च के गुण को अमोघ कहा गया हैं...४९

- वैयावच्च से तुरन्त ही कार्य सिद्ध होते है और उसी से व्यथा, व्याधि और विपत्तियां भाग जाती हैं...५०

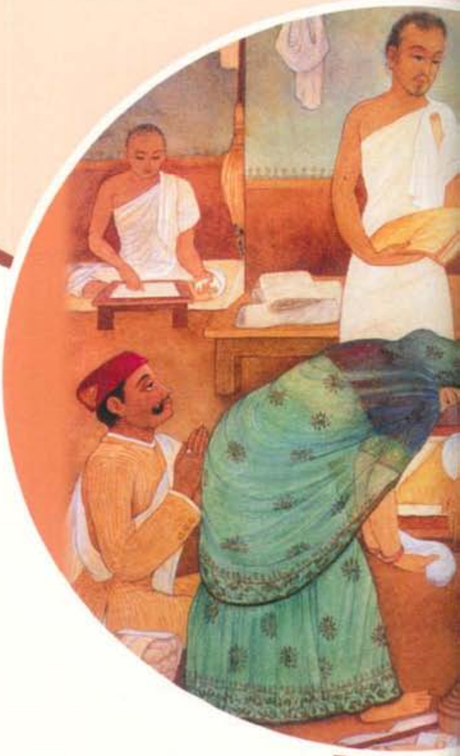

एवं हि ग्लानसाधूनां, बहूनां सेवनेन सः ।
तर्जितचन्द्रनैर्मल्यमर्जितवान् महद्यशः ॥५१॥

एकदा **जयघोषा**ऽऽह्वो, मुनिः सुज्ञानसागरः ।
अददात्कम्बलं कम्रं, कस्मैचिल्लघुसाधवे ॥५२॥

तत्तु स्खलनया दीर्णमचिरेणैव साधुना ।
नोपेयिवान् परं मन्युं, जयघोषव्रतीश्वरः ॥५३॥

पप्रच्छ जयघोषऽऽर्यं, हंसरत्नमुनिस्तदा ।
''कथं चुकोप तस्मै न ?, भवानपात्रवत्सलः'' ॥५४॥

उवाच जयघोषाऽऽर्य-''एवं वक्तुं न युज्यते ।
सर्वेऽपि साधवो योग्याः, पञ्चमहाव्रतेश्वराः ॥५५॥

[४]कथं कोपप्रसङ्गोऽत्रोत्तिष्ठते वद संयमिन् ! ।
मूल्यमस्त्यधिकं कस्य, व्रतिनः कम्बलस्य वा ?'' ॥५६॥

एवमाकर्ण्य सम्बुद्धः श्रीहंसरत्नसंयमी ।
निर्णीतवान्निजस्वान्ते-''दास्ये सर्वं हि साधवे ॥५७॥

---

४. कुद्धो सच्चं सीलं विणयं हवेज्ज ॥२-२॥ प्रश्नव्याकरणम् ।

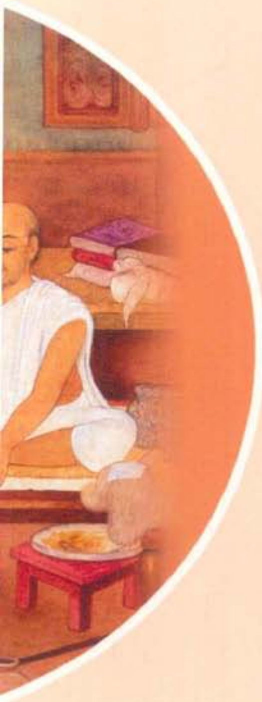

- इस प्रकार अनेक ग्लानसाधुओं की सेवा से तर्जना की है चंद्र की निर्मलता की जिसने ऐसे महान यश को मुनिराज हंसरत्नविजयजी ने अर्जित किया...५१
- एक बार ज्ञान के सागर **पू. पंन्यास जयघोष-विजयजी महाराज** ने एक छोटे साधु को सुंदर कंबल दी...५२
- वह कंबल साधु द्वारा गलती से तुरन्त फट गई परन्तु पंन्यास श्री जयघोषविजयजी ने क्रोध नहीं किया...५३
- तब मुनिराज हंसरत्नविजयजी महाराज ने पंन्यास जयघोषविजयजी से पूछा-''आपने क्यों उस मुनि पर क्रोध नहीं किया ? आप अपात्र पर भी दया करने वाले हैं ।'' ('दयापात्र पर दया करनी चाहिए उस अपात्र पर नहीं' ऐसा आशय है ।)...५४
- पूज्य पंन्यास जयघोषविजयजी ने कहा-''ऐसा कहना योग्य नहीं हैं । पंचमहाव्रत के धारक सभी मुनिभगवंत योग्य ही हैं...५५
- हे संयमी ! यहां क्रोध करने का प्रसंग ही कहां उपस्थित होता हैं ? आप ही बताइए कि- किसका मूल्य अधिक है ? संयमी का या कंबल का ?...५६
- इस प्रकार (पूज्य पंन्यासजी की) वाणी को सुनकर मुनिराज हंसरत्नविजयजी प्रतिबोधित हुए और अपने मन में निर्णय किया कि-''साधु भगवंत को मैं सब कुछ दूंगा...५७

आसनं लेखनी कल्पत्रयं जपनमालिका ।
कम्बलं चोलपट्टश्च, पात्राणि मुखवस्त्रिका ॥५८॥

दण्डः संस्तारकं पादप्रोञ्छनमुत्तरच्छदः ।
तथाऽक्षपञ्चकं यन्त्रं, कटीदवरिकाऽपि च ॥५९॥

एवं यान्यपि वस्तूनि, रोचेत व्रतिने मम ।
निर्विकल्पं प्रदास्येऽहं, तर्हि तस्मै निजेप्सितम्'' ॥६०॥
त्रिभिर्विशेषकम् ॥

गणे प्रायः समेऽप्यासन्, निर्दोषाऽऽहारभोजिनः ।
तेषां निर्दोषभिक्षार्थं, हिण्डते स्म गृहाद् गृहम् ॥६१॥

तद्दृष्ट्वा गुरवस्तुष्टा, आशिषमददुर्भृशम् ।
सन्तः प्रयतमाने स्युर्विशेषतः कृपालवः ॥६२॥

एकदा ग्लानसेवायाः, प्रसङ्गः समुपस्थितः ।
परं गन्तव्यमासीद् रे !, तदर्थं दूरग्रामके ॥६३॥

द्विदिनमध्य एवाहो ! श्रीहंसरत्नसाधुना ।
प्रायो द्वाविंशतिक्रोशा, अतिक्रान्ता निजौजसा ॥६४॥

- आसन, कलम, कल्पत्रय (सुत के वस्त्र-२ सादे, १ कंबल का), जाप की माला, कंबल, चोलपट्टा, पात्रा, मुहपत्ती...५८

- दंडा, संथारा, दंडासन, उत्तरपट्टा तथा स्थापनाजी, (जाप का) यंत्र और कंदोरा भी...५९

- इस प्रकार मेरी जो भी चीज मुनि को अच्छी लगेगी, उसे बिना विकल्प मैं मेरी इच्छित वस्तु दे दूंगा...''६० (तीन श्लोकों का समूह)

- गच्छ में लगभग सभी मुनि निर्दोष गोचरी वापरने वाले थे । उनकी निर्दोष गोचरी के लिए मुनिराज हंसरत्नविजयजी अनेक घरों में जाते थे...६१

- यह देखकर गुरुभगवंत खुश हुए और उन्हें बहुत आशीर्वाद दिए । प्रयत्न करने वाले व्यक्ति के प्रति सज्जन विशेष से कृपालु होते हैं...६२

- एक बार ग्लान सेवा का प्रसंग उपस्थित हुआ परन्तु उसके लिए दूर रहे गांव में जाना था...६३

- अहो ! सिर्फ दो दिनों के भीतर ही मुनिराज हंसरत्नविजयजी महाराज ने प्रायः ४४ मील (७० किलोमीटर) (ग्लानसेवा के लिए) अपने पराक्रम से पार कर लिए...६४

एवं दीर्घविहारेण, प्राप्य ग्लानमुनेः पदम् ।
अवगणय्य स श्रान्तिं, निषिषेवे हि तं मुनिम् ॥६५॥

एवमेषोऽप्रमादेन, रराज पुण्यसंश्रयः ।
सत्क्रियास्वप्यनिर्विण्णो, जज्ञे चाऽखण्डदीपवत् ॥६६॥

तेजोऽपि तस्य देहस्य, ववृधे क्रमतो भृशम् ।
अवतीर्णा दिवो मन्ये, गीर्वाणा वर्चसा समम् ॥६७॥

मुक्ता न मुक्ता निजचञ्चुमध्ये,
त्यक्तस्तथा मानससत्तटाकः ।
सङ्कुच्य पक्षाववरुध्य लीलां,
रे ! राजहंसाऽसि कथं प्रदीनः ? ॥६८॥ इन्द्रवज्रा ॥

शीलस्य भुक्ता किल शुक्तमुक्ता,
हृतं सतां निर्मलमानसञ्च ।
ज्ञानक्रियापक्षयुगेन साम्य-
-लीलां यतो हंसमुनिस्तनोति ॥६९॥ उपजातिः ॥

- इस प्रकार दीर्घविहार करके ग्लानमुनि के पास पहुंचकर, अपनी थकान को भूलकर मुनिराज ने उस ग्लान मुनि की सेवा की...६५

- इस प्रकार अप्रमत्तता से पुण्य के आश्रयरुप वह मुनि सुंदर लग रहे थे और अखंड दीपक की तरह सत्क्रिया में बिना थकानवाले हुए ।...६६

- उनके शरीर का तेज भी क्रमशः खूब बढा । मानो देवलोक से तेज के साथ देवता उतरे हों ऐसा मैं मानता हूं...६७

- ''हे राजहंस ! तुम ने मोती को अपनी चांच में क्यों नहीं रखा ? तथा सुंदर ऐसा मानसरोवर क्यों छोड दिया ? दो पंखों को सिकुडकर तुमने तुम्हारी लीला बंद क्यों कर दी ? और किस लिए तुम अत्यंत दीन बने ?''...६८

- (हंस जवाब देता है-) ''शील नाम का उज्ज्वल मोती निघला जा चूका है, सज्जनों का निर्मल मानस छीन लिया गया है और जिससे मुनि हंसरत्नविजयजी ज्ञान और क्रिया के दो पंखों से समता की लीला का विस्तार करते है ।''(इसलिए मैंने मेरी लीला छोड दी है)...६९

शीतोष्णक्षुत्पिपासादिपरीषहैः स दुःसहैः ।
चचाल मनसा नैव, धीरतागुणमण्डितः ॥७०॥

सत्क्रियास्वप्रमादेनोज्झता देहसुखासिकाम् ।
विजयो वपुरध्यासेऽवाप्तस्तेन सुसाधुना ॥७१॥

त्यक्त्वा षड्रसलाम्पट्यं, धृत्वा चाक्षुषसंयमम् ।
कामाध्यासे प्रकामं स, विजयमाप्तवान्मुनिः ॥७२॥

स्वसन्मानमनिच्छन् स, पराऽऽक्रोशेऽपि शान्तिमान् ।
नामाध्यासविजेताऽभूदनामिपदप्राप्तये ॥७३॥

प्रोचिवानेकदा तं **श्रीविमलसेन**सन्मुनिः ।
''सनातनौलिकामध्ये, भोक्तव्या विकृतिर्नहि ॥७४॥

न्यूनान्न्यूतरं कार्यमाचामाम्लतपस्ततः ।
हीनं न त्वादृशैर्धार्यं, प्रत्याख्यानं सुसाधकैः'' ॥७५॥

- ठंड-गरमी, भूख-प्यास आदि परिषहों में भी धीरता के गुण से शोभित वह मुनिराज मन से चलित नहीं हुए...७०
- सत्क्रिया में अप्रमत्ता से देह की सुखशीलता को छोडने वाले उस मुनि के द्वारा देहाध्यास पर विजय प्राप्त किया गया...७१
- छःहों रस की लंपटता को छोडकर, चक्षु के संयम को धारण करके उस मुनि ने विशेष रुप से कामाध्यास पर विजय प्राप्त किया...७२
- स्वयं के सम्मान की इच्छा न रखने वाले और दूसरों के आक्रोश में शांति रखनेवाले वे अनामिपद की प्राप्ति के लिए नामाध्यासविजेता बने...७३
- एक बार उन्हें **मुनिराज** (वर्तमान में उपाध्याय प्रवर) **विमलसेनविजयजी** ने कहा- ''शाश्वती ओली में विगइ नहीं वापरनी चाहिए...७४
- कम से कम आयंबिल का तप करना चाहिए । उससे कम पच्चक्खाण तुम्हारे जैसे साधकों को नहीं लेना चाहिए''...७५

जग्राह हृदि सङ्कल्पं, श्रुत्वा तस्य मुनेर्गिरम् ।
''ओलिकायां न भोक्ष्येऽहं, विकृतिमयभोजनम् ॥७६॥

जघन्यतः करिष्ये चाऽऽचामाम्लसत्तपः शुभम् ।
विकृतिर्विगतेर्हेतुर्यस्मात्प्रोक्ता जिनाऽऽगमे'' ॥७७॥

एवं हि धृतसङ्कल्पोऽकरोद्विधिपुरस्सरम् ।
प्रत्यब्दमोलिकायुग्म, आचामाम्लतपांसि सः ॥७८॥

तपस्सु वक्ष्यमाणेषु, दुश्चरेष्वप्ययं मुनिः ।
मुक्तवानोलिकास्वेनं, नियमं न कदाचन ॥७९॥

वलितं जीवनं तस्याऽथैकदा नववर्त्मनि ।
तदग्रे ज्ञास्यते भव्या !, मा मुञ्चन्तु धृतिं ततः ॥८०॥

सिक्तं यद्वाचनाऽद्भिः, परमगुरुवरोद्यानपैः संस्कृतञ्च,
सद्गन्धाऽऽकृष्टभव्यभ्रमरपरिकरं, नन्दनं संयमस्य ।
प्रोक्तं तत्सौरभं वै, प्रथयतु पुनितं, श्रेयसस्तेन साकं,
पक्षश्चायं चतुर्थश्चतुरजनप्रियः, सार्थ उक्त्या यथार्थः ॥८१॥ स्रग्धरा ॥

॥ इति चतुर्थः पक्षः समाप्तः ॥

- इस प्रकार मुनिराजश्री की वाणी सुनकर मन में (उस मुनि ने) संकल्प किया कि- ''ओली में मैं विगईवाली गोचरी नहीं वापरुंगा और कम-से-कम शुभ ऐसा आयंबिल का तप करुंगा क्योंकि आगम में विगइ को विगति (=दुर्गति) का कारण कहा गया है...७६-७७

- इस प्रकार धारण किया है संकल्प जिसने ऐसे मुनिराज ने प्रत्येक वर्ष दोनों ओलियों मे आयंबिल किए...७८

- आगे कही जानेवाली, कष्ट से की जा सके ऐसी तपस्याओं में भी इस मुनिराज ने ओली में (आयंबिल करने का अपना) नियम कभी नहीं तोडा...७९

- एक बार उनका जीवन नये मार्ग पर मुड गया उसके बारे में हे भव्य जीव ! आपको आगे ज्ञात होगा इसलिए धैर्य मत छोडिएगा...८०

- जो वाचनारुपी पानी के द्वारा सिंचित है, परमगुरुदेवरुपी उद्यानपालक के द्वारा संस्कारित किया गया है, सुगंध से जिसने भव्यजीवरुपी भौंरे को आकर्षित किया है वह (मुनिराज का) संयम का नंदनवन और उसके साथ चतुर लोगों को प्रिय, उक्तियों से यथार्थ, अर्थपूर्ण मेरे द्वारा कहा गया यह चौथा पक्ष भी कल्याण की पवित्र सुगंध को फैलाए...८१

॥ चौथा पक्ष समाप्त ॥

अर्हं
नमः

क्रियापदगुप्तश्लोकः

अस्य श्रीहंसरत्नस्य, दूरं जिनावरोधनम् ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं, यो जानाति स पण्डितः ॥

- हे जिनेश्वर प्रभु ! हंसरत्नविजयजी के अवरोध को दूर फैंक दीजिए । इस वाक्य में क्रियापद गुप्त है, जो जानता है वह पंडित है ।

- अस्य=अस् गण ४, आज्ञार्थ द्वि.पु.ए.व., अर्थ-फैंकना, अर्थात् अस्य=तुम फैंको । इस प्रकार क्रियापद गुप्त था ।

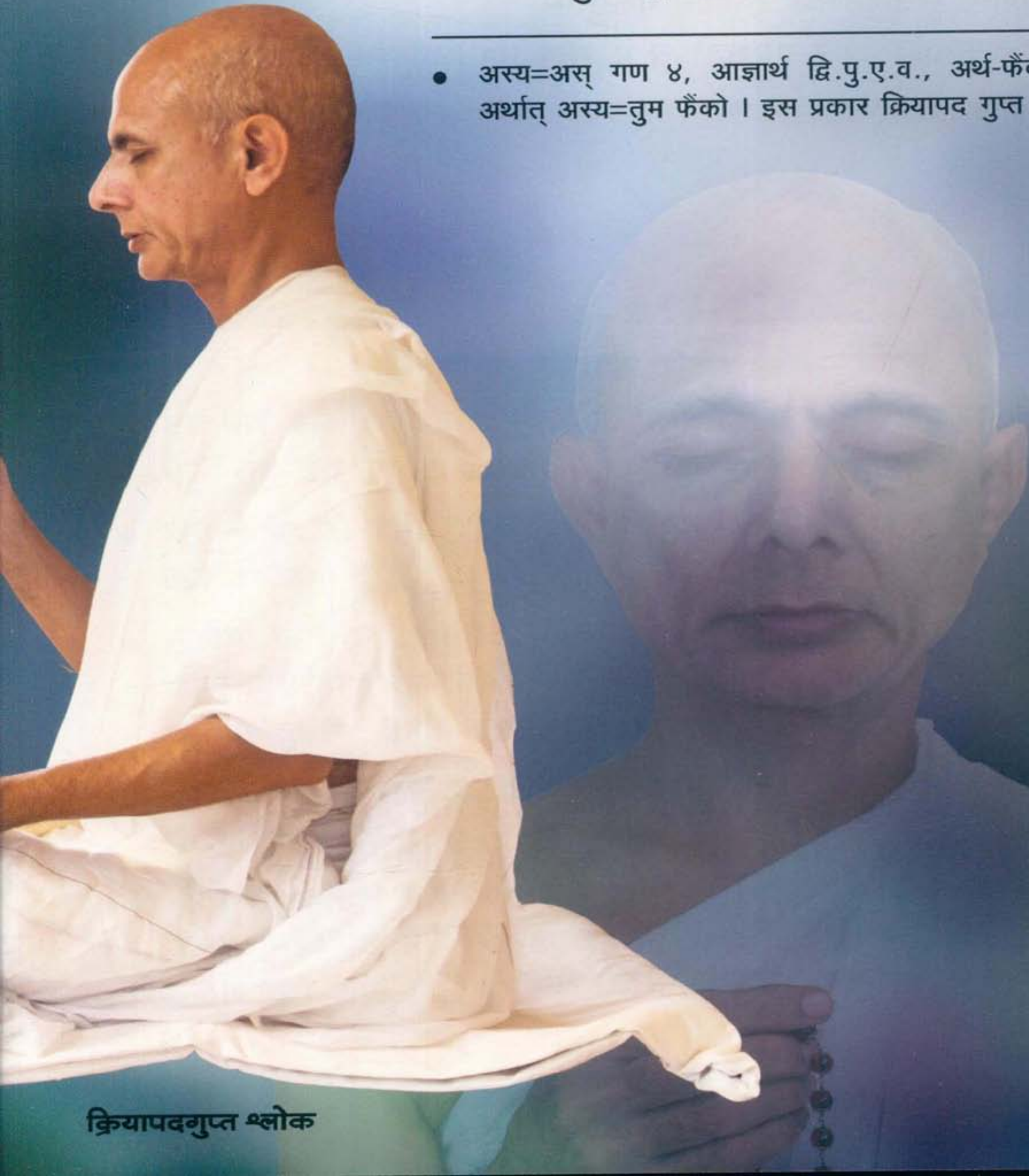

क्रियापदगुप्त श्लोक

।। पञ्चमः पक्षः ।।

(सूर्यचन्द्रमसोः संवादः, मुनिहंसरत्नविजयस्य पन्न्यासपदवी, तपोयात्राऽऽरम्भश्च)

जगत्त्रयस्य लोचनं विरोचनं विमोचनं,
विकाशनं विबोधनं विशोधनं विनोदनम् ।
प्रणम्य तं जिनेश्वरं सृजामि पक्षमुत्तमं,
कुवासनाविनाशनं प्रपञ्चतोऽत्र पञ्चमम् ।।१।। पञ्चचामरः ।।

● सूर्यचन्द्रमसोः संवादः ●

एकदा पुष्पदन्तौ खविभ्रान्तिश्रान्तविग्रहौ ।
मिलितौ मुत्कलस्वान्तौ, वार्तालापचिकीर्षया ।।२।।

अवददर्यमा चन्द्रं- ''रे विधो ! कीदृशो विधिः ।
क्वचित्क्षयः क्वचिद् वृद्धिः, स्थैर्यं न जीवने तव ।।३।।

पूर्णिमायामवष्टब्धः, क्षयसि त्वं शनैः शनैः ।
समं ते ज्योत्स्नयौद्धत्यं, क्षयतिः कृष्णपक्षके ।।४।।

तारकाणामधीशोऽसि, विरक्ताः किन्तु तास्त्वयि ।
त्वया विनाऽपि शर्वर्यां, निस्त्रपास्ताश्चकासति ।।५।।

निशाऽपि त्वयि निःस्नेहा, नाऽपेक्षते तवोदयम् ।
वृथैव ते जगन्मध्ये, निशापतिरिति श्रुतिः ।।६।।

॥ पाँचवाँ पक्ष ॥

(सूर्य और चंद्र का संवाद,
मुनि हंसरत्नविजयजी की पंन्यासपदवी तथा तपयात्रा का प्रारंभ)

- तीन जगत को देखनेवाले, तीन जगत के सूर्य, तीन जगत को मुक्त करने वाले, प्रकाशित करने वाले, जागृत करने वाले, शुद्ध करने वाले और आनंदित करने वाले ऐसे जिनेश्वर परमात्मा को नमस्कार करके कुवासना का नाश करने वाले उत्तम ऐसे इस पांचवें पक्ष की मैं विस्तार से रचना करता हूं...१

● सूर्य और चंद्र का संवाद ●

- एक बार आकाश में भ्रमण करने से श्रमित हो गया है शरीर जिनका ऐसे सूर्य-चंद्र, मुक्त मन से बातें करने की इच्छा से मिले...२
- सूर्य ने चंद्र से कहा- ''अरे चंद्र ! तुम्हारा नसीब कैसा है ? कभी क्षय तो कभी वृद्धि ! तुम्हारे जीवन में तो स्थिरता ही नहीं है...३
- पूर्णिमा के दिन अभिमान करने वाले तुम कृष्ण पक्ष में धीरे-धीरे क्षीण होते हो । तुम्हारी चांदनी के साथ-साथ तुम्हारी उद्दंडता क्षीण होती है...४
- तुम तारों के स्वामी हो परन्तु, तारें तो तुम्हारे प्रति विरक्त हैं । वे तो तुम्हारे बिना भी निर्लज्ज होकर रात्रि में चमकते हैं...५
- रात्रि भी तुम्हारे प्रति स्नेह बिना की है । वह तुम्हारे उदय की अपेक्षा नहीं रखती । तुम बेवजह ही जगत में ''निशापति'' इस प्रकार सुने जाते हो...६

जगति सुप्रसिद्धोऽस्ति, सलाञ्छनत्वदुर्गुणः ।
पयःशुभ्रश्रुतिर्मन्ये, भस्मांशमिश्रिता तव ॥७॥

मृगाङ्क ! पङ्कजाङ्कस्थश्चञ्चरीकोऽपि खिद्यते ।
पद्मं यतः स्वपर्णानि, त्वां विलोक्य निमीलति ॥८॥

चक्रवाकोऽपि निर्जीव, इव जातस्तवेक्षणात् ।
यतः प्रियावियोगस्य, स्यात् कारणं तवोदयः ॥९॥

आदीप्ता मन्दरोचिर्भिश्चन्द्रिकाऽस्ति तवाऽलसा ।
लोकास्त्यक्तनिजाऽऽरम्भा, यस्याः स्पर्शेन शेरते ॥१०॥

क्वचिच्चिरात् क्वचित्तूर्णं, क्वचिन्नोदेषि सर्वथा ।
सुगमः किं मृगाङ्कैवं, न ते दैनन्दिनक्रमः ? ॥११॥

वर्यो न क्षीयमाणस्त्वं, वर्या न ते परिक्रमा ।
न वर्या च तव ज्योत्स्ना, किं वर्यं वद चन्द्रमः !'' ॥१२॥

चन्द्रोऽगदद्- ''अयि ब्रध्न !, परतापपरायण ! ।
अभ्याख्यासि परान् हन्त !, स्वयं निर्गुणशेखरः ॥१३॥

- जगत में तुम्हारा सलांछनता नाम का दुर्गुण प्रसिद्ध ही है दूध जैसी तुम्हारी श्वेत कीर्ति भस्म के अंश से मिश्रित है, ऐसा मैं मानता हूं...७
- हे चन्द्र ! कमल की गोद में स्थित भौंरा भी खिन्न होता है क्योंकि कमल तुम्हें देखकर अहो ! अपनी पंखुडियों को बंद कर देता है...८

- चक्रवाक पंछी भी तुम्हें देखने पर निर्जीव जैसा हो गया है, क्योंकि तुम्हारा उदय उसकी प्रिया के वियोग का कारण बनता है...९
- लोग जिसके स्पर्श से अपने कार्यों को छोडकर सो जाते हैं ऐसी मंद किरणों से चमकती तुम्हारी चांदनी आलसु है...१०
- तुम कभी जल्दी और कभी देर से उदित होते हो तो, कभी कभार तुम सर्वथा उदित नहीं होते । इस प्रकार हे चंद्र ! तुम्हारा दैनिक क्रम सरलता से क्यों ज्ञात नहीं होता ?...११
- क्षीण होने वाले तुम सुंदर नहीं हो, तुम्हारी परिक्रमा भी सुंदर नहीं है, तुम्हारी चांदनी भी सुंदर नहीं है, तो चन्द्र ! बताओ तुम्हारा क्या सुंदर है ?''...१२
- चन्द्र ने कहा- ''हे सूर्य ! दूसरों को तपाने में होंशियार !, तुम दूसरों पर आक्षेप करते हो परन्तु स्वयं तो निर्गुणियों में प्रमुख हो...१३

दृश्येते वृद्धिहानी ये, सा मे कलाचमत्कृतिः ।
अहं विविधयाऽऽकृत्या, रञ्जयामि धरास्पृशः ॥१४॥

मां दृष्ट्वा विविधाऽऽकारं, कवयः कल्पयन्त्यहो ! ।
शूरकपोलमष्टम्यां, राकायां कामिनीमुखम् ॥१५॥

तारकाणामधीशत्वे, प्रतिबन्धो न किञ्चन ।
उदेम्यहं यथाकालं, **नान्यापेक्षा हि नाथता** ॥१६॥

न निशा मयि निःस्नेहा, साऽपेक्षते ममोदयम् ।
मुखं यथा विना नेत्रे, सा तथा स्यान्मया विना ॥१७॥

पादे चन्द्रप्रभस्याहं, लाञ्छनत्वेन संस्थितः ।
वदैतल्लाञ्छनत्वं किं, भाग्यं नास्ति ममाऽर्यमन् ! ॥१८॥

उदेमीन्दिवरव्रातमोदनायैव केवलम् ।
यदि रोचे न भृङ्गाय, दोषस्तस्य न मे रवे ! ॥१९॥

अहं मद्दर्शनाऽऽतुरजिवाजिवस्य जीवनम् ।
चक्रवाकस्य दोषोऽयं, तस्य यदरुचिर्मयि ॥२०॥

- मेरी जो वृद्धि-हानि दिखाई देती है वह तो मेरी कलाओं का चमत्कार है । मैं विविध आकृतियों से लोगों को खूश करता हूं...१४
- विविध आकारवाले मुझे देखकर कवि अष्टमी के दिन शूरव्यक्ति के ललाट के साथ मेरी कल्पना करते हैं और पूनम के दिन कामिनी के मुख के साथ मेरी कल्पना करते हैं...१५
- तारों के स्वामित्व के प्रति मेरी कोई आसक्ति नहीं हैं, मैं मेरे समय पर उदित होता हूं । **दूसरों की अपेक्षा न हो यही तो स्वामित्व है**...१६
- निशा मेरे प्रति प्रेम बिना की नहीं हैं, वह मेरे उदय की अपेक्षा रखती है । जैसे नेत्र बिना का मुख हो वैसे वह मेरे बिना शोभारहित बन जाती है...१७
- चंद्रप्रभस्वामी के चरण में लांछन के रूप में स्थित हूं । हे सूर्य ! तुम ही बोलो यह लंछनत्व क्या मेरा भाग्य नहीं ?...१८
- मैं तो केवल चंद्रविकासी कमलों के समूह को आनंदित करने हेतु उदित होता हूं, यदि भौरों को मैं प्रिय नहीं तो मित्र ! वह उनका दोष है...१९
- मेरे दर्शन हेतु आतुर ऐसे चकोर पक्षी का मैं जीवन हूं, चक्रवाक का यह दोष है कि उसकी मेरे प्रति अरुचि है...२०

नाऽलसाऽस्ति मम ज्योत्स्ना, शैत्येन तापहारिका ।
तत्स्पर्शहर्षणोत्कर्षाद्, मुञ्चत्यश्रु विधूपलः ॥२१॥

नियता न कलाः सन्ति, सुजना अत एव मे ।
दिदृक्षया कलानां रे !, भवन्ति दत्तचक्षुषः ॥२२॥

सन्तीह मे कला वर्या, वर्यतरा परिक्रमा ।
वर्यतमा च मे ज्योत्स्ना, किं न वर्यं वदाऽर्यमन् ! ॥२३॥

समुदञ्चितकल्लोलैराकारयति सागरः ।
दर्शनं सौम्यताहेतु, ममाऽस्ति दिवसेश्वर ! ॥२४॥

अङ्गानि संलीय निमील्य नेत्रे,
विलीय कामानधिरुह्य चाद्रौ ।
भवेद्यदि ध्यानमृषिश्चिकीर्षु-
स्तर्हीन्दिरा स्यात्किल मेऽनुकूला ॥२५॥ उपजातिः ॥

त्वत्तः पुराऽहं किल लोकितोऽस्मि,
स्वप्नेषु रम्येषु जिनेन्द्रमात्रा ।
भाग्यं तु कस्याधिकमस्ति सूर्य !
स्वात्मप्रशंसाकरणैकधुर्य !'' ॥२६॥ इन्द्रवज्रा ॥

- मेरी चांदनी आलसु नहीं हैं, वह तो शीतलता से ताप हरनेवाली है । उसके स्पर्श का हर्ष उभर आने से चंद्रकांतमणि अश्रु बहाता है...२१
- मेरी कलाएं नियत नहीं होती इसीलिए सज्जन मेरी कलाओं को देखने की इच्छा से अनिमेष नयनवाले हो जाते हैं...२२
- मेरी कलाएं सुंदर हैं, मेरी परिक्रमा सुंदरतर हैं और मेरी चांदनी सुंदरतम है । हे सूर्य ! मेरा क्या सुंदर नहीं वह तुम ही कहो...२३
- उछलती लहरों के द्वारा समंदर मुझे बुलाता है । हे सूर्य ! मेरे दर्शन सौम्यता का कारण बनते हैं...२४
- अंगो को संलीन करके, आंखों को मूंदकर, इच्छाओं को विलीन करके, पर्वत पर आरुढ होकर यदि मुनि ध्यान करना चाहे तो उसके लिए मेरी चांदनी अनुकूल बनती है...२५
- खुद की प्रशंसा करने में एक मात्र अग्रसर हे सूर्य ! सुंदर ऐसे (चौदह) स्वप्नों में जिनेश्वर की माता द्वारा तुमसे पहले मैं देखा गया हूं । बताओ किसका भाग्य अधिक है ?...''२६

सूर्योऽब्रवीत्-''चन्द्र ! सतन्द्र ! बन्धो !,
ज्ञाता मदालोकगुणास्त्वया नो ।
नानाकलावेषघटानिधित्सो !,
रे ! विस्मृतं कुत्र मतेः किरीटम् ? ॥२७॥ उपजातिः ॥

मां लोकते सूर्यमुखिप्रसून-
मावर्तते मत्कदिशाऽनुरूपम् ।
प्रतिक्षणं तच्च मदीक्षणेन,
प्रजायतेऽनिर्वचनीयहर्षम् ॥२८॥ उपजातिः ॥

लोकाः प्रगे मां विविधाभिधानैः,
स्मरन्ति यच्छन्ति जलाञ्जलिञ्च ।
त्वत्तोऽप्यहं पूज्यतराऽऽशयेन,
स्तुतोऽस्मि लोके स्फुटमौषधीश ! ॥२९॥ उपजातिः ॥

भवन्ति कैवल्यव्रताऽऽप्तितीर्थ-
संस्थापनादीनि जिनस्य मेंऽशौ ।
अतः सतः कस्यचनाग्र आवां,
शङ्कापनोदाय विधो ! व्रजेव'' ॥३०॥ उपजातिः ॥

गतावुभौ तौ भरतस्य भूम्यां,
विकृत्य देहं त्वपरं रवीन्दू ।
आकाशिकायां स्थित एक आर्यो,
दृष्टो हि ताभ्यां प्रतिरूपभृद्भ्याम् ॥३१॥ उपजातिः ॥

- सूर्य ने कहा कि- ''तंद्रा में वर्तन करने वाले मेरे भाई चन्द्र ! तुम मेरे प्रकाश के गुणों से अनजान लगते हो । कलारुपी वेशभूषा को धारण करने की इच्छावाले हे अज्ञानी ! तुम तुम्हारी बुद्धि का मुकुट कहां भूल आए ?...२७
- सूर्यमुखी पुष्प मुझे देखता है और मेरी दिशा के अनुरुप वह घूमता है । लगातार मुझे देखने से उसे कहा न जा सके ऐसा (प्रकृष्ट) आनंद उत्पन्न होता है...२८
- लोग प्रात:काल में मुझे अलग-अलग नामों से याद करते हैं और जल की अंजलि देते हैं । हे औषधीश्वर ! लोगों में पूज्य आशय से तुमसे अधिक मेरी स्तवना होती है''...२९
- प्रभु का केवलज्ञान, दीक्षा ग्रहण, तीर्थ स्थापना आदि प्रसंग मेरे प्रकाश में (=दिन में) होते हैं इसलिए हे चंद्र ! (हममें से कौन बडा है ? -इस) शंका को दूर करने हेतु चलो, हम किसी सज्जन के पास जाएं ।''...३०
- वे सूर्य और चन्द्र दूसरा शरीर बनाकर भरतक्षेत्र में आये और प्रतिरुप (दूसरा रुप) धारण करनेवाले ऐसे उनके द्वारा छत पर स्थित एक साधु भगवंत देखे गये...३१

आसीत्स मग्नो निजलेखकार्ये,
विधोः प्रभायां सितवस्त्रधारी ।
विज्ञाप्य तौ स्वं तमपृच्छतां यद्-
''नामास्ति किं ते वदतु प्रभो ! नौ'' ॥३२॥ उपजातिः ॥

''नामास्ति मे श्रीभुवनादिभानु-
र्ब्रूतं किमस्तीह प्रयोजनं वाम् ?'' ।
तावुक्तवन्तावुत''-को महीयान् ?
ब्रूहि प्रभो ! नौ किल संशयोऽयम्'' ॥३३॥ इन्द्रवज्रा ॥

सूर्युक्तवान्-''यो हि जिनाश्रितः स्याद्,
महान् स एवाऽस्तीह पुष्पदन्तौ ! ।
अतो विना विग्रहमाश्रयेतां,
जिनैकपादाब्जयुगं वरेण्यम्'' ॥३४॥ उपजातिः ॥

श्रुत्वा वचो भुवनभानुगुरोः प्रशस्तं,
त्यक्त्वा विवादमखिलं प्रगतौ नभे तौ ।
चन्द्रस्तदाप्यगददर्कमवेक्ष्य सूरिं-
''चित्रं यदिच्छति विधुं निशि भानुरेषः'' ॥३५॥ वसन्ततिलका ॥

पूषाऽवदत्-''शृणु शशिन् ! गुरुदृष्टिपूत !
चित्रं त्वितोऽपि यदुत- प्रशमेन पीनः ।
आकाशिकोपरि सितांशुकसंवृताङ्गो,
भानुश्चकास्ति निशि सौम्यसदौजसाऽयम्'' ॥३६॥ वसन्ततिलका ॥

* * *

- (मूल शरीरवाले) चंद्र के प्रकाश में श्वेत वस्त्रधारी एक साधु भगवंत अपने लेखनकार्य में मग्न थे । उन्हें सूर्य और चंद्र ने अपनी पहचान दी और पूछा- ''हे भगवन् ! आपका नाम क्या है ? यह बताइए''...३२

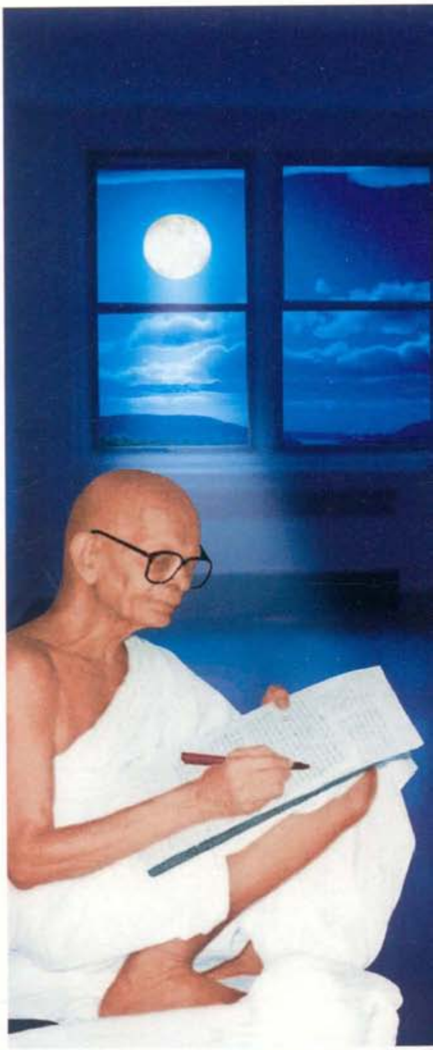

- ''मेरा नाम भुवनभानुसूरि है । तुम यहां किस प्रयोजन से आये हो ?'' सूर्य और चंद्र ने कहा- ''हे प्रभु ! हम दोनों में से अधिक महान कौन है यह बताइए, यह हमारा संशय है''...३३
- आचार्यदेव ने कहा- ''हे सूर्य-चंद्र ! जिसने जिनेश्वर प्रभु का आश्रय लिया हो वही यहां महान है। इसलिए झगडा छोडकर, श्रेष्ठ ऐसे जिनेश्वर प्रभु के ही चरणकमल का आसरा लो''...३४
- आचार्य विजय भुवनभानुसूरिजी गुरुवर के प्रशस्त वचन को सुनकर, समस्त विवाद को छोडकर सूर्य-चंद्र आकाश में गये तब चंद्र ने सूरिभगवंत को देखते हुए सूर्य से कहा- ''आश्चर्य ! यह भानु भी (आचार्य विजय भुवनभानुसूरि) रात्रि में चंद्र की इच्छा रखता है''...३५
- सूर्य ने कहा- ''गुरु की दृष्टि से पावन हुए हे चंद्र ! आश्चर्य तो इससे भी अधिक यह है कि- प्रशम से पुष्ट ऐसा छत पर श्वेत वस्त्र से आवृत्त शरीरवाला यह भानु (आचार्य विजय भुवनभानुसूरि) रात्रि में सौम्य-तेज से चमकता है...३६

* * *

स्वस्थानमाप्तवन्तौ तौ, स्तुत्वैवं भानुसद्गुरुम् ।
सोऽपि प्रपालयन्धर्मं, व्यहरत गुरूत्तमः ।।३७।।

वैक्रमे तत्त्ववेदाभ्रौष्ठाब्दे(२०४९)कर्णावतीपुरि ।
चैत्रकृष्णत्रयोदश्यां, कालधर्ममवाप सः ।।३८।।

तस्य स्मृत्या ह्यलङ्कर्तुं, भव्यानां स्मृतिमन्दिरम्[१] ।
कालधर्मस्थले तत्र, निर्मितं स्मृतिमन्दिरम् ।।३९।।

दृगक्षखायनाब्दे(२०५२)तु, गुरुमूर्तिः प्रतिष्ठिता ।
सहोल्लासं त्रयोदश्यां, कृष्णपक्षस्य कार्तिके ।।४०।।

भक्ताः स्वभक्तिभावेन, भजन्ति तत्र सद्गुरुम् ।
भूयः प्रदक्षिणाभिस्ते, सार्थक्यं लान्ति जन्मनः ।।४१।।

येन तु वासचूर्णेन, गुरोर्मूर्तिः प्रपूजिता ।
पुण्यसुवास आघ्रातस्तेनेह पुण्यशालिना ।।४२।।

---

१. स्मृतेर्मन्दिरं - स्थानमित्यर्थः, तन्नाम मनः यतो स्मृतिर्मनसि तिष्ठति ।

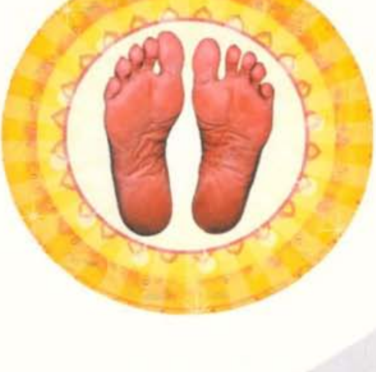

• इस प्रकार गुरुदेव आचार्य विजय भुवनभानुसूरिजी की स्तवना करके सूर्य और चंद्र स्वस्थान पर गये और वह गुरुदेव भी धर्म का पालन करते हुए विचरते रहे...३७

• विक्रम संवत २०४९, चैत्र वदि १३ के दिन अमदावाद में वे कालधर्म को प्राप्त हुए...३८

• उनकी स्मृति से भव्यजीवों के स्मृतिमंदिर (=मन) को अलंकृत करने हेतु उस कालधर्म के स्थल पर (उनका) स्मृतिमंदिर बनाया गया...३९

• वर्ष (विक्रम संवत) २०५२ में, कार्तिक वद १३ के दिन वहां उल्लासपूर्वक गुरुमूर्ति प्रतिष्ठित हुई...४०

• भक्त अपने भक्तिभाव से वहां सद्‌गुरु का भजन करते हैं, बार-बार प्रदक्षिणा देने से वे जीवन की सफलता को प्राप्त करते हैं...४१

• जिसके द्वारा वासक्षेप से गुरु मूर्ति की पूजा की गयी है उस पुण्यशाली के द्वारा पुण्य की सुवास पायी गयी है...४२

सुमनोभिर्मनोज्ञैर्यः, सद्गुरुमूर्तिमर्चति ।
अगण्यपुण्यराशिं स, सञ्चिनोति सुपुण्यभाग् ।।४३।।

मुखे स्मितं करे शास्त्रमङ्के धर्मध्वजं तथा ।
रुचिरकम्बलं स्कन्धे, करुणा स्निग्धनेत्रयोः ।।४४।।

आशीष्प्रदानसन्मुद्राऽन्यस्मिन् करे च शोभते ।
भुवनभानुसन्मूर्तेरेवं हि दिव्यदर्शनम् ।।४५।। युग्मम् ।।

इतश्च हंसरत्नाऽऽह्वः, साधुः साधुक्रियापरः ।
वियोगः स्वगुरोर्ज्ञात्वाऽखिद्यत हृदये निजे ।।४६।।

''विद्यते न गुरोर्देह, औदारिकस्तथाऽप्यहम् ।
वर्तिष्ये सर्वकालं तैः, सहाऽऽज्ञावपुषा खलु'' ।।४७।।

एवं निश्चित्य चित्ते स, आज्ञया स्वगणेशितुः ।
वर्तमानः सुचारित्रेऽकुरुत कर्मणः क्षयम् ।।४८।।

- सुंदर पुष्पों के द्वारा जो सद्गुरु की मूर्ति को पूजता है वह सुंदर पुण्य को भुगतने वाला असंख्य पुण्यराशि को एकत्रित करता है...४३
- मुख पर स्मित, हाथ में शास्त्र तथा गोद में रजोहरण, सुंदर कंबल, भीगी आंखों में करुणा तथा जिसके दूसरे हाथ में आशीर्वाद की मुद्रा शोभा देती है वह इस आचार्यदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरि महाराज की मूर्ति का दिव्य दर्शन है...४४-४५ (दो श्लोकों का समूह)
- इस ओर श्रमणक्रिया में तत्पर मुनि हंसरत्नविजय अपने गुरु का वियोग जानकर अपने हृदय में दुःखी हुए...४६
- ''गुरू की औदारिक देह विद्यमान नहीं हैं फिर भी मैं आज्ञादेह द्वारा हंमेशा उनके साथ रहूंगा''...४७
- इस प्रकार मन में निश्चय करके अपने गच्छाधिपति की आज्ञा में रहकर चारित्र का पालन करते हुए वह कर्म का क्षय करते रहे...४८

(मुनिहंसरत्नविजयस्य दीक्षितः परिकरः)

जनकोऽपि तथैतस्य, सापत्यं दीक्षितः पुरा ।
नाम्ना बभूव **श्रीतत्त्ववर्धनविजयो मुनिः** ॥४९॥

लघुभ्राता च नाम्नाऽभूद्, **मुनिश्रीतत्त्वदर्शनः** ।
सोदरा दीक्षिता या सा, **साध्वीश्रीभव्यरञ्जना** ॥५०॥

श्रीकलापूर्णसूरीन्द्रसन्निधौ ते प्रवव्रजुः ।
तैरभिसिषिधे वाक्यं- ''यथा नाम तथा गुणाः'' ॥५१॥

तत्त्वस्य वर्धनं कुर्वन्, सङ्कल्पकल्पजल्पनैः ।
अनुभवति यो हर्षं, स तत्त्ववर्धनो मुनिः ॥५२॥

यस्य प्रत्येकयोगेषु, मौनीन्द्रतत्त्वदर्शनम् ।
जायते स मुनिः श्रीमान्, तत्त्वदर्शन उच्यते ॥५३॥

कृतं मधुरवाणीभिर्भव्यानां चित्तरञ्जनम् ।
अत एवाऽत्र सा प्रोक्ता, साध्वीश्रीभव्यरञ्जना ॥५४॥

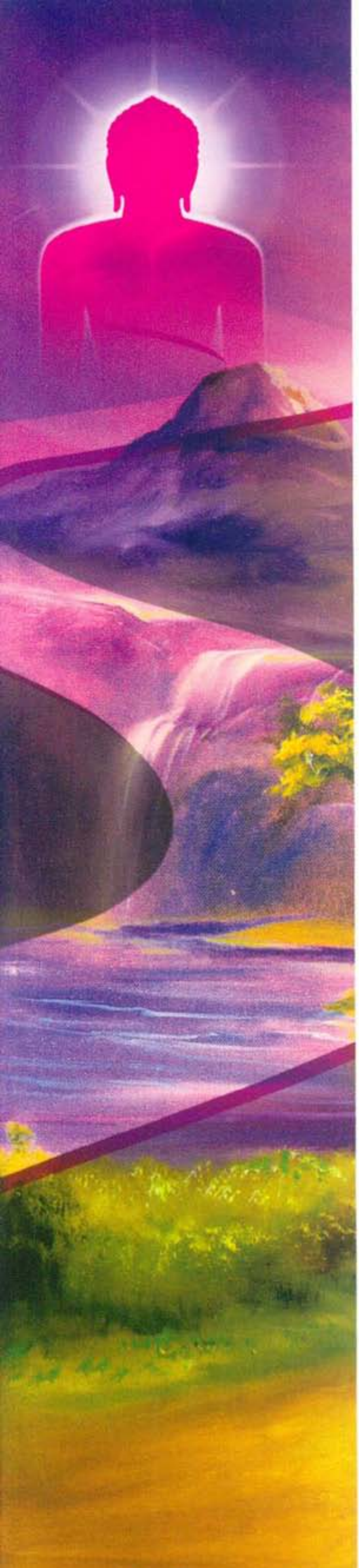

(मुनि हंसरत्नविजयजी का दीक्षित परिवार)

- उनके (मुनि हंसरत्नविजयजी के संसारी) पिताश्री ने भी उनसे पहले दीक्षा ली जिनका नाम **मुनिराज श्री तत्त्ववर्धनविजयजी** रखा गया...४९
- तथा (संसारी) छोटे भाई (भी दीक्षित हुए, जिन) का नाम **मुनिराज श्री तत्त्वदर्शनविजयजी** रखा और दीक्षित उनकी (संसारी) बहन का नाम **साधवी श्री भव्यरंजनाश्रीजी** रखा गया...५०
- पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय कलापूर्णसूरि महाराज के सांनिध्य में उन्होंने दीक्षा ली और उन सब के द्वारा सिद्ध किया गया कि- ''जैसा नाम होता है वैसे गुण होते हैं''...५१
- संकल्प, आचार और वचनों के द्वारा तत्त्व का वर्धन करने में जो हर्ष का अनुभव करते हैं वह मुनिराज श्री तत्त्ववर्धनविजयजी हैं...५२
- जिनके प्रत्येक योग में जिनेश्वर प्रभु के तत्त्वों के दर्शन होते हैं वे मुनिराजश्री तत्त्वदर्शनविजयजी कहलाते हैं...५३
- जिन्होंने मधुरवाणी से भव्य जीवों का मनोरंजन किया है, इसीलिए वे साध्वीश्री भव्यरंजनाश्रीजी कहलाते हैं...५४

शतौलिकाः कृतास्तत्त्ववर्धनविजयर्षिणा ।
जीवदयादिकृत्येषु, प्रेरयति स्म सोऽपरान् ॥५५॥

श्रीतत्त्वदर्शनो जातः, प्रवचनप्रभावकः ।
क्रमेणाऽऽरोहितः सूरिपदे स ज्येष्ठसूरिभिः ॥५६॥

परिवृता सुशिष्याभिः, श्रमणी भव्यरञ्जना ।
क्रमेण साऽपि सञ्जाता, प्रवचनप्रभाविका ॥५७॥

मुनिश्रीहंसरत्नस्य, विनेयोऽभूद् युवोत्तमः ।
उत्साही विजयान्तश्रीज्ञानध्यानाऽऽख्यसंयतः ॥५८॥

(पन्न्यासपदवी तपोविचारश्च)

योगे श्रीपञ्चमाङ्गस्य ज्येष्ठानामाज्ञया शुभे ।
न्यविशत[२] हंसरत्नः, विशिष्टतपसोद्यतः ॥५९॥

पन्न्यासपदवी दत्ता, तस्मै मानसमन्दिरे ।
वैशाखशुक्लसप्तम्यां, तत्त्वाक्षाभ्रौष्ठवत्सरे (२०५९) ॥६०॥

---

२. निविशः ॥३/३/२४॥ सिद्धहेमशब्दानुशासनम् ।

- मुनिराज श्री तत्त्ववर्धनविजयजी ने वर्धमान तप की १०० ओली पूर्ण की और वे सतत दूसरों को जीवदया आदि सुकृतो में प्रेरित करते थे...५५
- मुनिराज श्री तत्त्वदर्शनविजयजी प्रवचन प्रभावक हुए ओर क्रमशः बडे आचार्यों के द्वारा वे आचार्य पद पर आरुढ किये गये...५६
- सुंदर शिष्याओं से परिवृत्त साध्वी श्री भव्यरंजनाश्रीजी भी क्रमशः प्रवचन प्रभाविका बने...५७
- मुनिराज श्री हंसरत्नविजयजी को भी एक युवा शिष्य हुआ जिनका नाम मुनिश्री ज्ञानध्यानविजयजी है...५८

(पंन्यासपदवी एवं तप का विचार)

- ज्येष्ठ मुनिभगवंतों की आज्ञा से विशिष्ट तपस्या में उद्यत ऐसे मुनिराज श्री हंसरत्नविजयजी ने शुभ ऐसे भगवतीसूत्र के जोग में प्रवेश किया...५९
- (विक्रम संवत) वर्ष २०५९ में, वैशाख सुदि ७ के दिन (शाहपुर) मानसमंदिरम् तीर्थ में उन्हें पंन्यास पदवी दी गयी...६०

अथैकदैष पन्न्यासः, कान्दिवलीप्रभागकम् ।
विहृत्य गतवान् धीरः संयमाऽमृतपायकः ॥६१॥

तदा तत्राऽचलद् मुक्तिवल्लभव्रतिसन्निधौ ।
उपधानतपः श्रेष्ठं, श्राद्धानां शुद्ध्युपेयुषाम् ॥६२॥

तत्र नैके स्थिता आसन्, गुणाऽऽयतनसंयताः ।
स्वाध्याये सुतपस्युग्रे, यतमाना दिवानिशम् ॥६३॥

मध्याह्ने तु समुद्देशे, मण्डल्यां व्रतिनोऽखिलाः ।
निषण्णा वर्तुलाऽऽकारादविकारा मिताऽशनाः ॥६४॥

बालसाधुस्तु तत्रैको, निषण्णो मौनभावतः ।
निर्दोषं वदनं यस्य, सदनं गुणसन्ततेः ॥६५॥

तं दृष्ट्वा हंसरत्नाऽऽर्योऽकथयज्ज्येष्ठसंयतम् ।
''किमर्थं कारयस्येनमेकाशनतपो हहा ! ॥६६॥

- अब एक बार धीर, संयमरुपी अमृत का पान करने वाले पंन्यास श्री हंसरत्नविजयजी विहार करके कांदिवली नाम के विस्तार में पधारे...६१

- तब वहां पूज्य मुक्तिवल्लभविजयजी म.सा.की निश्रा में शुद्धि से युक्त ऐसे श्रावकों के श्रेष्ठ उपधान चल रहे थे...६२

- वहां गुण के आवास समान अनेक मुनिभगवंत बिराजमान थे जो दिन-रात स्वाध्याय और उग्र तप में यत्न करते थे...६३

- दोपहर में गोचरी के समय बिना विकार के, अल्प-आहारी तमाम मुनिभगवंत मांडली में गोल आकार में बैठे...६४

- वहां एक बालमुनि मौनपूर्वक बैठे, जिनका निर्दोष मुख गुणसमूह का स्थान था...६५

- उस बालमुनि को देखकर पंन्यास हंसरत्नविजयजी ने एक बडे साधु से कहा- ''अरे ! इन्हें (बालमुनि को) आप एकासना क्यों कराते हो ?...६६

कृशमस्ति वपुस्तस्य, वयोऽपि लघु वर्तते ।
नियोजितः कथं तर्हि, तपस्येकाशनाभिधे ?'' ॥६७॥

अब्रवीज्ज्येष्ठसाधुस्तु- ''न जानाति यतो भवान् ! ।
वयसा लघुरप्येष, तपसाऽस्ति महत्तमः ॥६८॥

रूपातीतमुनिर्नाम्नाऽयमुपशान्तमानसः ।
प्राक्तनायां चतुर्मास्यां, मृत्युञ्जयतपोऽकरोत् ॥६९॥

मक्षिकामलदन्तेन, लोहचणकचर्वणम् ।
यथा दुःसाध्यमस्मै तु, तथेदं दुस्तपं तपः ॥७०॥

तथापि गुर्वनुक्रोशप्रभावेनाऽमुना कृतम् ।
तप[3]स्तत् कर्मपाथोधिविक्षोभाय प्रभञ्जनः ॥७१॥

एकाशनं तु किं तस्मै, येनैवं साधितं तपः ।
सम्राजो विजिता येन, सामन्तास्तर्हि के पुनः ?'' ॥७२॥

---

३. तप्पते अणेण पावं कम्ममिति तवो ॥४६॥ निशीथचूर्णिः ।

- इनका शरीर कृश है और उम्र भी छोटी है तो फिर इन्हें एकासने नाम के तप में क्यों जोडा ?''...६७

- वडील साधु ने कहा- ''आप इन्हें जानते नहीं हैं (इसलिए आप ऐसा कह रहे है) । उम्र से छोटे ऐसे यह मुनि तप से महान हैं...६८

- इस उपशांत मन वाले मुनि का नाम **मुनिराजश्री रूपातीतविजयजी** हैं जिन्होंने गत चातुर्मास में मासक्षमण किया था...६९

- मोम के दांत से लोहे के चने चबाना जैसे दुःसाध्य है वैसे इनके (बालमुनि के) लिए भी यह कष्ट से किया जा सके ऐसा तप दुःसाध्य था...७०

- फिर भी कर्मरुपी समुद्र को विचलित करने के लिए तूफान के समान यह तप गुरु की कृपा के प्रभाव से इस बालमुनि के द्वारा किया गया...७१

- जिसके द्वारा इस प्रकार (मासक्षमण) तप साधा गया हो उसके लिए एकासना क्या बडी बात है ? जिसके द्वारा सम्राट् जित गये हैं उसके लिए सामन्तों को जीतना कौनसी बडी बात है ?...७२

आकर्ण्यैवं महासत्त्वसाध्यतपःपराक्रमम् ।
आर्द्रान्तःकरणो हंसरत्नगणिरचिन्तयत् ॥७३॥

''क्वाऽयं रे ! लघुपर्याये, बालवयसि विक्रमी ? ।
क्व चाहं प्रौढश्रामण्ये, निःसत्त्वो गलिसोदरः ? ॥७४॥

प्रतनुतनुरेष क्व, मृत्युञ्जयतपोऽकरोत् ? ।
क्वाऽहं सुपुष्टदेहोऽपि, सर्वदा रसलोलुपः ? ॥७५॥

क्वाऽयमज्ञातसारोऽपि, साधनायां समुद्यतः ? ।
क्वाऽहं विज्ञातसारोऽपि, रसेषु गृद्धमानसः ? ॥७६॥

निःसत्त्वता निरुत्साहो, निष्क्रियता न शोभनाः ।
स्फोरयिष्याम्यसामान्यपौरुषं सुतपस्यपि ॥७७॥

तपोघृतमसम्पूर्य, व्रतदीपो न दीप्यते ।
प्रयाति तपसा कर्म, निकाचित[४]मपि क्षयम् ॥७८॥

---

४. • भावकोडिसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जई ॥३०/६॥ उत्तराध्ययनसूत्रम् ॥
• निकाचितानामपि कर्मणां यद् गरीयसां मधूरदुर्धराणाम् ।
विभेदने वज्रमिवातितीव्रं नमोऽस्तु तस्मै तपसेऽद्भुताय ॥९/४॥ शान्तसुधारसः ॥

- इस प्रकार अतिशय सत्त्व से सिद्ध किया जा सके ऐसे तप का पराक्रम सुनकर आर्द्र अंतःकरणवाले पंन्यास हंसरत्नविजयजी ने सोचा...७३

- "बालवय और अल्प पर्याय में पराक्रमी ऐसे यह (बालमुनि) कहां ? और दीर्घ संयमजीवन में भी गले हुए बैल जैसा निःसत्त्व मैं कहां ?...७४

- सुकोमल शरीरवाले यह (बालमुनि) कहां ? जिन्होंने मासक्षमण किया और सुपुष्ट शरीरवाला होने के बावजूद भी रसलोलुप ऐसा मैं कहां ?...७५

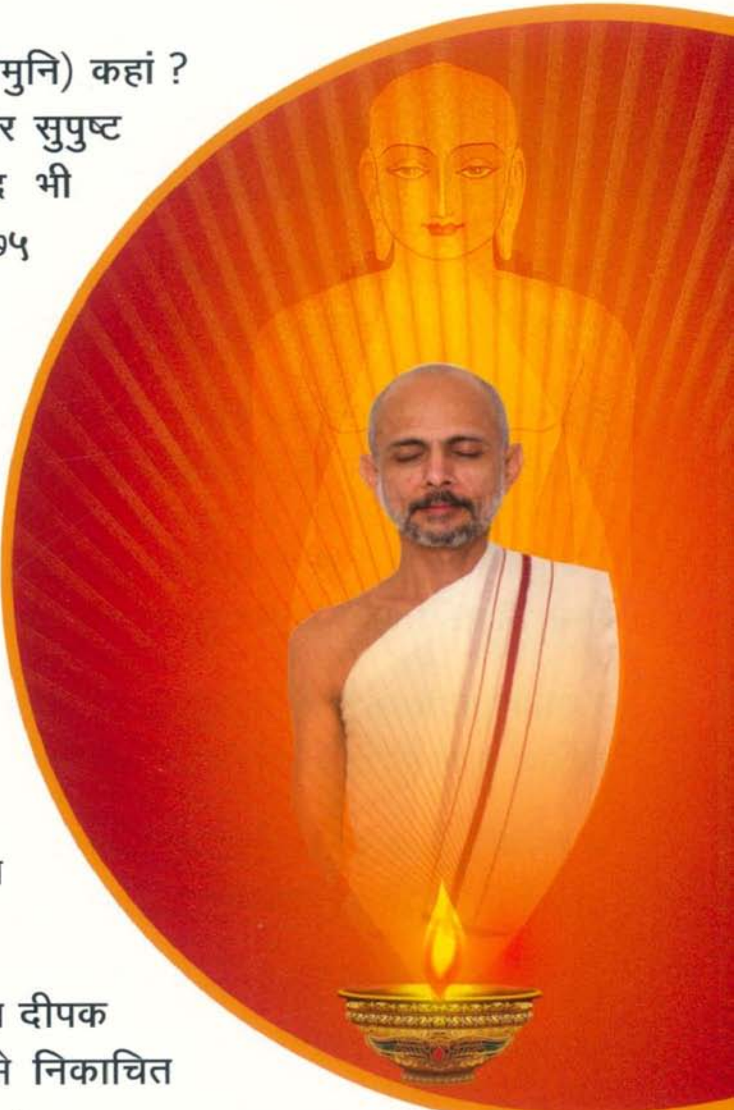

- (आगमों का) सार न जानने के बावजूद भी साधना में उद्यत ऐसे यह (बालमुनि) कहां ? और (आगमों का) सार जानने के बावजूद भी रसों में गृद्ध मनवाला ऐसा मैं कहां ?...७६

- निःसत्त्वता, निरुत्साह और निष्क्रियता अच्छी नहीं है । मैं भी तप के क्षेत्र में असामान्य पुरुषार्थ करुंगा...७७

- तप का घी डाले बिना व्रत का दीपक प्रकाशित नहीं होता । तप से निकाचित कर्मों का भी क्षय होता हैं...७८

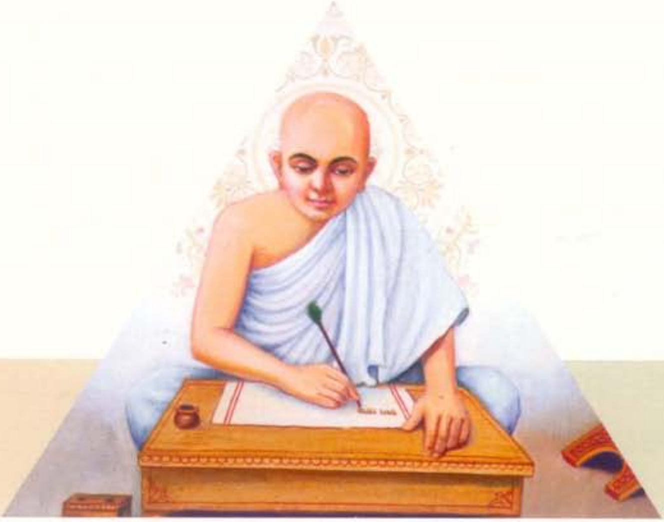

शिलया खगपः खगपेन शिला, शिलया खगपेन विभाति नगः ।
धनुषा विशिखो विशिखेन धनुर्धनुषा विशिखेन विभाति भटः ॥७९॥ तोटकम् ॥

क्रियया विदितं विदितेन क्रिया, क्रियया विदितेन विभाति बुधः ।
तपसा चरणं चरणेन तपस्तपसा चरणेन विभाति मुनिः ॥८०॥ तोटकम् ॥

एवं विचिन्त्य तेन स्वमनोऽतीव दृढीकृतम् ।
मन्ये निजतपःसौधमूलमेव दृढीकृतम् ॥८१॥

''सजापं च समौनं[५] च, मृत्युञ्जयतपो वरम् ।
करिष्य एकसत्स्थाने, सन्त्यज्य बहिरङ्गताम्[६] ॥८२॥

न करिष्ये वृथाऽऽलापं, द्रक्ष्यामि न वृथा बहिः ।
चरिष्यामि न निर्हेतु, धरिष्याम्यप्रमत्तताम्'' ॥८३॥

एवं स कृतसङ्कल्पोऽन्वेष्टुं लग्नो तदा किल ।
मुम्बापुरि विशालायां, तपोऽनुकूलसंश्रयम् ॥८४॥

---

५. जं मोणं तं सम्मं, तमिह होइ मोणं ति ॥६१॥ श्रावकप्रज्ञप्तिः ।
६. नन्नत्थ निज्जरट्ठाए तवमहिट्ठेज्जा ॥९-४॥ दशवैकालिकसूत्रम् ।

- शिला से गरुड़, गरुड़ से शिला, शिला और गरुड़ से पर्वत शोभा देता है । धनुष्य से तीर, तीर से धनुष्य, धनुष्य और तीर से सैनिक शोभा देता है...७९
- क्रिया से ज्ञान, ज्ञान से क्रिया, क्रिया और ज्ञान से विद्वान शोभा देता है । (वैसे ही) तप से चारित्र, चारित्र से तप, तप और चारित्र से मुनि शोभा देता है...८०
- इस प्रकार सोचकर उसने अपना मन अत्यंत दृढ किया, मानो अपने तपरुपी महल की नींव दृढ की हो ऐसा मैं मानता हूं...८१
- ''जाप के साथ और मौन के साथ, एक सुंदर स्थान में रहकर बहिर्मुखता को छोडकर मैं मासक्षमण तप करुंगा...८२
- व्यर्थ बातें नहीं करूंगा, बाहर नहीं देखूंगा, बिना कारण नहीं चलूंगा और अप्रमत्तता को धारण करूंगा''...८३
- इस प्रकार जिसने संकल्प किया है ऐसे वे पंन्यासजी विशाल मुंबई नगरी में तप के अनुकूल ऐसे स्थान को खोजने लगे...८४

परेलाऽऽह्वप्रभागस्य सङ्घेनानुमतो हि सः ।
प्रविश्यैकप्रकोष्ठान्ते, स्थापयित्वोपधींस्तथा ॥८५॥

ध्यात्वा मनसि तीर्थेशं, स्मृत्वा सद्गुरुतल्लजम् ।
धैर्यशम्बलसम्पृक्तः, सज्जीभूतस्तपःकृते ॥८६॥ युग्मम् ॥

सङ्घजिनालयं गत्वा, नत्वा ज्ञातान्वयं तथा ।
त्रिश्च प्रदक्षिणां दत्त्वा, कृत्वा चाशेषमङ्गलम् ॥८७॥

चतुस्त्रिंशत्कभक्तस्य, प्रत्याख्यानमयाचत ।
ज्येष्ठमुनिसकाशे स, साक्ष्ये सङ्घस्य विक्रमी ॥८८॥ युग्मम् ॥

विस्मितः स मुनिस्तस्मै प्रत्याख्यानं प्रदत्तवान् ।
ततः प्रभृति किं जातं, तद् वक्ष्यामि यथाक्रमम् ॥८९॥

इह भवकुहरे रे ! भ्रान्तिकाकारिकीर्णे,
विमतितिमिरपूर्णे कान्दिशीकत्वकारे ।
श्रुतसदभिधदीप ! स्वप्रकाशं तनु त्वं,
भविकहितकृतेऽस्यापि श्रिये पक्षकस्य ॥९०॥ मालिनी ॥

॥ इति पञ्चमः पक्षः समाप्तः ॥

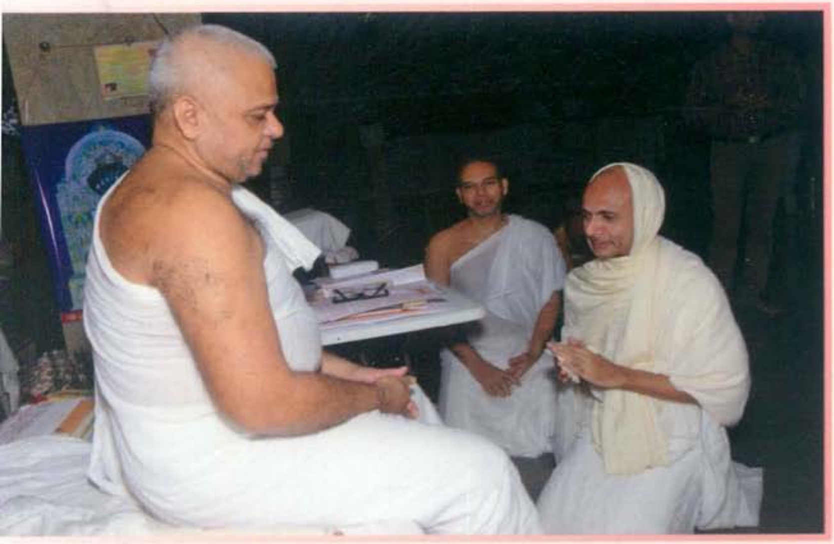

- परेल (विकास अपार्टमेन्ट) नाम के संघ के द्वारा सानंद अनुमति प्राप्त करनेवाले वे पंन्यासजी ने एक रुम के अंदर जाकर अपनी उपधि रखी, मन में जिनेश्वर भगवंत का ध्यान करके, गुरुदेव का स्मरण करके, जिसने धैर्य का पाथेय धारण किया है ऐसे वे तप हेतु सज्ज हुए...८५-८६
- संघ के जिनालय में जाकर, वर्धमानस्वामी को नमन करके, तीन प्रदक्षिणा देकर तथा तमाम मंगल करके, संघ की साक्षी में, वडिल मुनिभगवंत के पास पराक्रमी ऐसे उन्होंने १६ उपवास का पच्चक्खाण मांगा...८७-८८
- विस्मय को प्राप्त करनेवाले उस मुनिभगवंत ने उन्हें पच्चक्खाण दिया और उसके पश्चात् क्या हुआ वह मैं क्रमशः (आने वाले पक्ष में) कहूंगा...८९
- भ्रांतिरुपी उल्लू से व्याप्त, दुर्बुद्धि नाम के अंधकार से पूर्ण, ''कहां जाऊं, कहां जाऊं'' ऐसी अवस्था को पैदा करनेवाली इस भवरुपी गुफा में हे श्रुतदीपक ! भव्यजीवों के हित के लिए और इस पक्ष के कल्याण के लिए भी तुम तुम्हारा प्रकाश फैलाओ...९०

॥ पांचवाँ पक्ष समाप्त ॥

द्विसंधानकाव्यम्

शेषभोगोपभोक्तारमशोकं श्रीनिषेवितम् ।
सुदर्शनकरं हंसं, हृषीकेशं स्तवीम्यहम् ॥

- **विष्णुपक्ष में :** शेषनाग की फणा का उपयोग करने वाले, अशोक (विष्णु का ही एक नाम), लक्ष्मी से सेवित, जिसके हाथ में सुदर्शनचक्र है ऐसे हंस-हृषीकेश (विष्णु के ही अपर नाम) की मैं स्तवना करता हूं ।
- **आचार्य विजय हंसरत्नसूरि पक्ष में :** शेषभोग (शेष बचा हुआ-अवशिष्ट भोजन) को भुगतने वाले, शोकरहित, आभ्यंतर लक्ष्मी से सेवित, सुंदर हाथ वाले, इन्द्रियों के स्वामी (=इंद्रियों को वश करने वाले) आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी की मैं स्तवना करता हूं ।
- इस काव्य की यह विशेषता है कि काव्य का अर्थ दो भिन्न भिन्न अधिकरणों में तथाकथित विवक्षाओं से घटित होता है । एक ही श्लोक का दोनो स्थानों में संधान होने से यह द्विसंधानकाव्य है ।

॥ षष्ठः पक्षः ॥

(प्रथममृत्युञ्जयतपः,
देहाऽऽत्मनोर्भेदस्य चिन्तनं, महातपसो भावना...)

ज्ञानोद्यानं, मदगिरिपविं, मत्सरव्यालतार्क्ष्यं,
सच्छीलेन, प्रपुनिततनुं, कर्मरोगैकवैद्यम् ।
मिथ्याविद्यातिमिरतरणिं, वर्धमानं प्रणम्य,
पक्षं कम्रं, मधुरिमभरं, षष्ठकं संसृजामि ॥१॥ मन्दाक्रान्ता ॥

प्रत्याख्याता, जिनवरगृहे, हंसरत्नो जहर्ष,
लग्नो जापे, स्तिमितमनसा, त्यक्तबाह्यप्रचारः ।
निद्रातन्द्रे, अलसदयिते, तेन दूरीकृते रे !
नाऽल्पाऽऽयासो, भवति भविनामन्तरङ्गे तु युद्धे ॥२॥ मन्दाक्रान्ता ॥

श्रद्धानासिर्विनयलगुडः, साम्यवृक्षादनश्च,
प्रज्ञादण्डो, नयततिशरास्तीक्ष्णकारुण्यवज्रः ।
विद्याकुन्तः, प्रशमकवचः, धारयन्नेवमेतान्,
कर्मद्वन्द्वे, कठिनहृदयः, संयतो लोकितोऽस्ति ॥३॥ मन्दाक्रान्ता ॥

सोऽप्येवं रे !, तपसि कठिने, सम्प्रवृत्तोऽप्रमादी,
पंन्यासः स्वप्रबलतरसा, प्राकरोत्कर्मनाशम् ।
पुण्यं दिव्यं ह्यचिनुत तथा, हन्त ! पुण्यानुबन्धि,
सत्यं योगैस्त्रिविधविमलैः, किं न सिद्ध्यत्यवन्याम् ? ॥४॥ मन्दाक्रान्ता ॥

।। छट्ठा पक्ष ।।

(प्रथम मासक्षमण, देह और आत्मा के भेद का विचार, बडे तप की भावना)

- ज्ञान का उद्यान, मदरुपी पर्वत के लिए वज्र, मत्सररुपी सर्प के लिए गरुड़, सुंदर शील से पुनित कायावाले, कर्मरुपी रोग के लिए एक मात्र वैद्य, मिथ्याज्ञानरुपी अंधकार के लिए सूर्य ऐसे वर्धमानस्वामी को नमन करके, मधुरता से पूर्ण सुंदर ऐसे छट्ठे पक्ष की रचना करता हूं...१

- मंदिर में पच्चक्खाण लेनेवाले पंन्यास हंसरत्नविजयजी हर्षित हुए, बाह्य प्रचार छोड देनेवाले वे स्थिर-एकाग्र होकर मन से जाप करने लगे, आलसी को प्रिय ऐसी-निद्रा और तंद्रा उनके द्वारा दूर की गई, अहो ! आभ्यंतरयुद्ध में भव्य जीवों का प्रयास कम नहीं होता...२

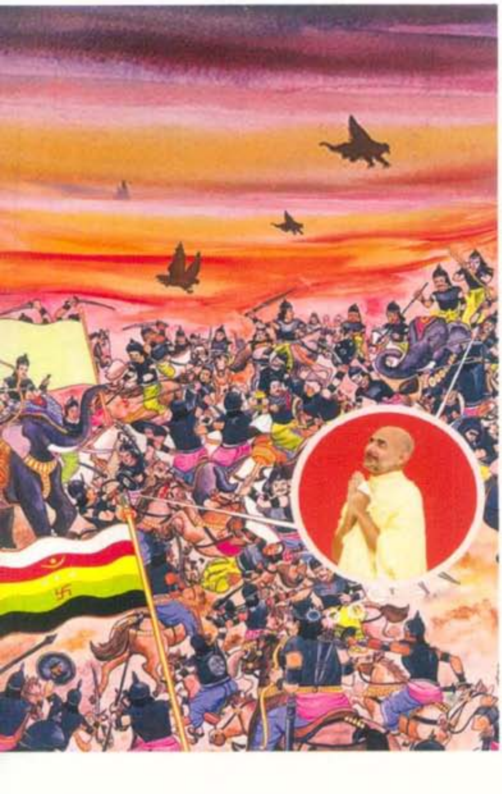

- श्रद्धा की तलवार, विनय की छड़ी, समता की कुल्हाडी, प्रज्ञा का दंड, नय के समूह रुप तीर, तीक्ष्ण एवं करुणा का वज्र, विद्या का भाला और प्रशम का कवच इन सब को धारण करने वाले मुनि कर्म के युद्ध में कठोर हृदयवाले प्रतीत होते हैं...३

- वे पंन्यासजी भी इस प्रकार प्रमाद बिना कठिन तप में प्रवृत्त हुए और खुद की प्रबल शक्ति से उन्होंने कर्म का नाश किया और अहो ! दिव्य पुण्यानुबंधी पुण्य एकत्रित किया । वास्तव में त्रिविध से (मन-वचन-काया से) निर्मल ऐसे योग से इस पृथ्वी पर क्या सिद्ध नहीं होता ?...४

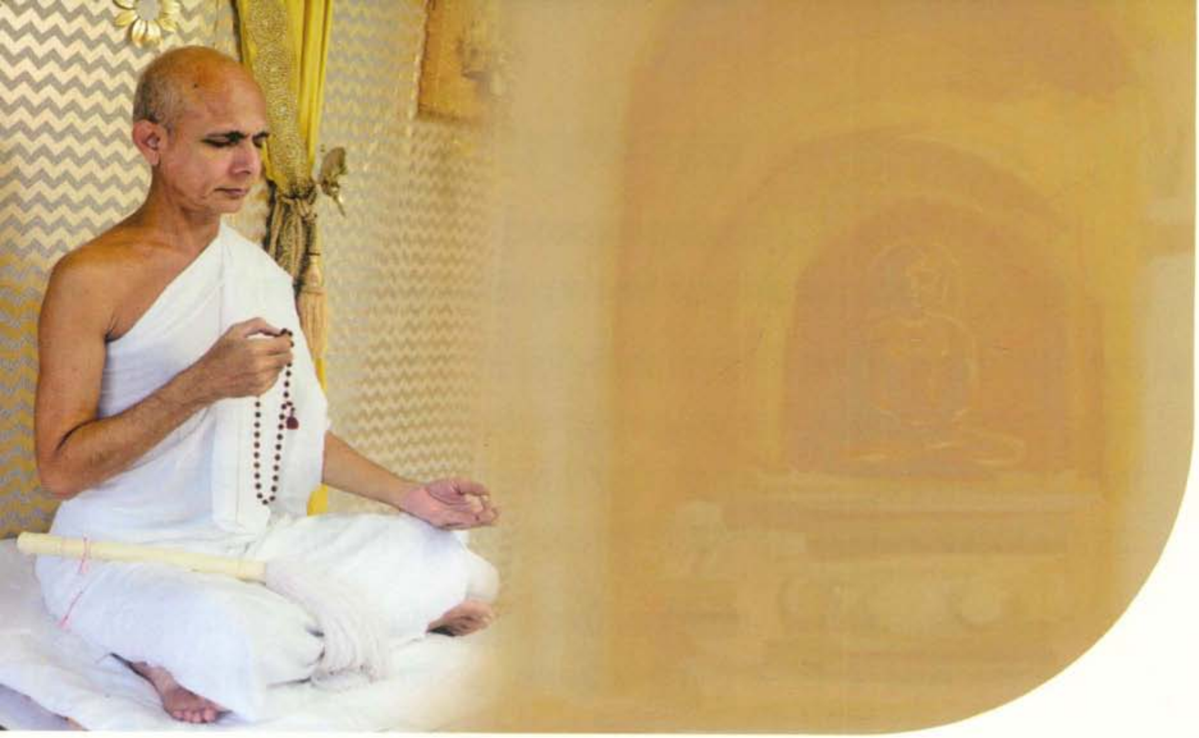

जातान्यनशनान्यस्य, षोडशान्यविबाधया ।
प्रत्याख्यानं प्रजग्राह, त्रिंशद्भक्तस्य सोऽथ रे ! ॥५॥

मृत्युञ्जयतपोमध्ये, स व्यधाज्जापमुत्तमम् ।
विनाऽवलम्बनं भित्तेः, विना लोचनचापलम् ॥६॥

आरभ्य च नमस्कारमन्त्रेण सुप्रभाविणा ।
ततः श्रीनमिऊणाऽऽह्वस्तोत्रं कल्याणकेतनम् ॥७॥

उवसग्गहरस्तोत्रं, ततो महाप्रभावकम् ।
नमिऊणनमस्कारसुमन्त्रके ततः पुनः ॥८॥

मन्त्राणां सम्पुटेनैवं, जापं व्यधात्तपोधनः ।
देवगुर्वोः प्रसादेन तप एवं समापयत् ॥९॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

तपःपरिसमाप्तौ स, भावयामास मानसे ।
''तपसि चित्तनैर्मल्यमहोऽनुभूतमीदृशम् ॥१०॥

- अरे ! १६ उपवास बिना तकलीफ के पूर्ण हुए और उन्होंने १४ उपवास के पच्चक्खाण लिए...५
- मासक्षमण तप में उन्होंने बिना दीवार के सहारे एवं आंख की चपलता के बिना उत्तम ऐसा जाप किया...६
- प्रभावशाली नवकारमंत्र से शुरुआत की, उसके बाद कल्याण के आवास समान नमिऊणस्तोत्र, उसके बाद महाप्रभावक उवसग्गहरं स्तोत्र, उसके बाद पुनः मंगलकारी नमिऊणस्तोत्र और नमस्कार मन्त्र इस प्रकार मन्त्रों के संपुट से तप है धन जिनका ऐसे उन्होंने (पंन्यासजी ने) देव-गुरुकृपा से वह मासक्षमण तप पूरा किया...७-८-९
- तप की समाप्ति के बाद उन्होंने मन में सोचा,''अहो ! तप में कितनी सुंदर चित्त की अत्यधिक निर्मलता का मुझे अनुभव हुआ...१०

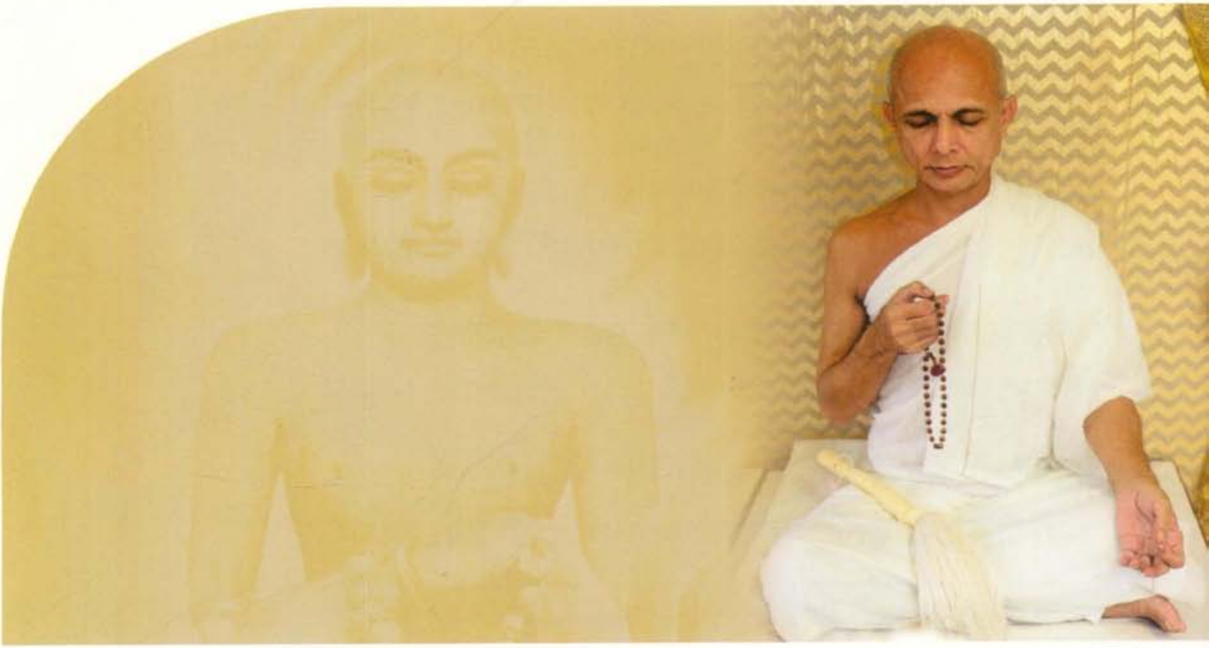

अतोऽग्रेऽपि करिष्यामि, तपोऽहं कर्मतापनम् ।
येन देहाऽऽत्मनोर्भेदभावो ह्यनुभविष्यते ॥११॥

चिन्त्यो देहाऽऽत्मनोर्भेदो भेदाभेदविवेदिभिः ।
येन स्याद् भवनिर्वेदस्ततोऽवेदत्वमक्षयम् ॥१२॥

यथा हि-
देह आत्माऽविनाभावीति मतस्तत्त्ववेदिनाम् ।
आत्मा देहाऽविनाभावीति मतो मन्दमेधसाम् ॥१३॥

क्वचिद्देहे भवेदात्मा भवभ्रमणसन्ततौ ।
किन्तु देहस्तदेवाऽऽत्मा, सा मतिर्मूढतेरिता ॥१४॥

शरीराऽऽत्मक एवाऽऽत्मा, येन मूढेन कल्पितः ।
तेनाऽऽत्मप्रत्यनीकेन, स्वात्मैव हा ! प्रतारितः ॥१५॥

देहव्यापी भवेदात्मा, न तादात्म्यं[1] भजेत्परम् ।
अयोगोलकसंव्यापी, वह्निर्नाऽयस्त्वमञ्चति ॥१६॥

---

१. अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ॥ २.१.९ ॥ सूत्रकृताङ्गसूत्रम् ॥

- इसलिए आगे भी मैं कर्म को तपानेवाला तप करूंगा जिससे मेरे द्वारा देह और आत्मा के बीच की भिन्नता का अनुभव किया जा सके...११

- भेद-अभेद को जाननेवाले लोगों द्वारा देह और आत्मा के भेद का विचार किया जाना चाहिए, जिससे भव का निर्वेद हो और उसके बाद कभी भी क्षय न हो सके ऐसी अवेदीदशा प्राप्त हो...१२

- जैसे कि- देह आत्मा के बिना नहीं होती-ऐसा तत्त्वज्ञ लोगों का मत है जबकि आत्मा देह के बिना नहीं होती ऐसा मंद बुद्धिवालों का मत है...१३

- भव-भ्रमण की परंपरा में कभी देह में आत्मा हो सकती है परन्तु, ''देह ही आत्मा है'' यह मूढता से प्रेरित मति है...१४

- जिस मूढ के द्वारा शरीर ही आत्मा है, ऐसा विचार किया गया है, उस आत्मा आत्मा के दुश्मन द्वारा अरे ! खुद की आत्मा ही ठगी गयी हैं...१५

- आत्मा देहव्यापी हो सकती है परन्तु तदनुरुप नहीं बन जाती, क्योंकि- लोहे के गोले में व्याप्त अग्नि लोहा नहीं बन जाता...१६

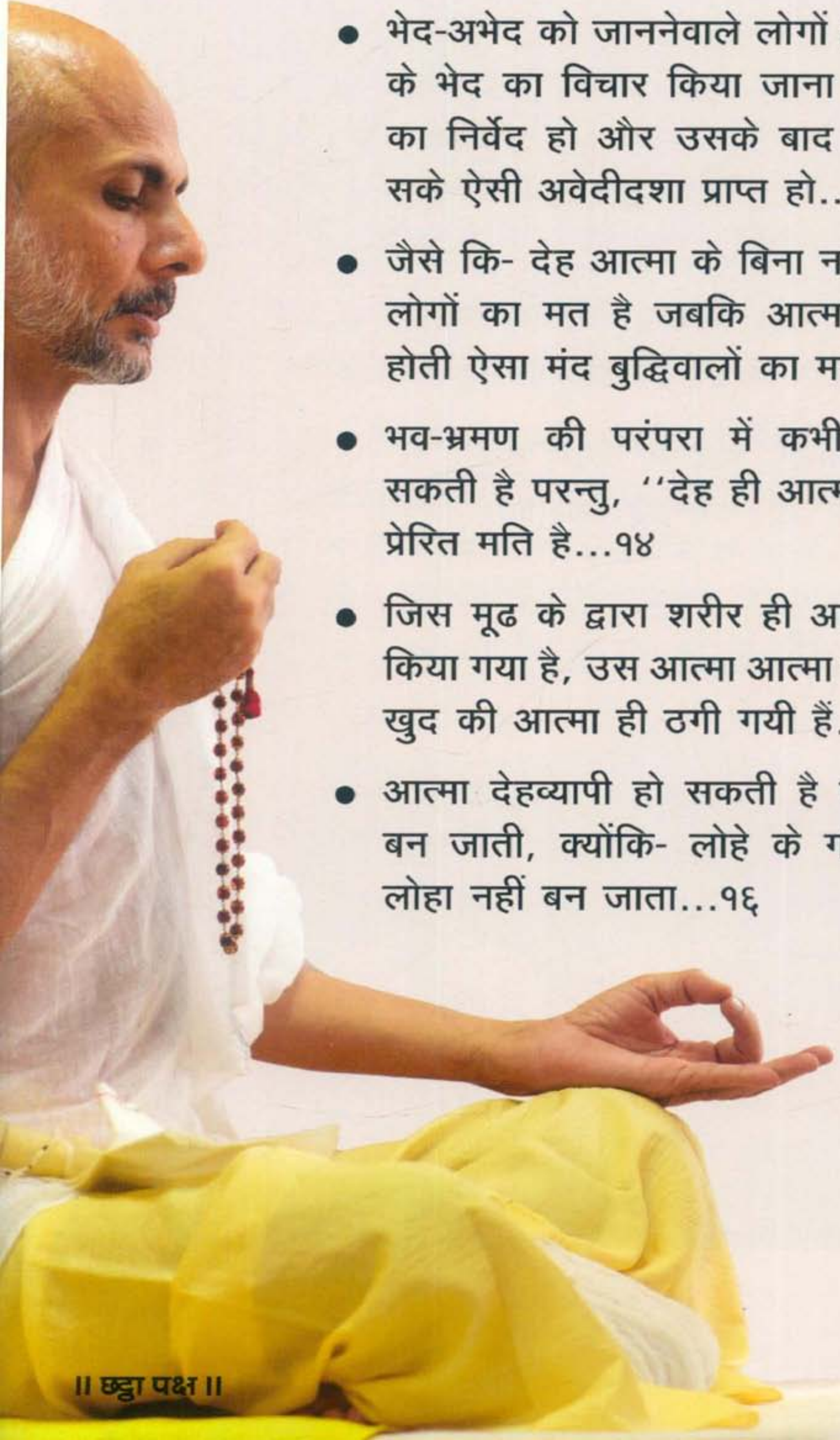

शरीरेण सहाऽनादेः, सम्बन्धोऽस्ति वपुष्मताम् ।
अतस्तद्भिन्नमात्मत्वं, ज्ञायते नहि तैरहो ! ॥१७॥

यावन्न ज्ञायते भेदस्तावत्ते ह्यविवेकिनः ।
शरीरमेव मन्यन्ते, सर्वसुखप्रसाधनम् ॥१८॥

यथा हि-
विना देहं कुतः स्पर्शो, मृदुतल्पस्य शर्मदः ? ।
कुतश्च मिष्टभोज्यानां, सुखाऽऽस्वादोऽतिदुर्लभः ? ॥१९॥

कुतः कुसुमगन्धाऽऽप्तिराघ्रातमात्रसौख्यदा ? ।
कुतश्च नयनाऽऽनन्दप्रदं चित्रविलोकनम् ? ॥२०॥

कुतः श्रवणपीयूषं, वाद्यानां श्रवणं मधु ? ।
अतः शरीरमेवेष्टं, सर्वसुखैककारणम् ॥२१॥

एवं हि विग्रहादन्यद्, न किञ्चित्सुखकारणम् ।
इति दुर्भेद्यदुर्बुद्धिर्मूढानां बत जायते ॥२२॥

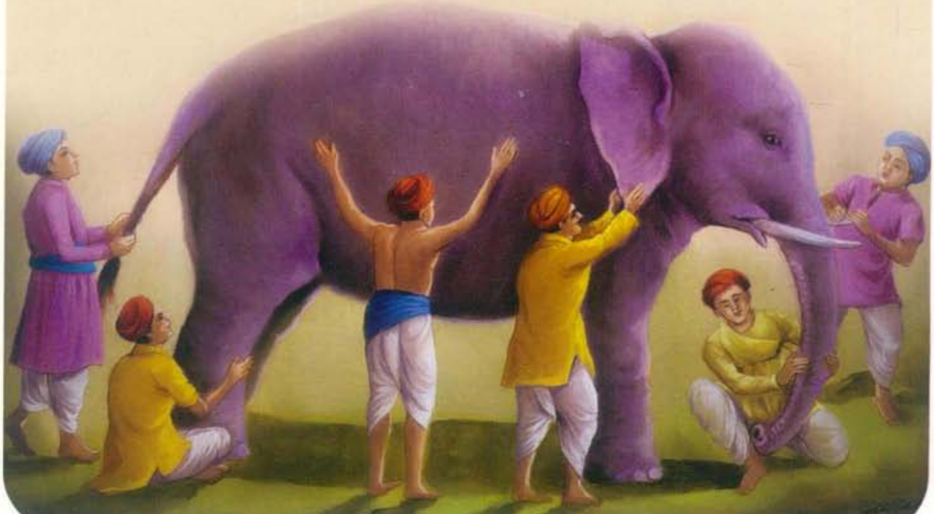

- शरीर के साथ जीवों का संबंध अनादिकाल का है जिससे शरीर से आत्मा भिन्न है, ऐसा प्रतीत नहीं होता...१७
- जब तक (शरीर और आत्मा का) भेद ज्ञात नहीं होता तब तक वे अविवेकी लोग शरीर को ही तमाम सुख का साधन मानते हैं...१८
- जैसे कि- यदि देह ही न हो तो मुलायम पलंग के सुख को देनेवाला स्पर्श कहां से होगा ? और (देह बिना) मीठाइयों का अतिदुर्लभ सुखकारी आस्वाद कहां से होगा ?...१९
- सुंघने पर ही सुख देनेवाले पुष्प की सुगंध की प्राप्ति कहां से होगी ? और आंख को आनंद देनेवाला चित्र का दर्शन कहां से संभव होगा ?...२०
- कान के लिए अमृत समान वांजित्रों का मधुर श्रवण कहां से होगा ? इसलिए शरीर ही इष्ट है और सुखों का एक मात्र कारण है...२१
- इस प्रकार ''शरीर के अलावा और कुछ भी सुख का कारण नहीं'' कठिनाई से दूर की जा सके ऐसी दुर्बुद्धि मूढ लोगों को उत्पन्न होती है...२२

नाऽऽस्वादिता यतो, जीवैरन्तरङ्गप्रमुत्सुधा ।
ततो विषयजम्बाले, रम्यते शिशुवद्धि तैः ॥२३॥

देहाऽऽत्माद्यविवेकोऽयं, सुलभोऽतो भवे भवे ।
अनास्वादितमिष्टान्न-कदन्नासक्तरङ्कवत् ॥२४॥

किन्तु विज्ञातसत्तत्त्वा, आत्मसुखप्रवेदिनः ।
भवकोट्याऽपि दुर्गम्यं, तयोर्भेदं विदन्ति ते ॥२५॥

विवेकिभिस्तयोरुक्तं, भिन्नत्वं सत्यमेव तत् ।
विविच्येते विवेकेन, भेदाभेदौ यतः स्फुटम् ॥२६॥

देशकालादिसापेक्षं, विषयजनितं सुखम् ।
[२]दुःखैककारणं भूयाद्, यथा फलं शलाटुकम् ॥२७॥

यदि देहो हि सौख्यस्य, कारणं तर्हि किं शवे ।
दृष्टः प्रक्षिप्तमालाभिरानन्दस्पदनोद्भवः ? ॥२८॥

---

२. सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥ ६.१२ ॥ उत्तराध्ययनसूत्रम् ॥

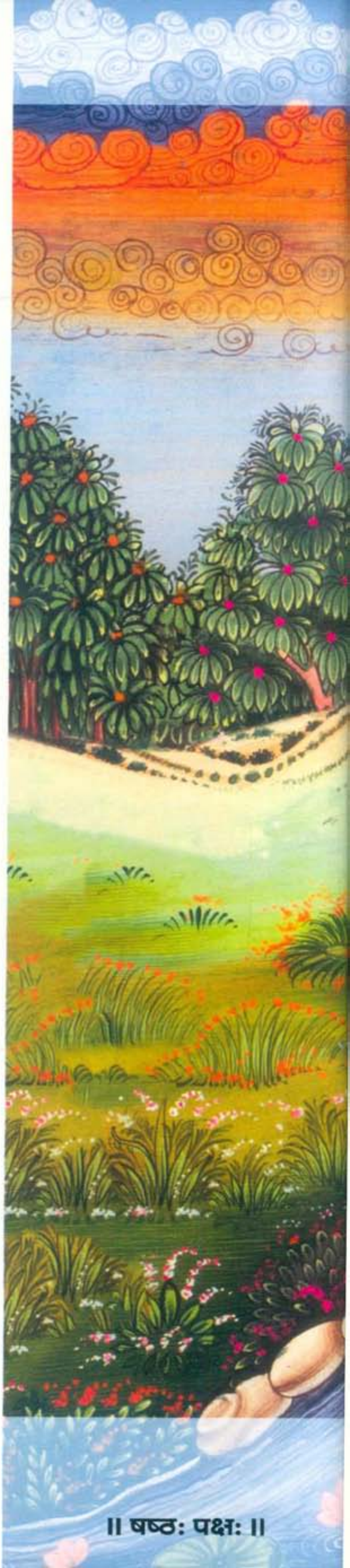

- चूंकि जीवों के द्वारा आभ्यंतर आनंद का अमृत नहीं चखा गया है, इसलिए विषयरूपी कीचड़ में वे बालकों की तरह खेलते हैं...२३
- अतः ''देह ही आत्मा है'' इस प्रकार का अविवेक जिसने मिठाई नहीं चखी ऐसे कदन्न में आसक्त दरिद्र को जनम-जनम तक सुलभ है...२४
- परंतु जिसने सत्तत्वों को जान लिया है और आत्मा के सुख की अनुभूति कर ली है वे क्रोडों जन्मों के बाद मुश्किल से जाना जा सके ऐसे उन दोनों के (देह और आत्मा के) भेद को जान लेता है...२५
- विवेकी वर्ग के द्वारा उन दोनों का (देह और आत्मा का) जो भेद कहा गया है वह सत्य ही है, क्योंकि विवेक से ही निश्चित रूप से भेद और अभेद अलग किये जा सकते हैं (अर्थात् स्पष्ट रुप से समझ में आते हैं)...२६
- विषयजनित सुख का कारण देश-काल को सापेक्ष है इसलिए वह कच्चे फल की तरह दुःखमात्र का ही कारण बनता है...२७
- यदि देह ही सुख का कारण है तो क्या माला चढाओ तब शव में आनंद के स्पंदन पैदा होते दिखाई देते हैं ?...२८

सुखदुःखानुभूत्यर्थं, नाऽलं वपुर्विनाऽऽत्मना ।
अन्यथा मृतकेऽपि स्युः, सुख-दुःखानुभूतयः ॥२९॥

अनन्तज्ञानवानात्मा, देहः पुद्गलसञ्चयः ।
चिच्छश्वच्छश्वदात्मा च, नश्वरौ[3] तनुपुद्गलौ ॥३०॥

आत्मैव यदि देहोऽस्ति, क्व विज्ञानादयो गुणाः ? ।
अथवा देह एवाऽऽत्मा, क्व च नश्वरतादयः ? ॥३१॥

[4]ततस्तयोर्मिथो भेदः परिस्फुटो मनीषिणे ।
मिथो विरुद्धधर्माणामेको धर्मी न लभ्यते ॥३२॥

परापेक्षं पराधीनं, परत्र नानुगामि यत् ।
पर्यन्ते दुःखदं हन्त !, तदवर्णं तनोः सुखम् ॥३३॥

स्वाधीनं स्वस्वभावोत्थं, सर्वत्र स्वानुगामि यत् ।
स्वन्ते च स्वहिताय स्यात्, सुखं तदात्मनः परम् ॥३४॥

---

३. इमं सरीरं अणिच्चं ॥ १९/१२ ॥ उत्तराध्ययनसूत्रम् ॥
४. नाहं देहो, न मे देहः - अष्टावक्रगीता ।

- सुख-दुःख की अनुभूति के लिए आत्मा के बिना शरीर समर्थ नहीं हैं, वरना मृतक में भी सुख-दुःख की अनुभूतियां होती...२९

- आत्मा अनंतज्ञानयुक्त है, देह पुद्गल का संचय है। ज्ञान और आत्मा शाश्वत हैं जबकि शरीर और पुद्गल नश्वर हैं...३०

- यदि आत्मा ही देह है तो (देह में) विज्ञान आदि गुण कहां है ? और यदि देह ही आत्मा है तो (आत्मा में) नश्वरतादि कहां हैं ?...३१

- अतः उन दोनों का (देह-आत्मा का) भेद विद्वानों को स्पष्ट है। परस्पर विरुद्ध धर्मों का एक धर्मी नहीं मिलता...३२

- जो परापेक्ष हो, पराधीन हो, भवांतर अनुगामी न हो और अंततः दुःख देनेवाला हो, हाय ! शरीर का वह सुख मलिन है...३३

- जो स्वाधीन हो, स्वयं के स्वभाव से उत्पन्न हुआ हो, सर्वत्र स्वयं का अनुसरण करता हो और अंततः आत्महित के लिए होता हो वह आत्मा का सुख श्रेष्ठ है...३४

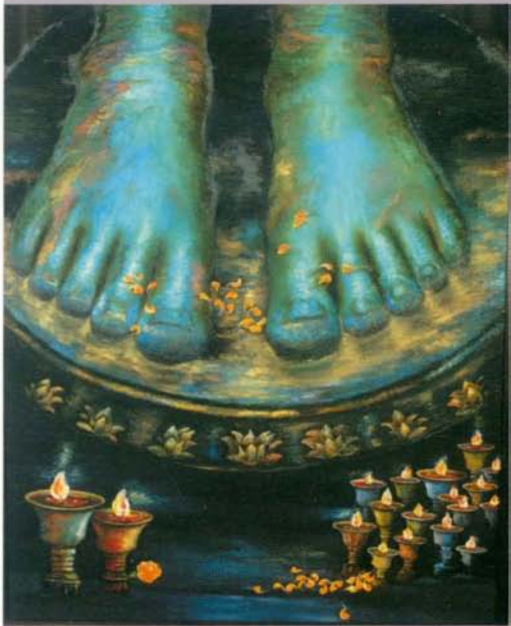

यद्येष मलिनो देहो, विण्मूत्रमलसङ्कुलः ।
किं शोभा तस्य शृङ्गारैरङ्गारस्य यथा सुमैः ॥३५॥

परमात्मस्वरूपो हि, यद्यात्मा तर्हि किं वृथा ।
परमात्मत्वप्राप्त्यर्थमायासो न विधीयते ? ॥३६॥

प्रतिकालं गलत्येष, देह आयुःपरिक्षयात् ।
तत्र कथं धृतिः कार्या, पोते छिद्रशताऽऽकुले ? ॥३७॥

लभेताऽऽनन्तज्ञानादीनात्मा कर्मपरिक्षयात् ।
कथं तत्राऽधृतिः कार्या, पोत इव पयोनिधौ ? ॥३८॥

देहसुखमनूचानैः, सहोपचरितं मतम् ।
आत्मसुखं च तैरेव, निरुपचरितं मतम् ॥३९॥

एवं हि चिन्तयित्वाऽऽत्मदेहयोर्भिन्नतां पराम् ।
अग्रे प्रवर्तयामास, तपोयात्रां तपोधनः ॥४०॥

- यदि यह देह विष्टा-मूत्र-मल का आवास है, मलिन है, तो शृंगारों के द्वारा उसकी शोभा से क्या ? जैसे कि पुष्पों द्वारा अंगारों की शोभा से क्या ?...३५
- यदि आत्मा परमात्मास्वरूप ही है तो व्यर्थ (अन्य प्रयत्न किये बिना) परमात्मतत्त्व को पाने के लिए प्रयास क्यों नहीं करते ?...३६
- यह शरीर आयुष्य के क्षय से प्रतिसमय गलता जा रहा है तो सैंकडो छिद्रवाले जहाज जैसे उसके प्रति स्थैर्य (विश्वास) कैसे किया जा सकता है ?...३७

- आत्मा कर्म के क्षय से अनंतज्ञानादि को प्राप्त करती है तो फिर उसमें अस्थिरता क्यों करनी चाहिए ? जैसे कि समुद्र में जहाज के विषय में...३८
- देह का सुख विद्वानों द्वारा सोपचरित माना गया है और उन्हीं के द्वारा आत्मा का सुख निरुपचरित माना गया है...३९
- इस प्रकार श्रेष्ठ देह-आत्मा की भिन्नता का विचार करके उस तपस्वी ने तप की यात्रा को आगे बढाया...४०

मृत्युञ्जयतपःसत्कं, पारणकं विधाय सः ।
तप आरब्धवानेकत्रिंशदुपोषिताऽऽत्मकम् ॥४१॥

नदीसाधुकुलीशास्तु, पाषाणकष्टभूधरैः ।
अवरोद्धुं न शक्यन्ते, मध्येमार्गं प्ररंहसः ॥४२॥

सोऽप्यनिरुन्ध्यगत्यैव, तपोमार्गे पुरोगतः ।
देवगुर्वोः प्रसादेन, तपस्तच्च समापयत् ॥४३॥

द्वात्रिंशदुपवासानामारब्धवांस्तपस्ततः ।
प्रवर्धमानवेगानामनिरुन्ध्या गतिः किल ॥४४॥

समाप्य तत्तपः कृत्वा, पारणकं पुनस्ततः ।
समारेभे तपो नूत्नं, त्रित्रिंशदुपवासकम् ॥४५॥

एवं पुनः पुनः कृत्वा, तपांस्यभिनवानि सः ।
सुविशिष्टं तपः कर्तुमविमृशद्दृषीश्वरः ॥४६॥

- मासक्षमण का पारणा करके (कुछ दिनों बाद) उन्होंने ३१ उपवास का तप शरु किया...४१

- प्रकृष्ट गतिवाले होने पर नदी को पाषाण से, साधु को कष्ट से और वज्र को पर्वत से बीच में रोका नहीं जा सकता...४२

- रोकी न जा शके ऐसी गति से तप के मार्ग पर आगे बढे हुए उन्होंने भी वह तप पूरा करके बाद में फिर नया तप शुरू किया...४३

- उन्होंने ३२ उपवास का तप शुरु किया, जिसका वेग बढ रहा हो उसकी गति वास्तव में रोकी न जा शके ऐसी होती है...४४

- वह तप पूरा करके, उसके बाद पारणा करके फिर ३३ उपवास का नया तप शुरू किया...४५

- इस प्रकार बार बार नये तप करके उस ऋषीश्वर ने एक विशिष्टतर तप करने का विचार किया...४६

(मुम्बापुरीवर्णनम्)

शुभरङ्गमण्डपगताऽऽर्हतगी-
रुपसर्पति प्रतिदिशामनिशम् ।
कुसुमानि गुञ्जनमलेरिति ता-
मनुमन्य यत्र जहति स्वरजः ॥४७॥ प्रमिताक्षरा ॥

वरधूपचन्दनलतान्तकुलैः,
कुकुभोऽखिलाः सुरभिसारमयाः ।
करतालवाद्यजनितं विरुतं,
द्युसदामसूनि हरते मधुरम् ॥४८॥ प्रमिताक्षरा ॥

सितचामरद्वयसमुत्थविभा-
हृतदुष्टरिष्टतिमिरप्रसरम् ।
जिनमन्दिरं तदिदमुच्चशिखं,
प्रभुगोडिपार्श्वजिनपस्य शुभम् ॥४९॥ प्रमिताक्षरा ॥

प्रविभाति मुक्तिनिलयप्रतिभं,
बत मोतिशाहवरश्रेष्ठिकृतम् ।
ऋषभस्य मन्दिरमपि प्रवरं,
स्तवगीतिभिश्च मुखरं सततम् ॥५०॥ प्रमिताक्षरा ॥

अपरे चकासति जिनाऽऽवसथा,
विविधा मनोरमकलाऽऽकृतयः ।
सततं च भक्तजनसन्निभृताः,
प्रशमानुभूतिरसयोनिसमाः ॥५१॥ प्रतिमाक्षरा ॥

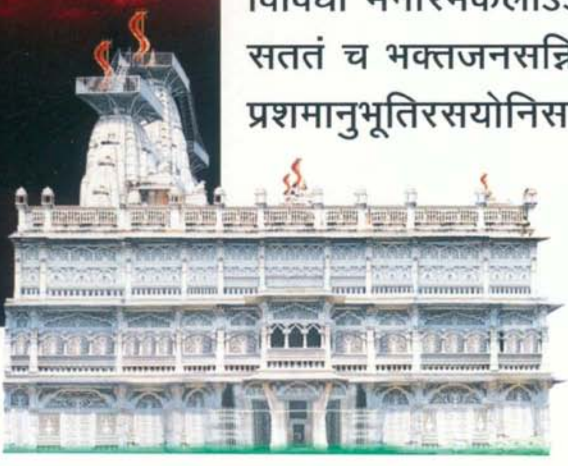

(मुंबई नगर का वर्णन)

- जहां शुभरंगमंडप में स्थित जिनभक्तों की वाणी प्रत्येक दिशा में निरंतर फैलती है और पुष्प उस वाणी का ''यह भौंरो का गुंजन हैं'' इस प्रकार अनुमान करके अपनी पराग छोडते हैं...४७

- सुंदर धूप-चंदन-फूलों के समूह से चारों ओर से समस्त दिशाएं जहां सुगंधित हैं और हाथ की ताली और वाजिंत्र से उत्पन्न होने वाला मधुर स्वर देवों के मन को भी चुरा लेता है...४८

- दो श्वेत चामरों से उत्पन्न हुआ प्रकाश जहां दुष्ट पाप के अंधकार के समूह को हर लेता है वह उच्च शिखरवाला गोडीजी पार्श्वनाथ प्रभु का शुभ जिनालय है...४९

- जहां श्रेष्ठ ऐसे मोतिशाह सेठ द्वारा निर्मित शत्रुंजय जैसा श्रेष्ठ ऋषभदेव प्रभु का मंदिर भी शोभा दे रहा है जो स्तवन और गीतों से निरंतर मुखर होता है...५०

- अन्य भी विविध मनोरम्य आकृतिवाले जिनालय सुंदर लग रहे हैं जो भक्तजनों से भरे हुए हैं और उपशम की अनुभूति स्वरुप रस को उत्पन्न करनेवाली योनि के समान हैं...५१

सदुपाश्रया मुनिवरैः खचिता,
विरतेः कृते समनुकूलतराः ।
शुचिपुण्यबीजवपनोचितभू-
सदृशाः सुधर्मनृपराज्यनिभाः ॥५२॥ प्रतिमाक्षरा ॥

नहि भुज्यते सुविरताविरतै-
स्तिथिपञ्चके हरितशाकफलम् ।
क्रियते च पौषधव्रतं समता-
वनितास्वयंवरनिवेशपथम् ॥५३॥ प्रतिमाक्षरा ॥

भवतीह पर्युषणपर्व महद्,
महतोर्जितेन तपसा च समम् ।
वरकल्पसूत्रश्रवणं सुगुरो-
र्वदनात्प्रतिक्रमणसद्विधिभिः ॥५४॥ प्रतिमाक्षरा ॥

एवं यत्र, प्रवचनमिदं, शोभते मोक्षदायि,
दीक्षां लान्ति, विरतिरसिका, यत्र निर्वेदभाजः ।
श्राद्धश्राद्धा, जिनमतविदः, साधनायां पुरोगा,
मुम्बापूः सा, यशस इव पूर्भ्राजते विस्तृतश्रीः ॥५५॥ मन्दाक्रान्ता ॥

तत्र विहरमाणः स, महातपो विधित्सया ।
ददर्श जिनचैत्यानि, ववन्दे गुरुपत्कजम् ॥५६॥

तत आहारसञ्ज्ञाघ्नमनाहारित्वसौख्यदम् ।
प्रमादसर्पदक्षाय्यं, सर्वलब्धिप्रदायकम् ॥५७॥

• उपाश्रय जहां मुनिवरों से भरे हुए हैं, विरति के लिए अनुकूल हैं, जो शुद्ध पुण्य के बीज को आरोपित करने के लिए उचितभूमि के समान हैं और धर्मराजा के राज्य जैसे हैं...५२

• जहां पांच तिथियों में श्रावकों के द्वारा हरी सब्जी और फल ग्रहण नहीं किये जाते और समतारूपी स्त्री के स्वयंवर का प्रवेशमार्ग हो ऐसा पौषधव्रत किया जाता है...५३

• यहां महान पर्युषणपर्व बडे उत्साह और तप के साथ मनाया जाता है और प्रतिक्रमण आदि विधियां करने के साथ सद्‌गुरुदेव के मुख से कल्पसूत्र का श्रवण भी होता है...५४

• इस प्रकार मोक्षदायी शासन जहां शोभा दे रहा है, जहां निर्वेद प्राप्त करनेवाले विरतिरसिक जीव दीक्षा लेते हैं, जहां जिनमत को जानने वाले श्रावक और श्राविकाएं साधना में अग्रसर होते हैं, मानो यश की दूसरी नगरी हो ऐसी विस्तृत लक्ष्मीवाली मुंबई नगरी शोभा दे रही है..५५

• वहां विहार करते हुए (पंन्यासजी ने) महातप करने की इच्छा से जिनमंदिरों के दर्शन किए और गुरुचरणकमल मे वंदन किए...५६

• तत्पश्चात् आहारसंज्ञा को नष्ट करनेवाले, अनाहारित्व के सुख को देनेवाले, प्रमादरूपी सर्प के लिए गरुड़ और सर्वलब्धि को देनेवाले...५७

विशुद्ध्यदात्मपिञ्जालं, बन्धित्रबन्धमोचकम् ।
विश्वप्रथितमाहात्म्यं, व्यामोहजतुकादिनम् ॥५८॥

अर्हद्धर्मखने रत्नं, निर्विकारदशाप्रदम् ।
निकाचितानि कर्माणि, नाशयदेकहेलया ॥५९॥

महासत्त्वैकसंसाध्यं, ध्यानसौकर्यकारणम् ।
श्रीनिःश्रेयससोपानं, शीलदीपघृतोपमम् ॥६०॥

स महातप आरेभ, एवंविधमनुत्तमम् ।
मुम्बानाममहापुर्यां, मुहूर्तेऽह्नि च मङ्गले ॥६१॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

षोडशोपोषितानां स, प्रत्याख्यानं समाददे ।
ततस्तस्य तपोयात्रां, सर्गेऽग्रिमे पिपठ्चताम् ॥६२॥

सुपारावारीणाः !, शृणुत कविताऽऽस्वादरसिकाः !
शरीराऽऽत्माऽभेदभ्रमनिरसनं दर्शितमिह ।
तपोयात्राऽऽरम्भः, सुगुरुवरहंसस्य च वरः,
स जीयात्सर्गोऽयं, प्रतिपदमनल्पाऽऽत्मसुखदः ॥६३॥ शिखरिणी ॥

॥ इति षष्ठः पक्ष समाप्तः ॥

- आत्मरूपी सुवर्ण को शुद्ध करनेवाले, कामदेव के बंधन से मुक्त करनेवाले, विश्व में फैली हुई है महिमा जिसकी ऐसे, व्यामोहरूपी चमगादड के लिए दिन समान...५८

- अरिहंत के धर्मरूपी खदान के रत्न, निर्विकारदशा देनेवाले, निकाचित कर्मों को एक झटके से नष्ट करनेवाले...५९

- महासत्त्व से ही अथवा महासत्त्व ऐसे जीवों से ही साधा जा सके ऐसे, ध्यान की अनुकूलता का कारण, मोक्ष के लिए सोपान के समान और शीलरूपी दीपक के लिए घी समान...६०

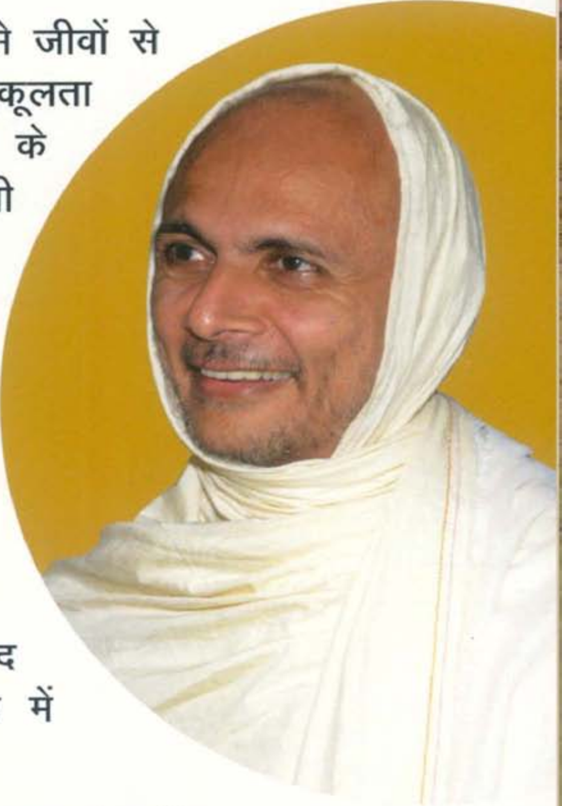

- इस प्रकार सर्वोत्तम ऐसे महातप को मुंबई नाम की महानगरी में मंगल मुहूर्त और मंगल दिन पर उन्होंने (पंन्यास हंसरत्नविजयजी ने) शरु किया...६१ (पांच श्लोकों का समूह)

- (प्रारंभ से) उन्होंने १६ उपवास के पच्चक्खाण लिए और उसके बाद की उनकी तप यात्रा आनेवाले पक्ष में पढिए...६२

- हे कविता के आस्वाद के रसिक विद्वान् ! शरीर और आत्मा के अभेदरूप भ्रम का निराकरण और गुरुवर हंसरत्नविजयजी की सुंदर तपयात्रा का आरंभ आदि जिसमें दिखाया गया है ऐसे कदम-कदम पर अतिशय आत्मसुख देनेवाले इस पक्ष की जय हो...६३

॥ छट्ठा पक्ष समाप्त ॥

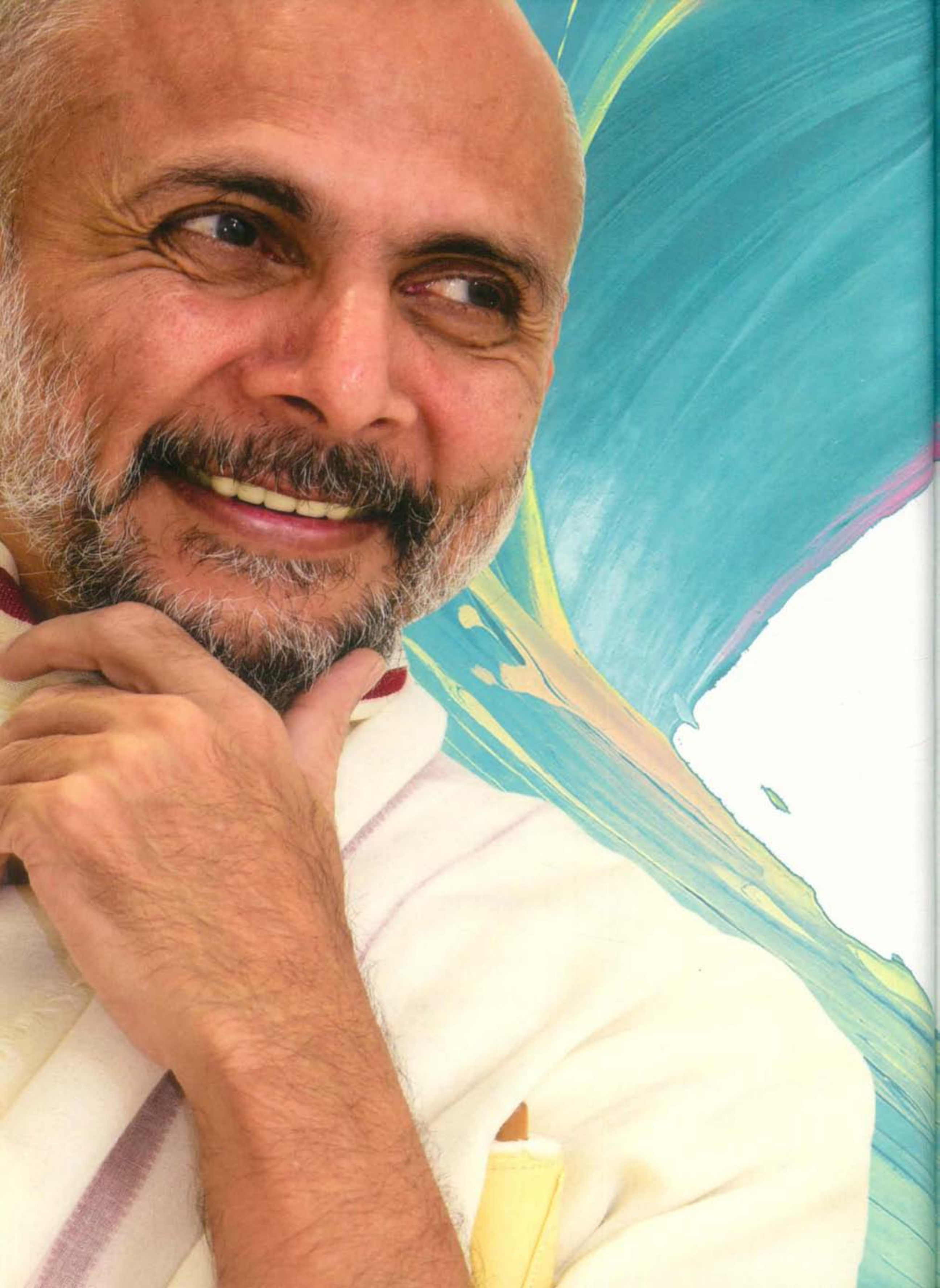

कल्पनाचित्रम्

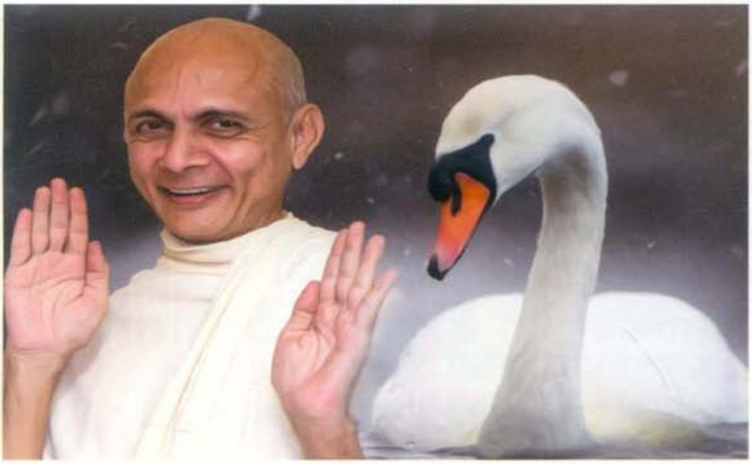

नीरक्षीरासारसारप्रभागे, मुक्तात्यागाऽऽहारभुक्तौ तथा च ।
भेदः स्पष्टं ह्येतयोर्ज्ञायते यदेको हंसो हंसरत्नस्तथाऽन्यः ।।शालिनी।।

- क्षीर-नीर के विभागीकरण में और सार-असार के विभागीकरण में, मोती का आहार करने में और त्याग का आहार करने में- इन दोनों के बीच भेद स्पष्ट दिख रहा है कि एक हंस है और दूसरे आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी हैं ।
- यहां चित्र के अनुरूप कल्पना करके काव्य बनाया गया है ।

।। सप्तमः पक्षः ।।

(अशीत्युत्तरशतोपवासरूपमहातपसो विधानं, तन्महश्च)

येनाऽऽन्दोलित इन्द्रविष्टर इषः, सज्जन्मकल्याणके,
स्वाङ्गुष्ठेन सुमेरुपर्वत उरुः, स्नात्रप्रसङ्गे तथा ।
दीक्षाया अनु मोहराजविषयः, स्तुत्वा तमन्त्येश्वरं,
पक्षं सप्तममाप्तमान्यमधुनाऽहं संसृजामीष्टदम् ।।१।।
शार्दूलविक्रीडितम् ।।

महातपसि विष्टः सोऽसहत कष्टसञ्चयम् ।
साध्यते श्रेयसः पन्थाः, कष्टानां सहनेन हि ।।२।।

कष्टानि सहमानोऽपि, नाऽऽराधनाममुञ्चत ।
काञ्चनमग्निसंविष्टं, काञ्चनत्वं न मुञ्चति ।।३।।

स्वकार्याण्यददान्नान्यानस्मिन् महातपस्यपि ।
अहह ! स्वावलम्बित्वमहो ! सत्त्वमहो ! धृतिः ।।४।।

षोडशोपोषितानां स, प्रत्याख्यानं पुनः पुनः ।
अग्रहीत्सत्त्वसन्मूर्तिः, स्फूर्तिमानप्रमादवान् ।।५।।

सम्यगक्षोटप्रक्षोटद्वाराऽसौ प्रतिलेखनम् ।
अकरोत्स्वोपधीनां तु, स्वयमेव तपोनिधिः ।।६।।

॥ सातवां पक्ष ॥

(१८० उपवास की महातपस्या का पारणा और उसका महोत्सव)

- जिनके द्वारा जन्मकल्याणक के अवसर पर बलवान इन्द्र का सिंहासन हिलाया गया, स्नात्र प्रसंग पर बड़ा ऐसा मेरुपर्वत अपने अंगूठे से हिलाया गया और दीक्षा के बाद मोह का राज्य हिलाया गया उन चरम जिनेश्वर की स्तवना करके आप्तजनों को मान्य, इष्ट वस्तु को देनेवाले सातवे पक्ष की रचना करता हूं...१
- महातप मैं प्रवेश करनेवाले उन्होंने कष्टों का समुह सहन किया, कल्याण का मार्ग वास्तव में कष्टों को सहन करने से साधा जाता है...२
- कष्टों को सहनेवाले ऐसे उन्होंने आराधना नहीं छोडी, अग्नि में प्रवेश करनेवाला सोना अपने सुवर्णत्व को नहीं छोड़ता...३
- इस महातप में भी उन्होंने दूसरों को अपने काम नहीं सौंपे, अहो ! इनकी स्वावलंबिता, सत्त्व और धैर्य कैसे अद्‌भुत हैं ?...४
- सत्त्व की मानो मूर्ति हो ऐसे स्फूर्तिवाले, प्रमाद रहित ऐसे उन्होंने बार बार १६ उपवास के पच्च्क्खाण ग्रहण किए...५
- खुद की उपधि का प्रतिलेखन व्यवस्थित अक्खोडे-पक्खोडे के साथ इस तपस्वी ने स्वयं किया...६

क्षमाश्रमणकान्येवं, सन्धिप्रमार्जनैरदात् ।
अस्खलितादिसम्पृक्तसूत्रोच्चारं व्यधात्तथा ॥७॥

पौरुष्यादिक्रियावृन्दं, यथाकालं समाचरत् ।
असम्भ्रमविलम्बाभ्यामावश्यकानि चैष षट् ॥८॥

पञ्चाक्षप्रतिलेखेन, पञ्चाक्षनिग्रहेण च ।
पञ्चाननसमोऽयं तु, पञ्चबाणमहन्नहो ! ॥९॥

पर्याप्तिसु यदन्त्यं यद्, वर्गणासु च सप्तमम् ।
प्राणेषु दशमं तत्तु, सन्निगृहीतवानसौ ॥१०॥ (मनः)

सत्क्रियाभिर्विशुद्धाभिरेवं तपः प्रवर्तयन् ।
नाऽत्यजत्कृशदेहोऽप्यसत्कर्ममल्लविग्रहम् ॥११॥

क्रमाच्छतोपवासान् स, समापयत् क्षमाधरः ।
आश्चर्यचकिता जाता, ज्ञात्वैतदवनिस्पृशः ॥१२॥

- तथा उन्होंने (तपस्वी ने) संधिप्रमार्जनपूर्वक खमासमण दिए और अस्खलितादि (गुणों से) युक्त सूत्रोच्चार किया...७

- पोरिसि आदि क्रियाओं के समूह का इस (तपस्वी) ने समय पर आचरण किया और विलंब के बिना (वे ६) आवश्यकों को करते थे...८

- पांच अक्ष (स्थापनाजी) के प्रतिलेखन से, पांच इन्द्रियों के निग्रह से, शेर जैसे इन्होंने (तपस्वी ने) अहो ! कामदेव को खत्म कर दिया...९

- जो पर्याप्तिओं में आखरी है, वर्गणाओं में सातवे स्थान पर है, (द्रव्य) प्राणों में जो दसवे स्थान पर है उसे (मन को) इन्होंने (तपस्वी ने) नियंत्रित किया है...१०

- इस प्रकार विशुद्ध सत्क्रियाओं के द्वारा तप का प्रवर्तन करते हुए कृश शरीरवाले होने के बावजूद उन्होंने दुष्ट कर्म रूपी मल्ल के साथ लड़ना नहीं छोडा...११

- क्षमा को धारण करनेवाले उन्होंने (तपस्वी ने) क्रमशः १०० उपवासों को समाप्त किया । लोग यह जानकर आश्चर्यचकित हुए...१२

''किमु दिव्यप्रभावोऽयं ? किंवा काचिच्चमत्कृतिः ? ।
यत्तु महातपोऽनेनाऽश्रान्तचित्तेन साध्यते ॥१३॥

किं दिव्यगुटिका भुक्ता ? किं वैषा सुरसन्निधिः ? ।
अथवाऽऽर्हत्कृपाऽमोघकारणमत्र सिद्धिदा'' ॥१४॥

एवं नानाविकल्पानि, प्रव्यजृम्भन्त सद्धृदि ।
तद्दर्शायात आयाता, अनेके गुणदर्शिनः ॥१५॥

चित्ते तपःप्रमाणं तु, तदा तेन विचिन्तितम् ।
यत् खनयात्मसङ्ख्यकान् (१२०), करिष्याम्युपवासकान् ॥१६॥

ततो राजेन्द्रसूरीन्द्रनिश्रायां प्रवरोर्जया ।
[१]तस्य नियोजितो भव्यतपःपारणकोत्सवः ॥१७॥

आगता द्रष्टुकामास्तु, तपस्विनं तपःप्रियाः ।
यत्र रुचिर्गतिस्तत्र, भृङ्गस्योपवने यथा ॥१८॥

समीक्ष्य हंसरत्नं तं, तपोरत्नमहोदधिम् ।
जनाः प्रशंसितुं लग्नाः, प्रोच्चैर्गुणानुरागिणः ॥१९॥

---

१. अथ साधूनामपि योगादितपोऽनुष्ठानपरिसमाप्तावश्यं नन्द्यादिमहोत्सवः कर्तव्य एव । न च किमिदं निर्ग्रन्थानामुत्सवकरणमित्यादिशङ्का कार्या, जिनशासनोन्नतिकरत्वाच्छास्त्रोक्तत्वाच्च । विचाररत्नाकरः (व्यवहारसूत्रविभागे) ।

- क्या यह दिव्यप्रभाव है ? अथवा क्या यह चमत्कार है ? कि ऐसा महान तप भी इनके (तपस्वी के) द्वारा बिना थके किया गया...१३
- क्या उनके द्वारा कोई दिव्यगुटिका खायी गयी है ? अथवा क्या यह देवता का सांनिध्य है ? अथवा अरिहंत की कृपा ही यहां अमोघ कारण है जो सिद्धि देती है ?...१४
- इस प्रकार लोगों के मन में विविध विकल्प उत्पन्न हुए और उनके दर्शन हेतु अनेक गुणदर्शी जीव आए...१५
- तब उनके द्वारा तप का प्रमाण तय किया गया कि ''मैं १२० उपवास करूंगा''...१६
- तत्पश्चात् प्रचंड उत्साह से पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.की निश्रा में उनके तप के पारणे का भव्य महोत्सव किया गया...१७
- जिसे तप प्रिय है ऐसे अनेक भावुक श्रद्धालु तपस्वी को देखने की इच्छा से आये । जहां रूचि होती है वहीं (जीव की) गति होती है, जैसे भौंरे की उपवन की ओर...१८
- तपरत्न के लिए सागर समान उस पंन्यास हंसरत्नविजयजी को देखकर गुणानुरागी लोग अत्यंत प्रशंसा करने लगे...१९

यथा हि-

ग्रस्तो विधुः सौम्यदृशा हि यस्य,
क्षुब्धश्च वार्धिः सदुदारतातः ।
जातं च पङ्केऽब्जमलिप्ततातः,
श्रीहंसरत्नस्तपसान्निधिः सः ॥२०॥ इन्द्रवज्रा ॥

सुधां शमस्यामथितोऽपि दत्ते,
तपस्व्यपि क्षेमरसं प्रभुङ्क्ते ।
अजातशत्रुस्त्वपि कर्मशत्रु-
श्चित्रं खलु हंसगुरोश्चरित्रम् ॥२१॥ उपेन्द्रवज्रा ॥

प्रहेलिकात्रयम्

आद्येन हीनं वनिताप्रियः स्याद्,
मध्येन हीनं वणिजां प्रिया स्यात् ।
अन्त्येन हीनं प्रकृतेः प्रियः स्यात्,
तन्नामकेनैष नतस्तपस्वी ॥२२॥ इन्द्रवज्रा ॥ (भूपतिः)

आद्येन हीनं ग्रहराशिसङ्ख्या,
मध्येन हीनं वननाशकारी ।
अन्त्येन हीनं प्रथमः सुधर्म-
स्तन्नामकेनैष नतस्तपस्वी ॥२३॥ इन्द्रवज्रा ॥ (दानवः)

- जैसे कि -

  जिनकी सौम्य आंख से चन्द्र को भी ग्रहण लगा,
  जिनकी उदारता से समुद्र भी क्षुब्ध हुआ,
  जिनकी अलिप्तता से कमल का भी कीचड में जन्म हुआ,
  वह तप के भंडार पंन्यास श्री हंसरत्नविजयजी हैं...२०

(भावार्थ :- सौम्यता, उदारता और अलिप्तता में चन्द्र, समुद्र और कमल उनसे हार गये इसलिए उनसे ग्रसित होकर, क्षुब्ध होकर और कीचड़ में पैदा होकर उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली)

- जिनका मंथन नहीं हुआ फिर भी वह उपशम का अमृत देते हैं,
  जो तपस्वी होने के बावजूद कल्याण का रस पीते हैं, जिनका
  कोई शत्रु नहीं हैं फिर भी जो कर्म के शुत्र है,
  उस गुरूवर हंसरत्नविजयजी का अहो ! अद्‌भुत चरित्र है...२१

(तीन पहेलियां)

- १. पहला अक्षर निकालो तो वह स्त्री को प्रिय है,
  बीच का अक्षर निकालो तो वह बनिये को प्रिय है,
  अंतिम अक्षर निकालो तो वह प्रजा को प्रिय है,
  ऐसे नाम वाले (भूपति) के द्वारा इस तपस्वी को नमन किया गया
  है...२२ (भूपति)

- २. पहला अक्षर निकालो तो ग्रहों की संख्या मिलती है,
  बीच का अक्षर निकालो तो वह जंगल का नाश करता है,
  अंतिम अक्षर निकालो तो वह प्रथम धर्म है,
  ऐसे नाम वाले (दानव) के द्वारा इस तपस्वी को नमन किया गया
  है...२३ (दानव)

आद्येन हीनं पलिताननः स्याद्,
मध्येन हीनं रथचक्रसंस्थः ।
अन्त्येन हीनं शतपत्रयोनि-
स्तन्नामकेनैष नतस्तपस्वी ॥२४॥ इन्द्रवज्रा ॥ (अजरः)

एवं विभावयन्तस्ते, महमण्डपसंस्थिताः ।
गुरुं प्रवन्दमानं तं, ददृशुर्भक्तिनिर्भराः ॥२५॥

श्रीमद्गुरुवराभ्यर्णे, प्रत्याख्यानजिधृक्षया ।
गत्वा निवेदितं तेन, किञ्चिद् मान्द्येन कर्णयोः ॥२६॥

श्रुत्वा निवेदनं तस्य, गुरुरपि प्रविस्मितः ।
किमेतदिति भावेन, विस्मिता मण्डपस्थिताः ॥२७॥

तदैवोद्घोषणा जाता, यदमुना तपस्विना ।
याचिताऽस्ति तपोवृद्धेरनुज्ञा गुरुसन्मुखम् ॥२८॥

अहो ! महातपा एष, महासत्त्वः पराक्रमी ।
वर्धापितस्तपोद्वारा पारणकमरेऽमुना ॥२९॥

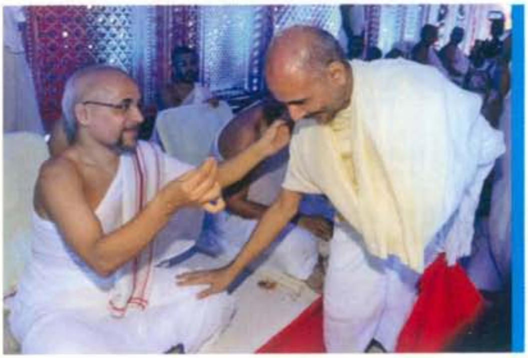

• ३. पहला अक्षर निकालो तो वह उतरे हुए चेहरे वाला है,
बीच का अक्षर निकालो तो वह रथ के पैये में होता है,
अंतिम अक्षर निकालो तो वह कमल से जन्मा हुआ है,
ऐसे नामवाले (अजर=देव) के द्वारा इस तपस्वी को नमन किया गया है...२४ (अजर)

• इस प्रकार भावना भाते हुए, महोत्सव मंडप में स्थित, भक्ति से भरे हुए लोगों ने गुरू (आ.श्री राजेन्द्रसूरि म.सा.)को वंदन करते हुए उन्हें (तपस्वी को) देखा...२५

• (तत्पश्चात्) तपस्वी ने श्रीमद् गुरूदेव (आचार्य विजय राजेन्द्रसूरि म.सा.) के पास जाकर (पच्चक्खाण लेने की इच्छा से) मंदस्वर में कान में कुछ कहा...२६

• उनका (तपस्वी का) निवेदन सूनकर गुरूदेव (आ.वि. राजेन्द्रसूरिजी) भी विस्मित हुए और ''यह क्या हुआ ?'' इस भाव से मंडप में बैठे लोग भी विस्मित हुए...२७

• तब घोषणा हुई कि- इस तपस्वी के द्वारा सिद्धि को देने वाली ऐसी तप-वृद्धि की अनुज्ञा मांगी गयी है...२८

• अहो ! यह महातपस्वी हैं, महासत्त्ववाले हैं, पराक्रमी हैं, पारणे का महोत्सव भी इन्होंने तप से ही मनाया...२९

प्रत्याख्यातिं नमस्कारसहितात्स गृहीतवान् ।
गुरुमुखसरोजेन, षोडशोपोषिताऽऽत्मकम् ॥३०॥

पारणकमतिक्रम्याऽनुवर्त्य तप आत्मनः ।
तेन मनोरथः स्वस्य, तपसः सफलीकृतः ॥३१॥

गुरूणामाशिषं लात्वा, गत्वा प्रतिश्रयं पुनः ।
जपनमौनमुख्या च, साधना ह्यनुवर्तिता ॥३२॥

पद्मबोध्याह्वपन्न्यास इतो ह्यचिन्तयद् हृदि ।
''कलेरेष चमत्कारो, हंसरत्नतपोधनः ॥३३॥

अहो ! तपःप्रभापुञ्जो, न्यक्कृतलालसाप्रभः ।
भववर्त्मनि दुर्गम्ये, सम्प्राप्तपुण्यशम्बलः ॥३४॥

सद्योगेषु न शैथिल्यं, सर्वथाऽप्यप्रमत्तता ।
त्रिभुवनाऽद्भुतो ह्यस्य, महिमाऽहो ! तपस्विनः ॥३५॥

- नवकारशी का पच्चक्खाण लेने के बदले गुरू के मुख से उन्होंने (तपस्वी ने) १६ उपवास के पच्चक्खाण लिए...३०

- पारणे को छोडकर, अपना तप जारी रखकर, उनके (तपस्वी के) द्वारा स्वयं के तप के मनोरथ को सफल किया गया...३१

- गुरू के आशिष पाकर, पुनः उपाश्रय में जाकर, जाप और मौन से युक्त ऐसी साधना उन्होंने (तपस्वी ने) जारी रखी...३२

- इस ओर **पंन्यास पद्मबोधिविजयजी म.सा** ने मन में सोचा- ''यह तपस्वी हंसरत्नविजयजी कलियुग का चमत्कार है...३३

- अहो ! तप की प्रभा के पूंज समान इन्होंने लालसा की प्रभा का तिरस्कार किया है और दुर्गम ऐसे भव के मार्ग पर इन्होंने पुण्य के पाथेय को प्राप्त किया है...३४

- सद्योगों में शिथिलता नहीं है, तमाम आचार अप्रमत्त हैं, अहो ! इस तपस्वी की तीन भुवन में अद्भुत महिमा है...३५

यथाशक्यं करिष्यामि, तपसोऽस्य प्रभावनाम् ।
प्रवचनेन सङ्घेषु, प्रभाऽऽभेनोत्पलाऽऽत्मसु'' ॥३६॥

एवं विमृश्य पन्न्यासपद्मबोधिस्तपस्विना ।
समं यातः प्रभागेषु, मुम्बापुर्याः प्रभावकः ॥३७॥

तपस्तपस्विनः सोऽतो, महिमानमवर्णयत् ।
''अभयप्रतिभूरेष, तपस्वी''ति सुपर्षदि ॥३८॥

अंहोदला निर्दलिता अनेन, विपाटिताः कर्मविभोरनीकाः ।
क्षमाप्रपासत्कजलं प्रपीतं, श्रीहंसरत्नेन तपोविधानात् ॥३९॥ उपजातिः ॥

चम्पाऽऽह्वसत्याऽकबरः प्रबुद्धः,
सद्राज्यधान्यां तपसा तु येन ।
तपस्तदेतद्विहितं ह्यनेन,
सत्त्वेन साम्येन सदाशिषा च ॥४०॥ उपजातिः ॥

एवं प्रवचने पद्मबोधिगुरुरवोचत ।
पन्न्यासहंसरत्नस्य, तपोमाहात्म्यमीदृशम् ॥४१॥

- इनके (तपस्वी के) तप की प्रभावना प्रभा के समान प्रवचन के द्वारा, कमल समान श्रीसंघ में यथासंभव करूंगा ।''...३६
- इस प्रकार सोचकर पंन्यास पद्मबोधिविजयजी तपस्वी के साथ भव्य ऐसी मुंबई नगरी के विस्तारों में विचरे...३७

- तत्पश्चात् पंन्यास पद्मबोधिविजयजी ने ''यह तपस्वी मोक्ष हेतु प्रमाणित हैं'' इस प्रकार पर्षदा में तप की एवं तपस्वी की महिमा का वर्णन किया...३८
- ''तप के माध्यम से (पंन्यास हंसरत्नविजयजी के द्वारा) पाप के दलिक को दला गया है, कर्मराजा के सैनिकों को मारा गया है और क्षमारूपी प्याऊ का जल पीया गया है...३९
- चंपा श्राविका के द्वारा राजधानी (दिल्ली) में जिस तप से अकबर राजा को प्रतिबोध किया गया वह यह (१८० उपवास का) तप इनके (पंन्यास हंसरत्नविजयजी के) द्वारा समता से, सत्त्व से और कृपा से किया गया है''...४०
- इस प्रकार पंन्यास हंसरत्नविजयजी के ऐसे तप की महिमा का प्रवचन में पंन्यास पद्मबोधिविजयजी ने वर्णन किया...४१

तस्य तेजस्विनीं वाणीमासाराऽमृतवर्षिणीम् ।
कर्णाभ्यां सुजनाः पीत्वा, व्यसृजन्नयनद्वयात् ॥४२॥

स्वप्रतिलेखनादीनि, श्रीपद्मबोधिसंयतम् ।
तच्छिष्यान् वाऽददान्नैव, पुण्यभोगपराङ्मुखः ॥४३॥

दर्शनार्थं समागच्छँल्लोका उग्रतपस्विनः ।
वासचूर्णं च तन्मुष्ट्या, धारयन्ति स्म मस्तके ॥४४॥

नित्यं सहस्रलोकान् स, आशिषमददात्परम् ।
स्वहस्ताद्वासचूर्णेन, चारुगन्धप्रदायिना ॥४५॥

तपसो वासचूर्णस्य, जना अन्वभवंस्तदा ।
युगपत्सुरभिद्वन्द्वं, पापसन्तापसूदनम् ॥४६॥

समाप्तिरुपवासानां, निकषाऽऽसीत्तपस्विनः ।
खकर्मात्ममितानां (१८०) रे !, तदा सर्वे विनोदिताः ॥४७॥

मुदयाऽऽयोजितं भक्तैः, पारणकमहामहः ।
पौरुष्यसन्ततेस्तुष्येत्, किं न भाग्यपितामहः ? ॥४८॥

***

- निरंतर अमृत बरसाने वाली ऐसी उनकी (पंन्यास पद्मबोधिविजयजी की) वाणी का कान से पान करके अहो ! दो आंखों से (=अश्रुरूप में) विसर्जित करके...४२
- पुण्य भुगतने से पराङ्मुख ऐसे तपस्वी ने अपना प्रतिलेखन आदि पंन्यास पद्मबोधिविजयजी को अथवा उनके शिष्यों को नहीं दिया...४३
- लोग इस उग्र तपस्वी के दर्शन हेतु आते और उनका वासक्षेप स्वयं के मस्तिष्क पर धारण करते...४४

- खुद के हाथों से अत्यंत सुगंधी ऐसे वासक्षेप से वे (तपस्वी) प्रतिदिन हजारों लोगों को आर्शीवाद देते...४५
- पाप को खत्म करने वाले ऐसे तप की और संताप को खत्म करनेवाले ऐसे वासक्षेप की, इस प्रकार दो प्रकार की सुगंध एक साथ लोग तब अनुभव करते थे...४६
- जब उस तपस्वी के १८० उपवास की समाप्ति निकट थी तब सभी आनंदित हुए...४७
- भक्तों के द्वारा आनंद से पारणे के महामहोत्सव का आयोजन किया गया, क्या पुरूषार्थरूपी संतति से भाग्यरूपी पितामह खुश नहीं होंगे ? (अर्थात् उनके पुरूषार्थ से ऐसा पुण्य पैदा हुआ कि भक्तों को उनके पारणोत्सव का आयोजन करने का मन हुआ)...४८

***

(पारणकमहोत्सवः)

रुचिरतोरणमण्डितसन्मुखः,
विहितमुत्कलकाऽऽसनसत्सुखः ।
स हृदयङ्गमरङ्गविशोभितः,
पृथुलपारणकोत्सवमण्डपः ॥४९॥ द्रुतविलम्बितम् ॥

भविजनास्त्वरयैत सुमण्डपे,
झटिति सद्गुरुरत्र समैष्यति ।
इति नियुक्तजना अवदञ्जनान्,
महसि पारणकस्य तपोनिधेः ॥५०॥ द्रुतविलम्बितम् ॥

सुजनलोचनशुक्तिनिवेशितं,
यदवलोकनमब्दजलोपमम् ।
सृजति मौक्तिकमश्रुण उज्ज्वल-
महह ! हंसगुरुः प्रविवेश सः ॥५१॥ द्रुतविलम्बितम् ॥

''तपस आश्रयमाश्रयतामिह,
पुरुषकारकरेषु शिरोमणिम्'' ।
इति जना अगदन्मिथ आदराद्,
गुरुवरस्य समागमने तदा ॥५२॥ द्रुतविलम्बितम् ॥

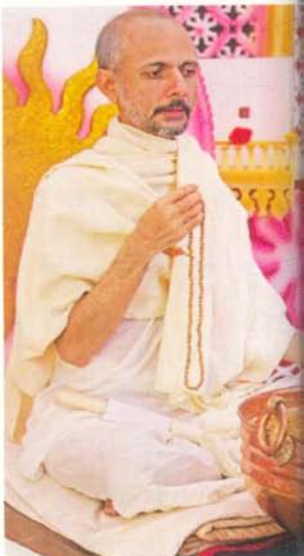

(पारणा महोत्सव)

- सुंदर तोरण से सुशोभित जहां प्रवेशद्वार है, मुक्तता से बैठने का सुख जहां किया गया है, वह मनोहर रंग से शोभित ऐसा विशाल पारणा-महोत्सव का मंडप है...४९
- ''भाविक ! जल्दी मंडप में आइए, गुरूदेव यहां जल्दी आ जाएंगें ''इस प्रकार भव्य पारणा-महोत्सव में कार्यकर्ता लोगों से कह रहे थे...५०
- अहो ! जिनके दर्शनरूपी मेघ का पानी सज्जन के नयनरूपी सीप में प्रवेश कर ले तो वह उज्ज्वल ऐसे आंसू के मोती का सृजन करता है ऐसे पंन्यास हंसरत्नविजयजी (वहां) पधारे...५१
- ''तप के आश्रय समान, पुरूषार्थ करने वालों में शिरोमणि ऐसे इनका आश्रय लो ''इस प्रकार गुरूदेव के (तपस्वी के) आगमन पर आदर से परस्पर लोग बोले...५२

वरतपागणनेतृगुरोरभूत्,
पुनितसन्निधिता प्रवरोत्सवे ।
मुनिवरा बहवः समुपस्थिताः,
प्रवचने पटवो जितपर्षदाः ॥५३॥ द्रुतविलम्बितम् ॥

प्रारब्ध उत्सवश्चैवं, सकलसङ्घसन्निधौ ।
वक्तृभिर्वर्णितास्तस्य, कर्मकाष्ठघुणा गुणाः ॥५४॥

प्रेक्ष्यमाणोऽक्षिमालाभिः, प्रगलदश्रुराजिभिः ।
स्तूयमानोऽभिरामाभिर्जिह्वामालाभिरुच्चकैः ॥५५॥

अर्च्यमान उदाराभिर्भावमालाभिरामुदा ।
वन्द्यमानः कमालाभिर्नम्राभिः फलवद्द्रुवत् ॥५६॥

दर्श्यमानोऽङ्गुलीमालासहस्रैः समुदञ्चितैः ।
दीप्यमानोंऽशुमालाभिर्जाताभिस्तपसाऽऽत्मनः ॥५७॥

सत्क्रियमाण आरेजे, भक्तिमालासहस्रकैः ।
तथा वर्धाप्यमानः सोऽञ्जलिमालासहस्रकैः ॥५८॥ चतुर्भिः कुलकम् ॥

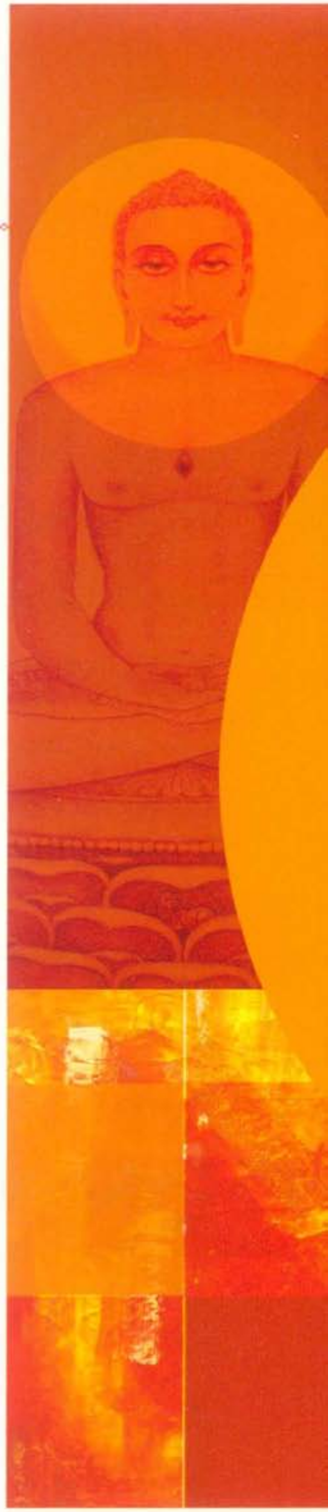

- तपागच्छाधिपति (आ.वि.प्रेमसूरि म.सा.) का पावन सांनिध्य इस महोत्सव में था और प्रवचनकुशल, सभा को आवर्जित कर सकें ऐसे कई मुनिभगवंत उपस्थित थे...५३
- इस प्रकार संघ के सांनिध्य में उत्सव शुरू हुआ और कर्म की लकड़ी के लिए दीमक समान उनके गुण वक्ताओं द्वारा बताये गये...५४
- झरते अश्रुओं के समुहवाली आंखों की हारमाला द्वारा देखे जाजनेवाले, सुंदर ऐसी जिह्वाओं की हारमाला द्वारा बार-बार स्तवना किये जाने वाले...५५
- उदार ऐसी भावना की हारमालाओं के द्वारा आनंद से पूजे जाने वाले, फलवाले वृक्ष की तरह नम्र ऐसे मस्तिष्कों की हारमाला द्वारा नमन किये जाने वाले...५६
- ऊंची की गई हजारों उंगलियों की हारमाला द्वारा दिखाये जाने वाले, खुद के तप से उत्पन्न हुई प्रकाश की हारमाला द्वारा आलोकित होने वाले...५७
- हजारों भक्ति की हारमाला द्वारा सत्कार को प्राप्त करने वाले तथा अंजलिरूपी हारमालाओं के समुह से बधाए जाने वाले वे (तपस्वी) अत्यंत सुंदर लग रहे थे...५८

वर्यगुणानुवादेन, प्रहृष्टा निखिला जनाः ।
उत्सर्पिका ततो जाता, तस्य पारणकस्य तु ।।५९।।

लाभार्थमवदन् राशिं, धनस्य धनिनोऽधिकम् ।
एकविंशतिकोट्या तु, श्रेष्ठ्यादेशं समात्तवान् ।।६०।।

अहो ! तपो ह्यहो ! दानमित्यश्लाघन्त सज्जनाः ।
सुवर्णवलये मन्ये, प्रकृतं रत्नमण्डनम् ।।६१।।

दत्ता नगरश्रेष्ठीति, तस्मा इभ्याय सत्पदम् ।
सद्गुरूणां समादेशाद्, वर्धापितं च तज्जनैः ।।६२।।

पारणकमकार्षीत्स, तपसोऽस्य महामुनिः ।
अनन्तरायनाम्नस्तु, नगरेभ्यस्य दानतः ।।६३।।

सोऽथ पारणके जाते, पुनः कियद्दिनादनु ।
समुत्क्रान्तुं तपो नूत्नं, चिन्तयामास चेतसि ।।६४।।

- सुंदर गुणानुवाद से तमाम लोग प्रसन्न हुए और उसके बाद उनके पारणे की बोली शुरू हुई...५९

- लाभ हेतु धनवानों ने अधिक धन की राशि बोली, (अंत में) २१ करोड़ धन राशि से एक सेठ ने आदेश लिया..६०

- अहो ! तप और अहो दान ! इस प्रकार लोगों ने प्रशंसा की, सोने के कड़े पर मानो हीरे जड़े हों ऐसा मैं मानता हूं...६१

- गुरूदेव के (तपागच्छाधिपति के) आदेश से उस श्रेष्ठी को नगरसेठ की पदवी दी गयी और लोगों ने उन्हें बधाई दी...६२

- वह **अनुभाई** नाम के नगरसेठ के (सुपात्र) दान से इस तप का पारणा पंन्यास हंसरत्नविजयजी ने किया...६३

- अब पारणा होने के कुछ दिनों बाद फिर नया तप शुरू करने का उन्होंने मन में विचार किया...६४

आबाल्यात् साहसं तस्याऽऽसीत्प्रचण्डमहो ! ह्यतः ।
श्रुतं बालमुनित्वेऽपि, पुराऽहिस्तेन रक्षितः ॥६५॥

तदेवम्- एकदा रत्नसुन्दरमुनिना समम् ।
विहरन् हंसरत्नस्तु, दृष्टवानहिरध्वनि ॥६६॥

स तु भूश्लिष्टदेहोऽभूद्यानातिक्रमणेन रे ! ।
दयालुर्हंसरत्नस्तं, त्रातुं कामितवान् हृदि ॥६७॥

अनुज्ञा याचिता तेन, रत्नसुन्दरसन्मुनेः ।
ज्येष्ठानुज्ञां विना नैव, प्रवर्तन्ते विचक्षणाः ॥६८॥

ज्येष्ठेन समनुज्ञातः, सर्पाभ्यर्णे स यातवान् ।
उद्दधार तनुं तस्य, दण्डकेन शनैः शनैः ॥६९॥

समन्ततः समुद्धृत्य, मुक्तवांस्तं पथस्तटे ।
साहसमीदृशं दृष्ट्वा, जहर्ष रत्नसुन्दरः ॥७०॥

- अहो ! बचपन से ही उनका साहस प्रचंड और अद्‌भुत था । इससे पहले बालमुनिअवस्था में उन्होंने सांप को बचाया था...६५
- वह इस प्रकार-एक बार मुनि रत्नसुंदर-विजयजी (हाल में आचार्य) के साथ विहार करते हुए मुनि हंसरत्नविजयजी ने रास्ते में सांप देखा...६६
- गाडी जाने से उसका शरीर जमीन के साथ चिपक गया था । दयालु हंसरत्न-विजयजी के मन में उसे बचाने की इच्छा हुई...६७
- उनके द्वारा मुनि रत्नसुंदरविजयजी की अनुज्ञा मांगी गयी, बडों की अनुज्ञा के बिना बुद्धिमान प्रवृत्ति नहीं करते...६८
- बडों की अनुज्ञा को प्राप्त करनेवाले वे सांप के पास गये और दंडे से धीरे-धीरे उसका शरीर जमीन से अलग किया...६९
- चारों ओर से उसके शरीर को अलग करके सांप को रास्ते के नुक्कड के पास रखा । उनका यह साहस देखकर मुनि रत्नसुंदरविजयजी प्रसन्न हुए...७०

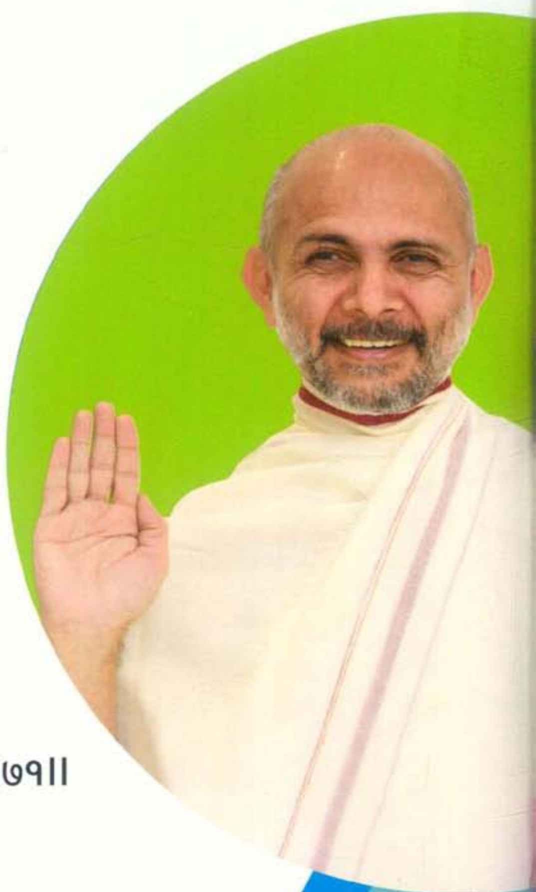

श्रीहंसरत्ननिर्ग्रन्थ, एवमाबाल्यसाहसी ।
आसीच्छ्रमणभक्तौ चाऽग्रेसरः सर्वदा किल ।।७१।।

प्रतिलेखितुमार्याणां, स्थापनाचार्यमेष तु ।
उत्साहितोऽभवन्नित्यं, पुण्यपादपसेचकः ।।७२।।

महोत्सवे यदा सर्वे, यान्ति स्म मुनिपुङ्गवाः ।
तदाऽयं मण्डलीकार्यं, सानन्दं निरवाहयत् ।।७३।।

न तस्य हृदि संस्पृष्टं, महोदर्शनकौतुकम् ।
दर्शनमत एवाऽस्य, प्रजायते हृदिस्पृशम् ।।७४।।

गुणाऽऽसक्तोऽप्यनासक्तः, साधुराग्यप्यरागवान् ।
अहिंस्रोऽप्यंहसो हन्ता, सुविग्रहोऽप्यविग्रहः ।।७५।।

धर्मकाम्यपि निष्कामः, शान्तः क्रुद्धोऽन्तरारिषु ।
ग्रन्थप्रियोऽपि निर्ग्रन्थश्चित्रमेतस्य जीवनम् ।।७६।।

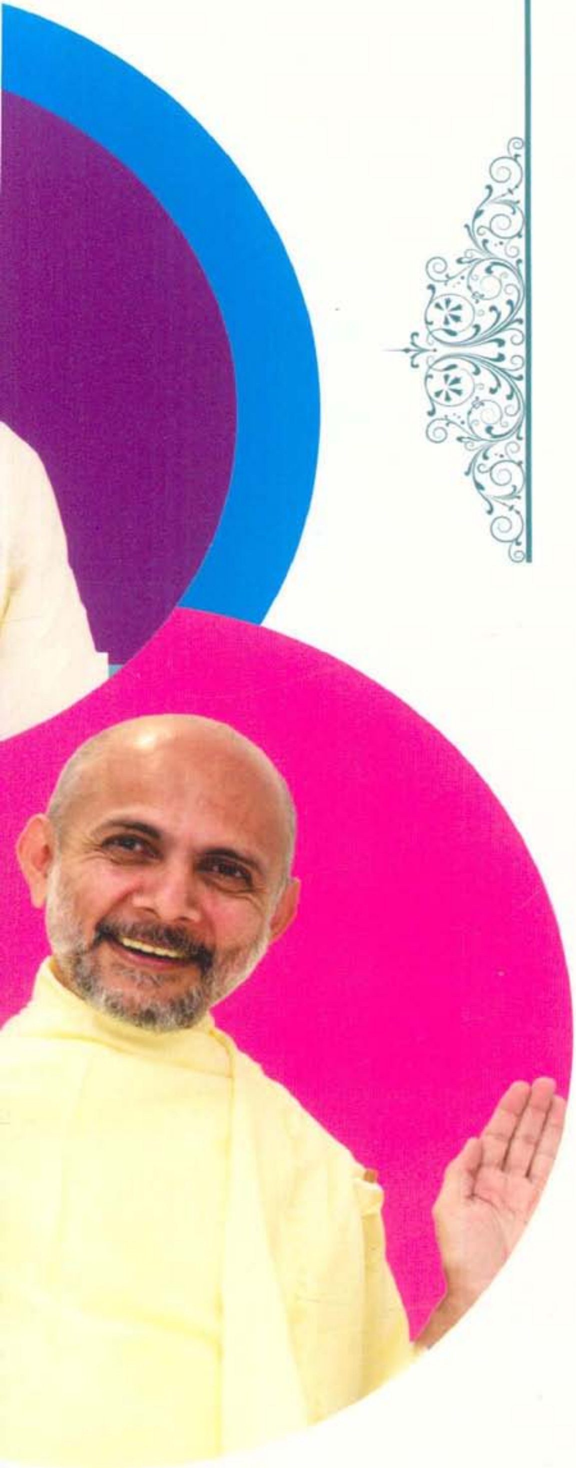

- पंन्यास हंसरत्नविजयजी इस प्रकार बचपन से ही साहसी थे और हमेशा साधु की भक्ति में अग्रसर रहते थे...७१
- पुण्य के वृक्ष का सिंचन करनेवाले यह तपस्वी साधु भगवंतों के स्थापनाचार्यों का प्रतिलेखन करने के लिए सदा उत्साहित रहते थे...७२
- जब सब मुनि महोत्सव में जाते थे तब ये (तपस्वी) मांडली के काम आनंद से वहन करते थे...७३
- उनके मन को महोत्सव देखने का कुतूहल छूता नहीं था, इसीलिए उनके दर्शन हृदय को छूने वाले होते हैं...७४
- गुण में आसक्त होने पर भी अनासक्त, साधु के रागी होने पर भी विरागी, अहिंसक होने के बावजूद पाप का नाश करनेवाले, विग्रह (कलह) बिना के फिर भी सुंदर विग्रह=शरीर वाले...७५
- धर्म के कामी फिर भी निष्काम, शांत होने पर भी आंतरशत्रुओं पर क्रोध करने वाले, ग्रंथ प्रिय होने पर भी निर्ग्रंथ, अहो ! इनका जीवन विशिष्ट है...७६

यो **बुधो** जीवरक्षार्थं **शनैश्चर**ति भूतले ।
यश्च सत्त्व**विधु**र्नापद्**विधुन्तु**देन ग्रस्यते ॥७७॥

मङ्गलं दर्शनं यस्य, धातून्मे नन्दयत्यहो ! ।
रुधिरमांसमेदोऽस्थिमज्जा**शुक्र**रसाभिधान् ॥७८॥

कर्मणो दहने यश्च, धूम**केतू रवि**प्रभः ।
गुरुराजपदाम्भोजे, भृङ्गायते च यन्मनः ॥७९॥

आचार्यप्रेमसूरिस्तं, ज्ञात्वैवं तपसां निधिम् ।
पदं **दिव्यतपस्वी**ति, ददौ तपागणाधिपः ॥८०॥

लभ्ये तु ये सप्तकयुग्मयोगात्,
ते संलभेयेह चतुर्दशोभे ।
विभो ! प्रभावात् किल सप्तमस्य,
पक्षस्य हास्यादिहरस्य शस्ये ॥८१॥ उपजातिः ॥

॥ इति सप्तमः पक्षः समाप्तः ॥

- जो बुद्धिमान जीवरक्षा हेतु जमीन पर धीरे-से चलता है और सत्त्वरूपी चंद्र समान ऐसे जो आपत्ति के राहु से ग्रस्त नहीं होते है...७७
- जिनके मंगल दर्शन रस, रक्त, मांस, चर्बी, अस्थि, मज्जा और शुक्र नाम की मेरी सातों धातुओं को प्रसन्न करते हैं...७८
- जो कर्मों को जलाने के लिए अग्नि समान है, सूर्य जैसी जिनकी प्रभा है और जिनका मन गुरूदेव के चरणकमल में भ्रमर बनता है...७९
- **तपागच्छाधिपति आ.श्री प्रेमसूरि म.सा.**ने इस प्रकार तप का भंडार जानकर उन्हें (पंन्यास हंसरत्नविजयजी को) **"दिव्य तपस्वी"** की पदवी दी...८०
- इस सातवे पक्ष के प्रभाव से यहां हास्यादि को हरने वाले दो सात (सातवां राजलोक और सातवां गुणस्थानक) दो चौदह (चौदहवा राजलोक और चौदहवा गुणस्थानक) प्राप्त हों...८१

॥ सातवां पक्ष समाप्त ॥

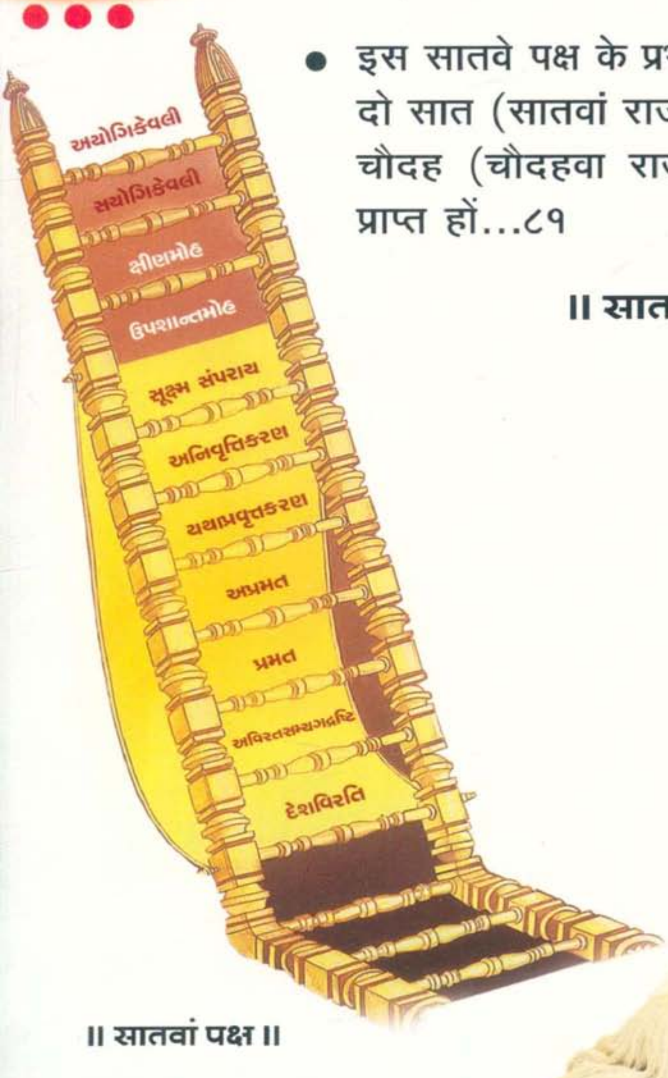

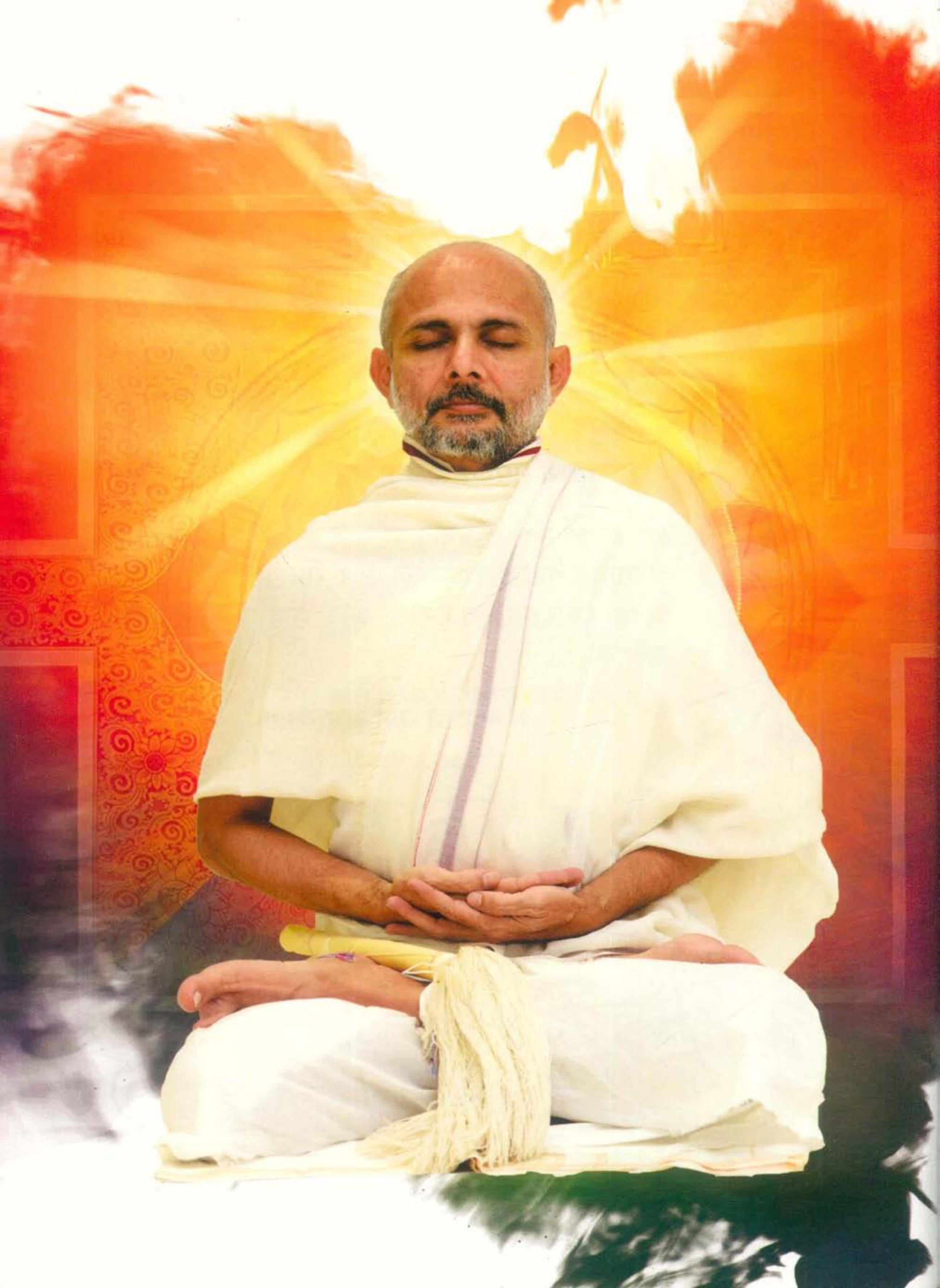

यन्त्रकाव्यम्

३० नगौश	१६ चाटु	१८ जपस्	३६ तायी
१० नयोद्	४४ भवो	३३ ऽखर	२४ स्वरः ।
३२ रोग	१४ भय	२० नखि	३४ द्विड्ड-
२८ हरश्	२६ चारु	४० नभा	०६ तनुः ।

नगौ[1]श्[2]चाटुजपस्तायी, नयोद्भवोऽखरस्स्वरः ।
रोगभयनखिद्विड्[3]ड-हरश्चारुनभातनु[4]ः ॥

- आनंद से युक्त मुखवाले, सुंदर प्रार्थना करनेवाले, रक्षा करनेवाले, नय के उद्गमस्थान, मृदु स्वरवाले, रोग-भय-राक्षस-शत्रु और त्रास को हरने वाले, सुंदर रत्न जैसी कांति से युक्त शरीर वाले । (वे आचार्य विजय हंसरत्नसूरि हैं ।)
- यह १०० अंक का यंत्र है । इसमें कटपयादि संज्ञा के द्वारा शब्दों का न्यास करके श्लोक की रचना की गयी है ।

---

१. ''सानन्दे नम्'' - (७९) विश्वशम्भोरेकाक्षरनाममालायाम् ।
२. ''गौः... मुखेषु'' - (१३) परमानन्दस्यैकाक्षरीयप्रथमकाण्डे ।
३. ''डः... त्रासे'' - (३९) राघवस्यैक्षरकाण्डे ।
४. ''नः (पुं.) रत्ने'' - (पृ.२१५) शब्दस्तोममहानिधौ ।

॥ अष्टमः पक्षः ॥

॥ दिव्यतपस्विनस्तपोजपनयोः प्रमाणम् ॥

सञ्ज्ञालेश्याकषायाऽऽकृतिविकृतिवपुर्नामसंस्थानपीडा-
-वाचःकर्मानुभागस्थितिप्रकृतिदलं नास्ति येषां स्फुटं रे ।
ते सिद्धाः सिद्धये स्युस्त्रिभुवनतिलकास्तैः सहैषोऽपि सर्गो
यावच्चन्द्रार्यमाणौ, कविकुलदयितो, ह्यष्टमोऽरिष्टसूदः ॥१॥ स्रग्धरा ॥

अथ वक्ष्यामि श्रीहंसरत्नगुरोस्तपांस्यहम् ।
पठ्यतां तानि भावेन, येन स्याद् हृच्चमत्कृतिः ॥२॥

द्वे वर्षितपसी साष्टशतानशनसत्तपः ।
अष्टषष्ट्युपवासानां, तपो जापपुरस्सरम् ॥३॥

चत्वार्यन्यानि पूर्वोक्ताद्, मृत्युञ्जयतपांसि तु ।
द्वात्रिंशदुपवासा द्विः, कृताः पूर्वोदितेतराः ॥४॥

पूर्वकथितभिन्नैकत्रिंशदुपोषितानि तु ।
किं विहितानि सिद्धानां, गुणानामाप्तये किल ? ॥५॥

षोडशोपोषितान्येष, द्विवारं कृतवान् महान् ।
एकवारं तपो दीर्घं, नवत्युपोषिताऽऽत्मकम् ॥६॥

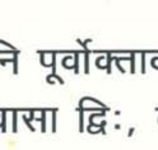
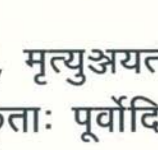

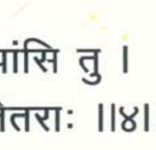

॥ आठवां पक्ष ॥

(दिव्यतपस्वी का तप और जप)

- संज्ञा, लेश्या, कषाय, आकार, विकार, शरीर, नाम, संस्थान, पीडा, वाणी, कर्म के प्रकृति-स्थिति-रस प्रदेश ये जिन्हें नहीं हैं वे तीन भुवन के तिलक समान सिद्ध भगवंत और उनके साथ पापों को नाश करने वाला, कवि समुह को प्रिय, आठवां पक्ष सिद्धि के लिए हो...१
- अब मैं पूज्य पंन्यासजी हंसरत्नविजयजी के तप को कहूंगा, उसे भाव से पढना जिससे ह्रदय चमत्कृत हो...२
- दो वरसीतप, १०८ उपवास, जाप के साथ ६८ उपवास...३
- जो पहले बताये हैं उससे अलग अन्य ४ मासक्षमण और पहले बताये गये हैं उससे भिन्न दो बार के ३२ उपवास...४
- जो पूर्व कहे गये हैं उससे अलग ३१ उपवास क्या सिद्धों की गुणप्राप्ति के लिए ही किये गये हैं ?...५
- १६ उपवास दो बार और ९० उपवास का दीर्ध तप एक बार इस (दिव्य तपस्वी) ने किया...६

विहिता उपवासाश्च, सूरिगुणमिताः सकृत् ।
सुपुण्यस्य इवाऽऽवासा, हासाद्युज्झनपूर्वकम् ।।७।।

त्रयोविंशतिसम्पृक्तशतोपोषितसत्तपः ।
विहितममुना जापपूर्वकं दान्तचेतसा ।।८।।

उपवासाः कृता एकनवतिसङ्ख्यकास्तथा ।
चत्वारिंशन्मितांश्चैष, कृतवानुपवासकान् ।।९।।

अकरोदुपवासांश्चाऽर्हदतिशयसम्मितान् ।
तथा चोपोषितान्यर्हद्वाणीगुणमितानि तु ।।१०।।

द्विकृत्वश्च त्रयस्त्रिंशदुपवासतपः कृतम् ।
पूर्वोक्तभिन्नमेतेनाखिन्नेन तपसोरुणा ।।११।।

उपवासास्तथैकोनचत्वारिंशन्मिताः कृताः ।
अष्टत्रिंशन्मिताः पञ्चचत्वारिंशन्मितास्तथा ।।१२।।

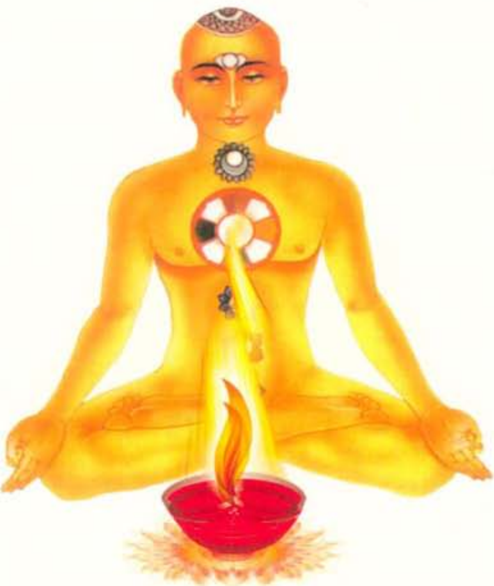

- हास्यादि के त्यागपूर्वक मानो पुण्य के आवास हों ऐसे आचार्य के गुण जितने (३६) उपवास उन्होंने एक बार किए...७

- जाप के साथ दान्त मनवाले इन्होंने १२३ उपवास की तपस्या की...८

- ९१ उपवास और ४० उपवास (तपस्वी) ने किये...९

- अरिहंत के अतिशय जितने (३४) और अरिहंत की वाणी के गुण जितने (३५) उपवास इन्होंने किए...१०

- पहले बताये गये हैं उससे भिन्न ३३ उपवास, तप से महान और खेदरहित ऐसे इनके (तपस्वी के) द्वारा दो बार किये गये...११

- ३९ उपवास, ३८ उपवास तथा ४५ उपवास इन्होंने (तपस्वी ने) किए...१२

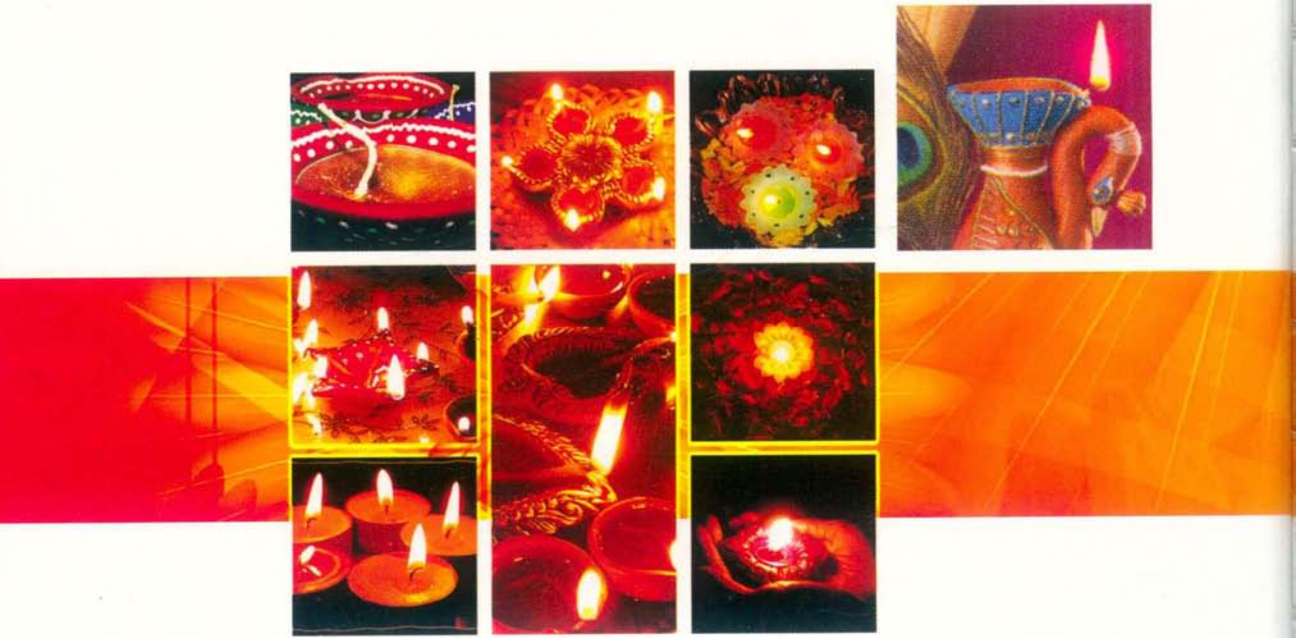

अकार्षीदुपवासास्तु, सप्तसप्ततिसम्मिताः ।
द्विषष्टिसम्मिताश्चैवं, द्वाविंशतिशताऽऽत्मकाः ।।१३।।

चतुःषष्टिमिताः पञ्चनवतिपरिमाणकाः ।
उपवासाः कृता एकपञ्चाशत्प्रमितास्तथा ।।१४।।

द्विपञ्चाशन्मितानि द्विचत्वारिंशन्मितानि च ।
अनशनानि दीर्घानि, विहितानि तपस्विना ।।१५।।

सप्तत्रिंशन्मिता हंसरत्नाऽऽह्वगुरुणाऽमुना ।
अक्रियन्तो उपवासाश्च, षट्चत्वारिंशदात्मकाः ।।१६।।

त्रिचत्वारिंशदङ्काश्च, समतप्तो[१]पवासकाः ।
तथा च वेदसेनाङ्गसङ्ख्यका जपनान्विताः ।।१७।।

---

१. तपः कर्त्रनुतापे च ।।३/४/९१।। सिद्धहेमशब्दानुशासनम् ।

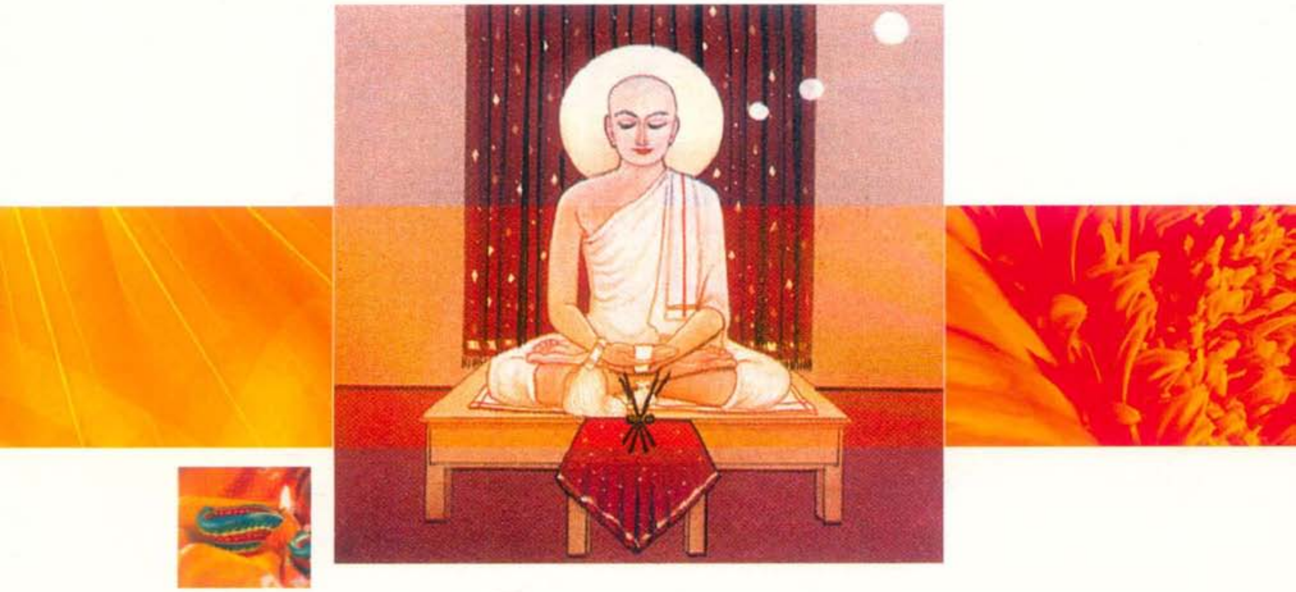

- ७७ उपवास, ६२ उपवास और १२२ उपवास, इस प्रकार के (तप) इन्होंने (तपस्वी ने) किये...१३
- ६४ उपवास, ९५ उपवास तथा ५१ उपवास ये (तप तपस्वी ने) किये...१४
- ५२ और ४२ जितने दीर्ध उपवास तपस्वी द्वारा किए गये...१५
- ये पूज्य पंन्यास श्री हंसरत्नविजयजी के द्वारा ३७ और ४६ उपवास किये गये...१६
- ४३ जितने उपवास तथा जापसहित ४४ उपवास (तपस्वी के द्वारा) किये गये...१७

गुणरत्न संवत्सर तप

(गुणरत्नसंवत्सरतपः)

एतेषां तपसां मध्ये, हारमध्यस्थरत्नवत् ।
अतप्यत तपो दिव्यं, श्रीमद्दिव्यतपोधनः ।।१८।।

दिनमानं तपस्यस्मिन्, सनवति चतुःशतम् ।
मन्ये तपोऽद्रिमालायां, सर्वोत्तुङ्गतपोऽचलः ।।१९।।

त्रयोविंशतिसम्पृक्तचतुःशतदिनेषु तु ।
अनशनानि कार्याणि, विदधता तपस्त्विदम् ।।२०।।

सप्तषष्टिदिनान्येव, रे ! पारणाय केवलम् ।
अस्मिन् तपसि लभ्यन्त, उत्कृष्टतस्तपस्विनः ।।२१।।

प्रत्याख्यानं चतुर्भक्तसत्कं मासे किलाऽऽदिमे ।
कृत्वा पारणकं मध्ये, दिनान्तरेण गृह्यते ।।२२।।

गृह्यते षष्ठभक्तस्य प्रत्याख्यानं तपस्विना ।
मध्ये पारणकं कृत्वा, द्वितीयमासके खलु ।।२३।।

उपोषितानि जायन्ते, मासे मासे किलाऽधिकाः ।
एकैकशः क्रमेणैवं, यावत्षोडशमासकम् ।।२४।।

(गुणरत्नसंवत्सर तप)

- इन सब तप के बीच, हार के मध्य में रहे रत्न जैसा एक दिव्यतप श्री दिव्यतपस्वी ने किया...१८
- यह तप ४९० दिन का है । तप की पर्वतमाला में यह सर्वोच्च तप है ऐसा मैं मानता हूं...१९
- यह तप करनेवाले को ४२३ दिनों के उपवास करने होते हैं...२०
- इस तप में तपस्वी को अधिक से अधिक ६७ दिन ही पारणा हेतु मिलते हैं...२१
- पहले महिने में बीच में पारणा (बियासना) करके एकान्तर उपवास के पच्चक्खाण ग्रहण किये जाते हैं...२२
- दूसरे महिने में बीच में पारणा (बियासना) करके बेले का पच्चक्खाण लिया जाता है...२३
- इस प्रकार १६ महिने तक क्रमशः प्रतिमाह १-१ उपवास बढते जाते है...२४

हंसरत्नः स पन्न्यास, आरब्धवानिदं तपः ।
भिन्त्ते दुर्भेद्यकर्माणि, साधुर्दुःसाध्यकर्मणा ॥२५॥

आसन्नस्वतपःपूर्तौ, प्रत्याख्यानानि सोऽग्रहीत् ।
विविधसूरिवक्त्राब्जनिःसृतानि क्रमेण तु ॥२६॥

चतुर्दशोपवासानां, प्रत्याख्यानं गृहीतवान् ।
तपागच्छेशितुः **प्रेमसूरे**र्मुखात् किलाऽऽदिमम् ॥२७॥

तेषां द्वितीयवारस्य, प्रत्याख्यानं समात्तवान् ।
प्रशान्तमूर्तिराजेन्द्रसूरिमुखाब्जनिःसृतम् ॥२८॥

पञ्चदशोपवासानामाद्यवारस्य सोऽग्रहीत् ।
प्रत्याख्यानं **चन्द्राननसागरसूरि**सन्निधौ ॥२९॥

तेषां द्वितीयवारस्य प्रत्याख्यानं समग्रहीत् ।
राजयशाभिधाऽऽचार्यसन्निधौ स तपोनिधिः ॥३०॥

● उस पंन्यास हंसरत्नविजयजी ने यह तप शुरू किया । साधु दु:साध्य ऐसे कृत्यों के द्वारा दुर्भेद्य कर्मों का भेदन करता है...२५

● तप की समाप्ति जब निकट थी तब उन्होंने क्रमशः अलग-अलग आचार्य भगवंतों के मुख से पच्चक्खाण लिये...२६

● (१४ वे महिने के) पहले १४ उपवास के पच्चक्खाण उन्होंने **तपागच्छाधिपति आ.भ. श्री विजय प्रेमसूरीश्वरजी म.सा.** के मुख से लिये...२७

● दूसरे १४ उपवास के पच्चक् खाण **प्रशांतमूर्ति (वर्तमान में गच्छाधिपति) आ.भ. श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के मुख से लिये...२८

● (पन्द्रहवे महिने के) पहले १५ उपवास के पच्चक्खाण उन्होंने **आ.वि. चन्द्राननसागरसूरिजी म.सा.** के सांनिध्य में लिये...२९

● दूसरे १५ उपवास के पच्चक्खाण उस तपस्वी ने **(वर्तमान में गच्छाधिपति) आ. राजयशसूरिजी म.सा.** के सांनिध्य में लिये...३०

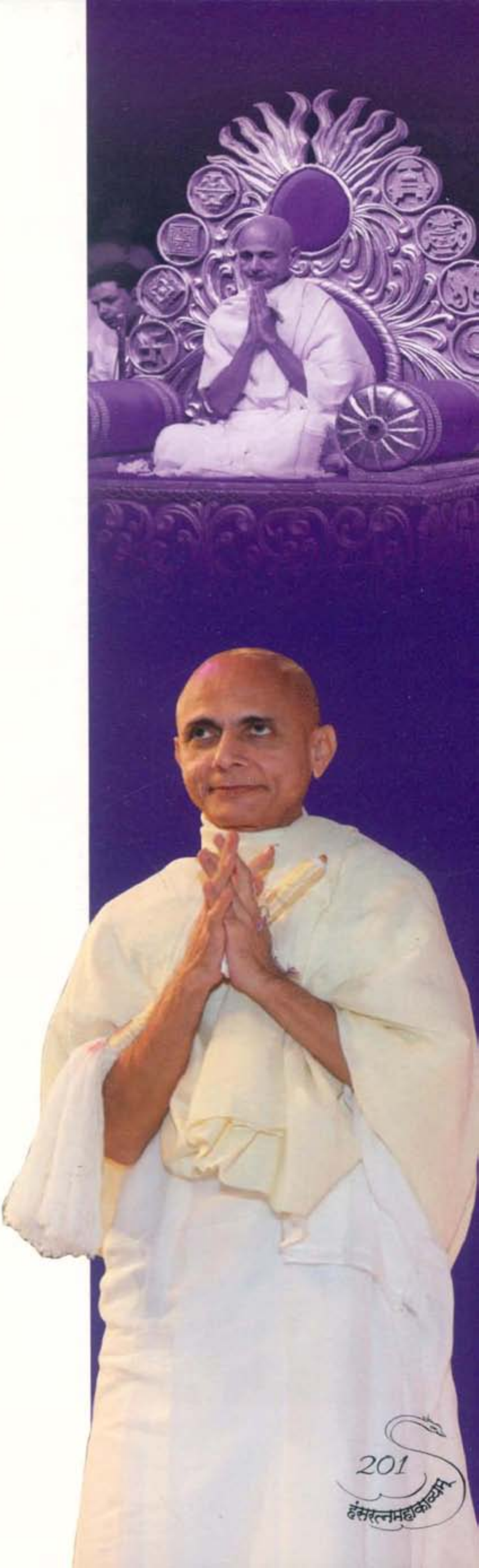

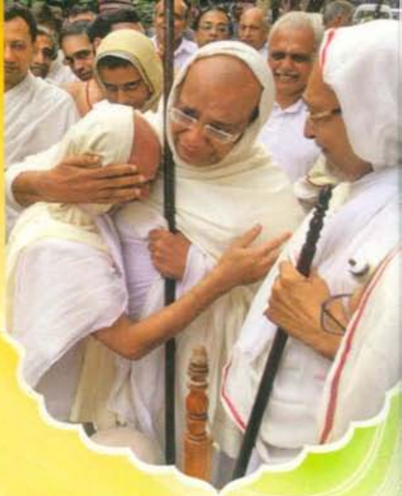

षोडशोपोषितानां स, आद्यवारस्य लब्धवान् ।
प्रत्याख्यानं **सदाचार्यजगवल्लभ**सन्निधौ ॥३१॥

प्रत्याख्यानं समादातुं, चरमं तपसोऽथ सः ।
रत्नसुन्दरसूरीन्द्रसन्निधानं समव्रजत् ॥३२॥

रत्नसुन्दरसूरिस्तु, ज्येष्ठोऽपि रे ! तपस्विनः ।
वर्धापनाय भावेन, मातुङ्गायां पुरोऽव्रजत् ॥३३॥

दूरत एव दृष्ट्वा तं, हंसरत्नतपस्विनम् ।
रत्नसुन्दरसूरेस्तु सपया दृगभूदहो ! ॥३४॥

प्राञ्जालान्तर आलिङ्ग्य, दत्त्वा तस्मै शुभाशिषम् ।
तपस्विना समं सङ्घे, मातुङ्गाऽऽह्वे समागतः ॥३५॥

तपसोऽस्यान्तिमे मासे, त्यक्त्वा पारणकं निजम् ।
कृतास्तेन त्रयस्त्रिंशदुपवासास्तपस्विना ॥३६॥

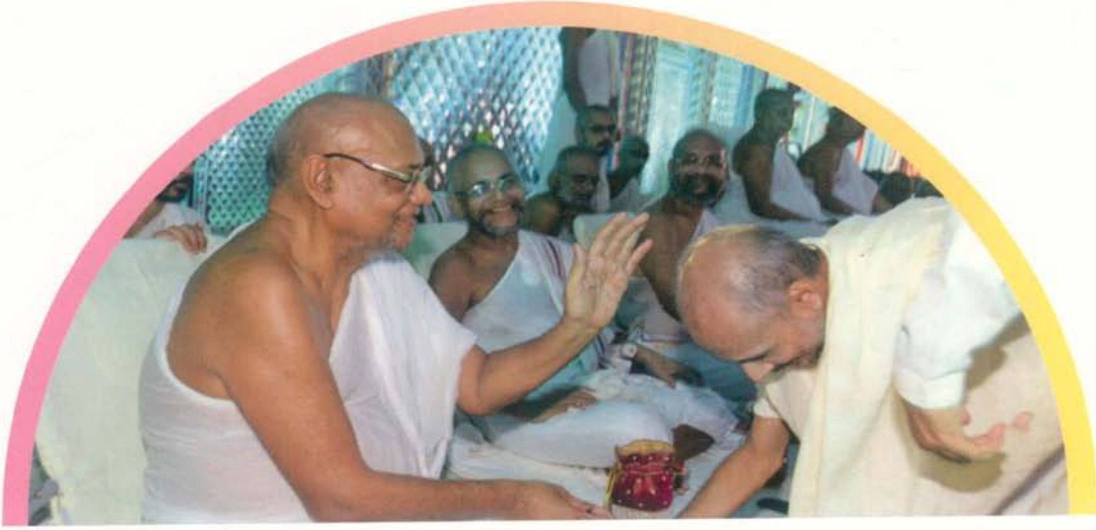

- (सोलहवे महिने के) पहले १६ उपवास के पच्चक्खाण उन्होंने **आ.भ. श्रीमद् विजय जगवल्लभसूरिजी म.सा.** के सांनिध्य में लिये...३१
- और अब तप के अंतिम (१६ उपवास) के पच्चक्खाण लेने के लिए वे **आ.भ. श्रीमद् विजय रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.** के सांनिध्य में गये...३२
- माटुंगा में आ. वि. रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म.सा., बडे होने के बावजूद उस तपस्वी को भाव से बधाने हेतु सामने गये...३३
- उस तपस्वी पंन्यास श्री हंसरत्नविजयजी को दूर से ही देखकर आ.वि. रत्नसुंदरसूरिजी की आंखें आंसू से छलछला गई...३४
- निश्छल अंतर वाले उन्हें (तपस्वी को) भाव से गले लगाकर तथा उन्हें शुभ आशिष देकर तपस्वी के साथ माटुंगा श्रीसंघ में पधारे...३५
- इस तप के अंतिम महिने का अपना पारणा छोडकर तपस्वी ने ३३ उपवास किये...३६

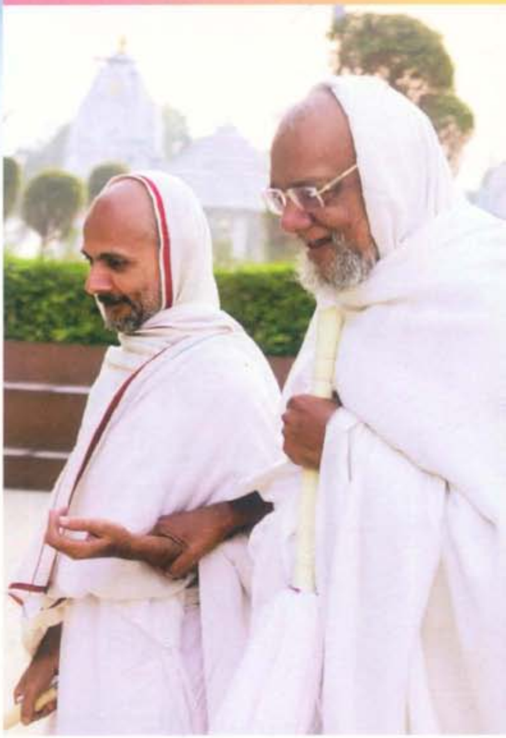

तदा चाश्विनमासस्य, प्रारब्धा शश्वदोलिका ।
साधना सिद्धचक्रस्य, कृता तेनाप्रमादिना ॥३७॥

''अहो ! सुविधिना दत्ते प्रदक्षिणां मुहुर्मुहुः ।
उत्थानपूर्वकं चाहो !, क्षमाश्रमणकान्यपि ॥३८॥

अहो ! प्रमादनिर्मुक्तमस्य तापस्यमीदृशम् ।''
तपस्विनो गुणानेवं, श्लाघन्ते सज्जना मिथः ॥३९॥ युग्मम् ॥

कृतो मुम्बापुरीसत्कहीरकाऽऽपणसङ्कुले ।
कृत्स्नमुम्बापुरीसङ्घैः, पारणकमहोत्सवः ॥४०॥

भक्तानां मण्डपे तत्राऽऽसीत्पञ्चाशत्सहस्रकम् ।
द्विशतं साधुसाध्वीनामाचार्याणां च विंशतिः ॥४१॥

श्रीमहाराष्ट्रराज्यस्य, मुख्यमन्त्री समागतः ।
भक्तिनिर्भरहृत्तत्र, दर्शनार्थं तपस्विनः ॥४२॥

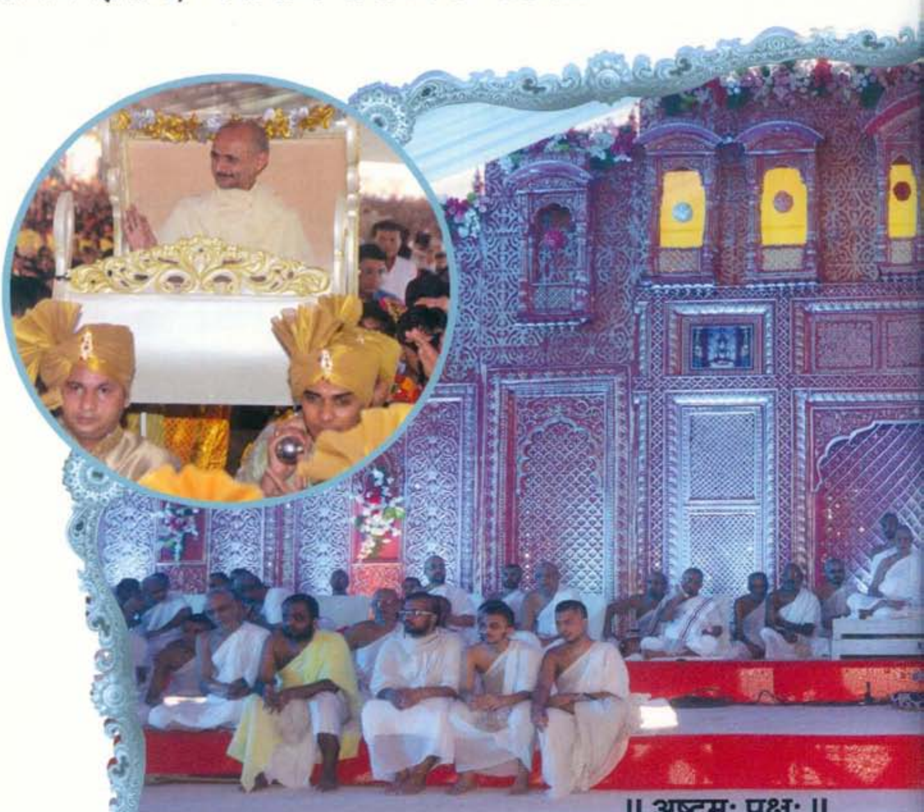

- तब (अंतिम महिने में) आसोज माह की शाश्वती ओली शुरू हुई और उनके (तपस्वी के) द्वारा प्रमादरहित होकर सिद्धचक्र की आराधना की गई...३७
- ''अहो ! यह (तपस्वी) विधिपूर्वक बार बार प्रदक्षिणा देते हैं और अहो ! खमासमणे भी खड़े खड़े देते हैं...३८
- अहो ! इनकी (तपस्वी की) तपस्या प्रमाद बिना की है'' इस प्रकार लोग आपस में तपस्वी के गुणों की प्रशंसा करते हैं...३९
- मुंबई के डायमन्ड बाजार (BKC) में समस्त मुंबई के संघों द्वारा (उनके) पारणे का महोत्सव किया गया...४०
- वहां मंडप में ५० हजार जितने भक्त थे २०० जितने साधु-साध्वीजी भगवंत और २० जितने आचार्य भगवंत थे...४१
- भक्ति से परिपूर्ण ह्रदय वाले महाराष्ट्र के (तत्कालीन) मुख्यमंत्री (**मा. देवेन्द्र फडणवीस**) तपस्वी के दर्शन हेतु वहां आये...४२

एवमासीद् महोत्साहः, सर्वेषां तन्महोत्सवे ।
स्यात्फलमप्यसामान्यमसामान्यपरिश्रमात् ॥४३॥

गुणरत्नसंवत्सरतपसोऽस्य विधायिनः ।
प्रासारीत् सुयशो दिक्षु, महौजसस्तपस्विनः ॥४४॥

स्वयात्राऽऽत्तमहीमानं, महिमानं तपस्विनः ।
कोऽस्ति वर्णयितुं शक्तो ? वागतीतं विपश्चिताम् ॥४५॥

एवं स पूज्यमानोऽपि, जनैर्यातो न दृप्तताम् ।
साम्यमालम्ब्य निर्ग्रन्थो, निस्तरङ्गः स्थितः सदा ॥४६॥

स्वरूपाऽऽनन्दसंलीनो, न भेजे स विभावताम् ।
जनन्यङ्कस्थबालस्य, पल्यङ्के स्यात्कियान् रसः ? ॥४७॥

''सुतप्तं तपो ध्यातमर्हत्स्वरूपं
धृतं धैर्यमास्वादितं ज्ञानपेयम् ।
परं सम्परायं द्वितीयं भजेयं
ततः किम् ? ततः किम् ? ततः किम् ? ततः किम् ?'' ॥४८॥ भुजङ्गप्रयातम् ॥

- इस प्रकार उस महोत्सव में सब का बड़ा उत्साह था । असामान्य परिश्रम से फल भी असामान्य प्राप्त होता है...४३
- गुणरत्नसंवत्सर तप करने वाले, अतिशय ऊर्जा वाले, इस तपस्वी की कीर्ति चारों दिशाओं में फैली...४४
- अपनी यात्रा से जिसने पृथ्वी का नाप प्राप्त कर लिया है, साथ ही विद्वानों के लिए भी जो वचनातीत हैं ऐसी तपस्वी की महिमा का वर्णन करने में कौन समर्थ है ?... ४५
- इस प्रकार लोगों के द्वारा पूजित उन्होंने (तपस्वी ने) अहंकार को प्राप्त नहीं किया । समता का अवलंबन करके वे सदा निर्ग्रंथ और निस्तरंग रहे...४६
- स्वरूप के आनंद में लीन ऐसे उन्होंने विभावदशा को प्राप्त नहीं किया। मां की गोद में बैठे बालक को पलंग में कितनी रूचि होगी ?...४७
- तप किया, अरिहंत के स्वरूप का ध्यान किया, धैर्य को धारण किया और ज्ञान का रस पीया-इसके बावजूद यदि मैं दूसरे कषाय (मान) को भजता हूं तो उस तप. ध्यान, धैर्य और ज्ञान से क्या ? (अर्थात् वे सब निरर्थक हैं)...४८

विभाव्यैवं न जातः स, दर्पसर्पात्प्रपीडितः ।
भावधर्मबलात्तेन, विहिता कार्मनिर्जरा ॥४९॥

एवं हि द्व्यधिकाशीतिवारं कृतं तपस्विना ।
मृत्युञ्जयतपो जन्मजरामृत्युविनाशनम् ॥५०॥

अष्टषष्टिशतेष्वस्याऽहःसु दिव्यतपस्विनः ।
उपवासाश्चतुस्त्रिंशच्छतमिताः किलाऽभवन् ॥५१॥

[२]तपसा भावयन् स्वं तु, धर्मबीजं च रोपयन् ।
अगोपयज्जिनेन्द्राऽऽज्ञामाश्रवं लोपयंस्तथा ॥५२॥

अपकारिषु साम्येशोऽकुप्यन् स तपसां निधिः ।
अष्टप्रभावकेष्वार्योऽभूत्पञ्चमप्रभावकः ॥५३॥ युग्मम् ॥

(सूरिपदाऽऽरोहणम्)

अथ सूरिपदं दातुमादिदिशे गणाधिपः ।
सुविनीताय पन्न्यासहंसरत्नतपस्विने ॥५४॥

---

२. तप गुण ओपे रे ! रोपे धर्मने, गोपे नवि जिनआण,
आश्रव लोपे रे ! नवि कोपे कदा, पंचम तपसी ते जाण...३२
''समकित के सडसठ बोल की सज्झाय''

- इस प्रकार भावना करके वे (तपस्वी) अभिमान के सांप से पीडित नहीं हुए और भावधर्म के बल पर उन्होंने कर्मनिर्जरा की...४९
- इस प्रकार इस तपस्वी के द्वारा जन्म-जरा और मृत्यु का नाश करने वाला मासक्षमण तप ८२ बार किया गया...५०
- ६८०० दिनों में इस दिव्य तपस्वी के ३४०० उपवास हुए...५१
- तप से आत्मा को भावित करने वाले, धर्मबीज का आरोपण करने वाले, जिनाज्ञा का गोपन न करने वाले, आश्रव को छोड़ने वाले, अपकारी के प्रति क्रोध न करने वाले ऐसे साम्यता के स्वामी तपस्वी (पंन्यास हंसरत्नविजयजी) आठ प्रभावकों में से पांचवे क्रमांक के प्रभावक (तप प्रभावक) बने...५२-५३

(सूरिपद पर आरूढ हुए)

- अब सुविनीत तपस्वी पंन्यास हंसरत्नविजयजी को आचार्य पद देने के लिए गच्छाधिपतिश्री (सिद्धांत-दिवाकर स्व. श्री जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा)ने आदेश किया...५४

कृतं द्वितीयवारस्य, साशीतिशतसत्तपः ।
मुम्बापुर्यामभूत्तस्य, पारणकमहोत्सवः ॥५५॥

वैक्रमेऽर्थाश्वखौष्ठेऽब्दे (२०७४), ज्येष्ठकृष्णाऽष्टमीदिने ।
सोऽशोकसागराऽऽदीनां, सूरीणां सन्निधावभूत् ॥५६॥

सूरिपदोत्सवस्तस्य, तदनन्तरवासरे ।
जगवल्लभसूर्यादिसन्निधावभवद् मुदा ॥५७॥

ललाटे तिलकं कण्ठे, कण्ठिकाऽङ्गुलिषूर्मिकाः ।
कर्णयोः कुण्डले कम्रे, करयोः करभूषणे ॥५८॥

हृदयं शुभभावानामलङ्कारैरलङ्कृतम् ।
हंसरत्नो रेज एवं, बाह्याभ्यन्तरभूषणैः ॥५९॥ युग्मम् ॥

यथा पुष्पन्धयः पुष्पे, विशति पुष्पजाऽऽप्तये ।
सूरिमन्त्रस्तथा विष्टो, हंसरत्नस्य कर्णके ॥६०॥

- उन्होंने दूसरी बार का १८० उपवास का तप किया और उसका पारणा महोत्सव मुंबई में हुआ...५५
- विक्रम संवत २०७४, ज्येष्ठ वदि ८ के दिन वह पारणा महोत्सव **आ. वि. अशोकसागरसूरि म.** आदि आचार्यों के सांनिध्य में हुआ...५६
- उसके दूसरे दिन (अर्थात् ज्येष्ठ वदि ९) **आ.वि. जगवल्लभसूरि म.** आदि की निश्रा में आनंदपूर्वक उनका (तपस्वी का) सूरिपदोत्सव हुआ...५७
- भाल पर तिलक, कंठ में कंठाभरण, उंगलियों में अंगूठियां, कान में कुंडल और हाथ में सुंदर हस्तभूषण (चंदन से किये गये) तथा शुभभावों के अलंकारों से अलंकृत हृदय-इस प्रकार बाह्य और आभ्यंतर भूषणों से पूज्य पंन्यास हंसरत्नविजयजी चमक उठे...५८-५९
- जैसे पराग की प्राप्ति हेतु भौंरे पुष्प में प्रवेश करते हैं वैसे सूरिमंत्र ने पू. पंन्यास हंसरत्नविजयजी के कान में प्रवेश किया...६०

श्रीसूरिमन्त्रसत्पट्टं, हंसरत्नाय प्राददुः ।
ज्येष्ठाऽऽचार्यास्तथा बन्धुस्तत्त्वदर्शनसूरिराट् ॥६१॥

जापार्थं सूरिमन्त्रस्य, दत्ता च जपमालिका ।
आचार्यहंसरत्नाद्यसूरीत्युद्घोषिताऽभिधा ॥६२॥

(पञ्चप्रस्थानाऽऽराधना)

प्राप्य सूरिपदं सूरिहंसरत्नोऽकरोदहो ! ।
वीर्योल्लासयुतो वर्यपञ्चप्रस्थानसाधनाम् ॥६३॥

विद्यापीठे सती हृद्या, ध्याता तेन सरस्वती ।
वीणापाणिः कलावृन्दधारिणी भवतारिणी ॥६४॥

ततो ध्याता महाविद्यापीठे महापराक्रमा ।
श्रीत्रिभुवनस्वामिनी, शासनरिपुदारिणी ॥६५॥

ततो ध्यातोपविद्यात्मपीठे समृद्धिकारिणी ।
श्रीदेवी मेघवर्णीयमितङ्गमद्वयार्चिता ॥६६॥

- बड़े आचार्य भगवंत ने तथा उनके (तपस्वी के) छोटेभाई आ. तत्त्वदर्शनसूरिजी ने पूज्य पंन्यास हंसरत्नविजयजी को सूरिमंत्र का पट्ट दिया...६१
- जाप हेतु उन्हें (तपस्वी को) जाप की माला दी गई और **आचार्य विजय हंसरत्नसूरि** ऐसा उनका नाम उद्घोषित हुआ...६२

(पंच प्रस्थान की आराधना)

- अहो ! आचार्य पदवी प्राप्त करके वीर्योल्लास से युक्त आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ने सुंदर ऐसी पंच-प्रस्थान की आराधना की...६३
- विद्यापीठ पर सुंदर वीणा है जिनके हाथो में ऐसी कलावृन्द को धारण करनेवाली, भव से तारनेवाली, सरस्वती देवी का उनके द्वारा ध्यान किया गया...६४
- फिर महाविद्यापीठ पर महापराक्रमवाली, शासन के शत्रुओं का वध करनेवाली त्रिभुवनस्वामिनी देवी का ध्यान किया गया...६५
- उसके बाद उपविद्यापीठ पर समृद्धि करनेवाली, श्यामवर्णवाले दो हाथियों से अर्चित श्रीदेवी का ध्यान किया गया...६६

मन्त्रपीठे ततो ध्यातो, यक्षेन्द्रगणिपिट्टकः ।
आगमरक्षणे दक्षः, कक्षीकृताऽऽर्हतश्रुतः ॥६७॥

श्रीमन्त्रराजपीठेऽन्ते, ध्यातो लब्धिमहानिधिः ।
गौतमगणभृद् वीरविनेयो विनयान्वितः ॥६८॥

विनाऽन्तरालमाराद्धमेवं प्रस्थानपञ्चकम् ।
सूरिणा हंसरत्नेन, सर्वमुपोषितैः समम् ॥६९॥

त्रिंशत्सहस्रसम्पृक्तलक्षमितो हि सूरिणा ।
सूरिमन्त्रस्य भूरिश्रीप्रदस्याऽकारि सज्जपः ॥७०॥

(सूरीणां जपनप्रमाणम्)

श्रीनमिऊणपार्श्वेशमन्त्रस्य सुजपं तथा ।
व्यधात् स सद्गुरुः सप्तत्रिंशल्लक्षमितं वरम् ॥७१॥

श्रीनमस्कारमन्त्रस्य जपस्तेन कृतः शुभः ।
सूरिणा हंसरत्नेन धरार्थ(४१)लक्षसम्मितः ॥७२॥

- उसके बाद मन्त्रपीठ पर जो आगम की रक्षा करने में कुशल है, जिसने अरिहंत के श्रुत को स्वीकार किया है उस यक्षेन्द्र गणिपिठक का ध्यान किया गया...६७
- और अंत में मन्त्रराज पीठ पर, लब्धि केभंडार, वीर के शिष्य, विनय से युक्त ऐसे गौतम गणधर का ध्यान किया गया...६८
- इस प्रकार लगातार पांच प्रस्थानों की आ. हंसरत्नसूरि ने संपूर्ण आराधना उपवास के साथ की...६९
- अत्यंत कल्याण करनेवाले सूरिमंत्र का १ लाख ३० हजार जितना जाप उस आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी के द्वारा किया गया....७०

(सूरिदेव द्वारा किये जाप का प्रमाण)

- तथा उनके (तपस्वी के) द्वारा नमिऊण पार्श्वनाथ मन्त्र का ३७ लाख जितना जाप किया गया...७१
- नवकार का शुभ जाप उस तपस्वी आ.वि. हंसरत्नसूरिजी के द्वारा ४१ लाख जितना किया गया...७२

प्रतिनिशं करोत्यष्टाधिकशतमितं जपम् ।
स आविंशतिवर्षेभ्योऽद्यापि नामस्तवस्य तु ॥७३॥

श्रीमहाराष्ट्रदेशस्य, साङ्गलीनगरेऽकरोत् ।
सूरिस्तृतीयवारस्य साशीतिशतसत्तपः ॥७४॥

एवमभ्राजताऽऽचार्यः, सम्यग्जपतपःश्रिया ।
जिनशासनसाम्राज्ये, राजेव शक्रपूजिते ॥७५॥

भक्त्युल्लसितचित्तेन, दूरादेव विलोक्य तम् ।
सम्बोधन्ते मुदा भक्ता, बोधिप्रदमृषीश्वरम् ॥७६॥

तद्यथा-
आत्तांहोविजयानन्द !, प्रेमभानो ! सुविक्रम ! ।
मुनिचन्द्र ! कलापूर्ण !, पुण्यपाल ! महाबल ! ॥७७॥

तपःसाम्राज्यराजेन्द्र ! गुणरत्नमहोदधे ! ।
गुणैषिभ्रमराऽऽराम ! धर्मसूर्योदयोपम ! ॥७८॥

- बीस वर्षों से आज दिन तक प्रतिरात्रि वे १०८ लोगस्स का जाप करते हैं...७३
- महाराष्ट्र के सांगली नगर में उस आचार्य हंसरत्नसूरिजी ने तीसरी बार के १८० उपवास किए....७४
- इस प्रकार वे आचार्य भगवंत इन्द्र से पूजित जिनशासन के साम्राज्य में सम्यक् जाप और तप की लक्ष्मी से राजा की तरह सज उठे ...७५
- यहां भक्ति से उल्लसित चित्त से भक्त बोधि को देनेवाले उस आचार्य भगवंत को दूर से ही देखकर आनंद से संबोधन करते हैं...७६
- वह इस प्रकार- हे पाप पर विजय के आनंद को प्राप्त करने वाले ! प्रेम केसूर्य ! सुंदर पराक्रम वाले ! मुनियों में चन्द्र ! कलाओं से पूर्ण ! पुण्य का पालन करने वाले ! महान बलवाले !...७७
- तपरूपी साम्राज्य के महाराजा ! गुणरूपी रत्नों के लिए सागर समान ! गुणकांक्षी भौंरो के लिए उद्यान समान ! धर्मरूपी सूर्य के उदय समान !....७८

भद्रङ्कर ! यशोरत्नाऽधर्मजिद् ! मुक्तिवल्लभ ! ।
भव्यकुमुदचन्द्राऽऽत्मदर्शनशुद्धिकारक ! ॥७९॥

लब्धिसिद्धिकराऽऽनन्दवर्धनाभयशेखर ! ।
सङ्घसरोमहापद्म ! नररत्न ! गुणोदय ! ॥८०॥

चन्द्रानन ! महाबोधे ! श्रमणचन्द्र ! भक्तिमन् ! ।
युगभूषण ! विज्ञानवारिधे ! भव्यदर्शन ! ॥८१॥

कल्पजय ! जगच्चन्द्र ! मोक्षरते ! महोदय ! ।
ज्ञानविमल ! लावण्यपूर्ण ! हृदयवल्लभ ! ॥८२॥

विस्तीर्णनिजतापस्यजयघोष ! जितेन्द्रिय ! ।
जिनचन्द्रेक्षणेनोच्चैः प्रवर्धमानसागर ! ॥८३॥

शासनमानसे राजहंस ! सद्धर्मरक्षित ! ।
धर्मधुरन्धर ! ज्ञानप्रमुखाऽऽत्मत्रिलोचन ! ॥८४॥

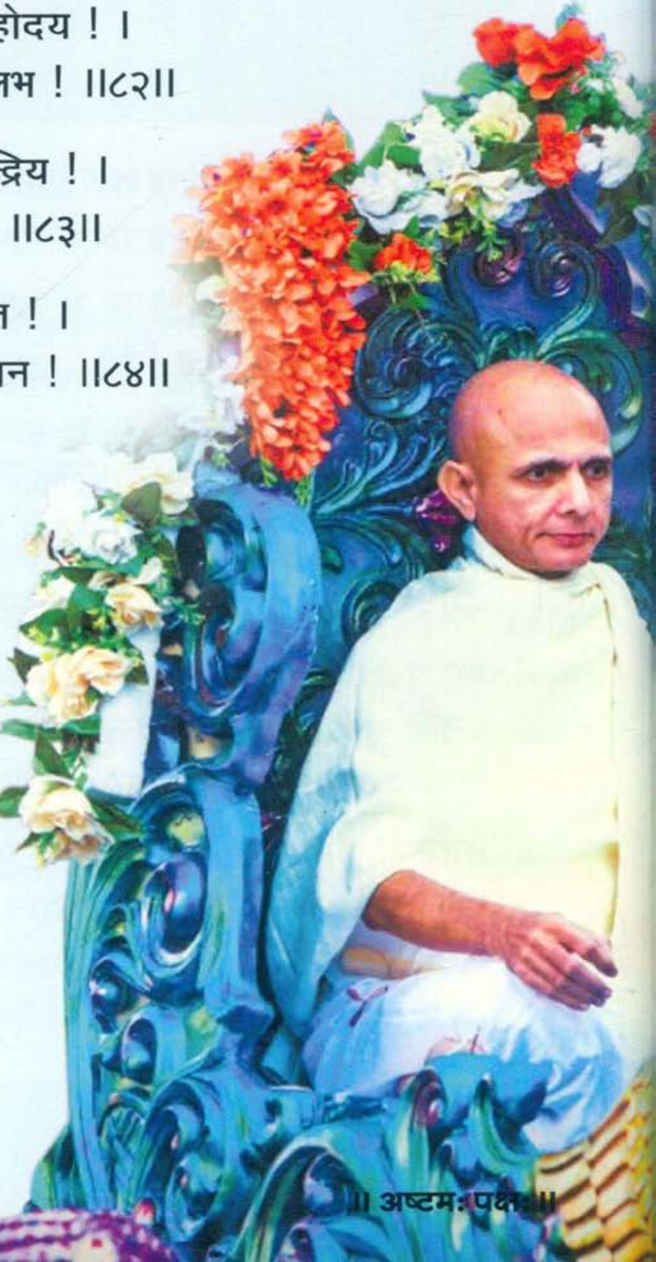

- हे कल्याण को करनेवाले ! यशरूपी रत्नवाले ! अधर्म को जीतने वाले ! मुक्ति है प्रिय जिन्हें ऐसे ! सज्जनरूपी चंद्रविकासी कमल के लिए चन्द्रसमान ! आत्मा और दर्शन की शुद्धि कराने वाले !...७९
- लब्धि और सिद्धि को करनेवाले ! आनंद को बढाने वाले । अभय (=साधुओं) में श्रेष्ठ ! संघरूपी सरोवर के विशाल कमल समान ! मनुष्यों में रत्न ! गुण के उदयसमान !...८०
- चन्द्र जैसे मुखवाले ! महान समकित वाले ! मुनियों में चन्द्रसमान ! भक्तिवाले ! युग के भूषण । ज्ञान के सागर ! भव्य हैं दर्शन जिनके ऐसे !...८१
- नियमों के विषय में जय प्राप्त करने वाले ! जगत में चंद्रसमान ! मोक्ष की रति वाले ! महान उदय वाले ! ज्ञान से निर्मल ! लावण्य से पूर्ण ! (भक्तों के) हृदय को प्रिय !...८२
- खुद के तप का जयघोष जिनका विस्तृत है ऐसे ! जिनेन्द्रिय ! जिनेश्वररूपी चन्द्र को देखने से जो अत्यंत बढते (उछलते) सागर जैसे हैं वे !...८३
- शासनरूपी मानसरोवर में स्थित राजहंस ! सद्धर्म से रक्षित ! धर्म की धुरा को धारण करने वाले ! ज्ञान आदि रूप तीन चक्षु वाले !...८४

सुप्तभव्यारविन्दालिप्रबोधचन्द्र ! नीतिमन् ! ।
विश्वरत्न ! चिदानन्दनिमग्न ! तत्त्वदर्शन ! ॥८५॥

निर्निदान ! गुरो ! वीर ! सुमनोहरकीर्तिभाक् ! ।
ॐकारपदसद्ध्यातो ! रे हंस ! रत्नसुन्दर ! ॥८६॥

एवं सम्बोधनैर्भक्ताः सम्बुध्य नन्दयन्ति तम् ।
सोऽप्युदञ्चितहस्ताभ्यां, भक्तेभ्यो दत्त आशिषम् ॥८७॥

नाऽऽशिषं केवलं दत्ते, श्रावयति परं शुभम् ।
आक्षेपिण्यादिभिश्चारु, तेभ्यो हितोपदेशनम् ॥८८॥

(सूरीणामुपदेशः)
(निम्नोक्ता अष्टश्लोका आशावारीरागेण गीयन्ते)

भव्यजना ! भवभ्रमणप्रपञ्चं,
शृणुतोत्तमकुलजा ! जिनकथितम् ।
महति नगरेऽनामुखानन्ते,
भ्राम्यति जीवोऽलब्धपर्यन्ते...॥८९॥

विषयकदन्नविमूर्च्छितचित्त-
स्त्यजति स समताऽमृतमतिरम्यम् ।
मिथ्यामतिजर्जरवसनाऽऽवृत-
जीवो भजति द्रमकौपम्यम्...॥९०॥

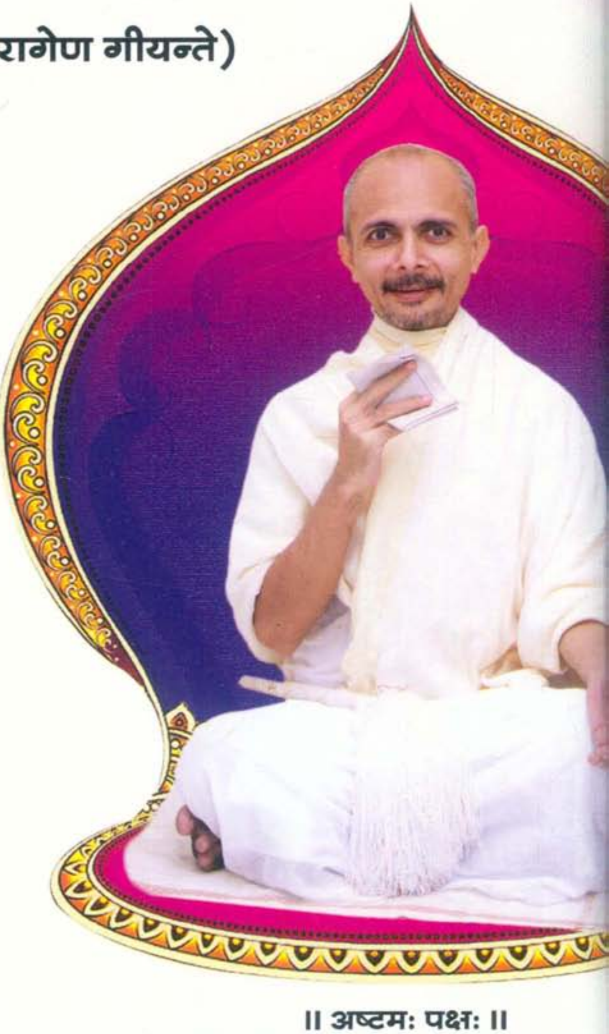

- सोये हुए भव्यजीव-रूपी चंद्रविकासी कमल के समुह को जगाने के लिए चन्द्रसमान ! नीतिवान ! विश्व के रत्नसमान ! ज्ञान के आनंद में मग्न ! तत्त्व को देखने वाले !...८५
- निदानरहित ! वीर ! मनोहर कीर्ति को भुगतने वाले ! ॐकार पद का ध्यान करने वाले ! रत्न जैसे सुंदर ! गुरूदेव हंसरत्नसूरिजी !...८६
- इस प्रकार अनेक संबोधनों के द्वारा भक्त उन्हें (तपस्वी को) संबोधित करते हैं और वे (तपस्वी) भी भक्तों को हाथ उठाकर आशिष देते हैं...८७
- मात्र आशीर्वाद ही नहीं देते परन्तु आक्षेपिणी आदि से सुंदर शुभ हितोपदेश भी सुनाते हैं...८८

(सूरिभगवंत का उपदेश)

- वह इस प्रकार-हे उत्तमकुल में उत्पन्न होने वाले भव्यजीव ! जिनेश्वर प्रभु ने कहे हुए भवभ्रमण के प्रपंच को सुनिए । अनादि अनंत ऐसे अलब्ध पर्यन्त नाम के नगर में (=संसार में) जीव भटकता है...८९
- विषयरूपी कदन्न से मूर्च्छित है चित्त जिसका ऐसा वह जीव अतिरम्य ऐसे समतारूपी अमृत को छोड़ देता है । मिथ्यामति नाम के जीर्ण वस्त्र से लिपटा हुआ जीव उस द्रमक (भिखारी) की उपमा पाता है...९०

सञ्ज्ञाडिम्भा यष्टिप्रहारं,
कुर्वन्ति तस्योपरि हन्त ! ।
गतिषु भ्रमतो भोगविलिप्सोः,
सन्ति शरण्याः केऽपि न सन्तः...॥९१॥

राजते शासनराजनिवासः,
परिचितप्रायः स द्रमकाय ।
कर्मस्थितिबाहुल्यवशान्न,
तत्र रुचिर्भवति भद्राय...॥९२॥

किन्तु सुस्थितराजप्रसादात्,
कर्मविवरद्वाःपालस्तत्र ।
लघूभूतकर्मस्थितिं जीवमेनं,
वेशयति निष्पुण्यकसञ्ज्ञम्... ॥९३॥

धर्मप्रतिबोधकः करुणार्द्र,
उपचाराय यतते तस्य ।
अहह ! परं शङ्काऽचलरूढः,
प्रत्ययवान् भवति न विमूढः...॥९४॥

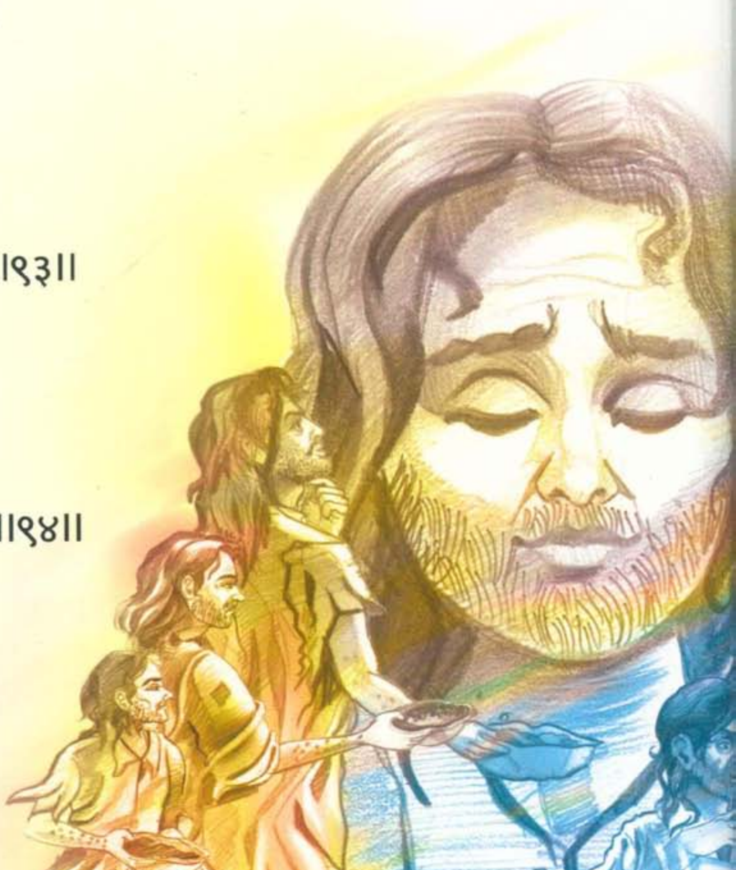

- संज्ञारूपी बालक उस पर लकडियों के प्रहार करते हैं । अरे ! भोग की इच्छा रखने वाले और चार गति में भटकने वाले उस जीव के लिए कोई भी सज्जन शरणभूत नहीं बनते...९१
- (वहां) शासनरूपी राजमहल है जो लगभग द्रमक को परिचित है फिर भी कर्मस्थिति अधिक होने से उस भद्र को उसके विषय में रूचि नहीं होती...९२
- परंतु सुस्थित राजा (प्रभु) की कृपा से, कर्मविवर नाम का द्वारपाल कर्म की स्थिति जिसकी अल्प हो चूकी है ऐसे उस निष्पुण्यक नाम के जीव को उस राजमहल में प्रवेश दिलाता है...९३
- करूणा से आर्द्र धर्मप्रतिबोधक (गुरू) उस (जीव) के उपचार हेतु प्रयत्न करते हैं । किन्तु, अफसोस ! संदेह के पर्वत पर आरूढ ऐसा वह (जीव) (धर्मप्रतिबोधकर गुरू के प्रति) विश्वासवाला नहीं बनता...९४

दापितं तद्दययाऽऽदेशाद्,
महानसभर्तुः पाकप्रकोष्ठात् ।
भेषजत्रयमिह मोहहताय,
निष्पुण्यकद्रमकाय निःस्वाय...।।९५।।

विमलालोकाञ्जनसंयोगा-
दज्ञानाऽऽमयः क्षयति तस्य ।
तत्त्वप्रीतिकरपानीययोगा-
च्छुद्ध्यति रे ! पात्रं चित्तस्य...।।९६।।

बोभवति परमान्नप्रयोगाद्,
विरतिरतिर्हृदये द्रमकस्य ।
किञ्च-नियुक्ता सन्मतिदासी,
स्यान्न यतः स कदन्नविलासी...।।९७।।

भावाऽऽरोग्यं सम्प्राप्यैवं,
सद्गुरूणां कृपयाऽतिप्रशस्यम् ।
आप्नोति द्रमकश्च क्रमेण,
परमाऽऽनन्दपदस्य रहस्यम्...।।९८।।

***

- रसोइये (धर्मप्रतिबोधकर) के आदेश से रसोईघर में से लायी गई तीन औषधियां दरिद्र, मोह से पराजित निष्पुण्यक द्रमक को दासी के द्वारा दी गयी...९५
- अरे ! विमलालोक (ज्ञान) अंजन संयोग से उसका अज्ञानरूपी (चक्षु का) रोग क्षय होता है और तत्त्वप्रीतिकर (दर्शन) पानी के योग से उसके मन का पात्र स्वच्छ होता है...९६
- परमान्न (चारित्र) के प्रयोग से द्रमक के हृदय में विरति के प्रति अत्यंत राग उत्पन्न होता है। साथ ही, सद्बुद्धि नाम की दासी को वहां रखा जाता है जिससे वह द्रमक वापस कदन्न भोजन का (विषयों का) विलासी न बने...९७
- इस प्रकार सद्गुरू की कृपा से अत्यंत प्रशंसनीय भाव-आरोग्य को प्राप्त करके द्रमक क्रम से परमानंदपद (मोक्ष) के रहस्य को प्राप्त करता है...९८

***

(अनुष्टुप्)

सङ्क्षेपेण भवभ्रान्तेः, प्रपञ्चमेवमात्मनः ।
कथयति गुरुर्हंसरत्नसूरिः श्रुतिप्रियम् ॥९९॥

श्रोतारो मधुरां वाणीं, श्रुत्वा लान्ति विरागताम् ।
संवेगाऽऽस्तिक्यनिर्वेदानुकम्पोपशमांस्तथा ॥१००॥

स्थानान्यध्यवसायानां क्रमशः प्रविशुद्ध्यति ।
क्षयन्ति तानि पापानां, श्रवणात्तस्य सद्गिरः ॥१०१॥

''तस्य ध्यानतपोवाणीसाधनागुणसम्पदः ।
सन्तु न'' इति वाञ्छन्ति, भक्ता जिनेन्द्रसम्मुखम् ॥१०२॥

अद्भुतं गुणसौन्दर्यमौदार्यादिसमन्वितम् ।
कौशल्यं तस्य निःशल्यमनक्ष श्लाघ्यतां गतम् ॥१०३॥

मङ्गलं दर्शनं तस्य, मङ्गलं वचनं तथा ।
मङ्गलं पुण्यसाम्राज्यं, मङ्गलं कृत्स्नजीवनम् ॥१०४॥

- इस प्रकार संक्षेप से कर्णप्रिय ऐसे आत्मा के भवभ्रमण के प्रपंच को गुरू आ.वि. हंसरत्नसूरिजी कहते हैं...९९

- श्रोता मधुर वाणी को सुनकर विरागता को तथा संवेग, निर्वेद, अनुकंपा, आस्तिकता और उपशम को प्राप्त करते हैं...१००

- उनकी वाणी सुनने से अध्यवसाय-स्थान क्रमशः अत्यंत शुद्ध होते जाते हैं और पापस्थानक क्षीण हो जाते हैं...१०१

- ''उनके (तपस्वी के) ध्यान, तप, वाणी, साधना और गुणसंपत्ति हमारी बने ''इस प्रकार भक्त जिनेश्वर प्रभु के समक्ष याचना करते हैं...१०२

- उदारता आदि से युक्त अद्भुत उनका गुणसौंदर्य, कौशल्य और शल्यरहित मन प्रशंसा के योग्य बनेगा...१०३

- (उनके) दर्शन मंगल है, वचन मंगल है, पुण्य साम्राज्य मंगल है तथा संपूर्ण जीवन मंगल है ...१०४

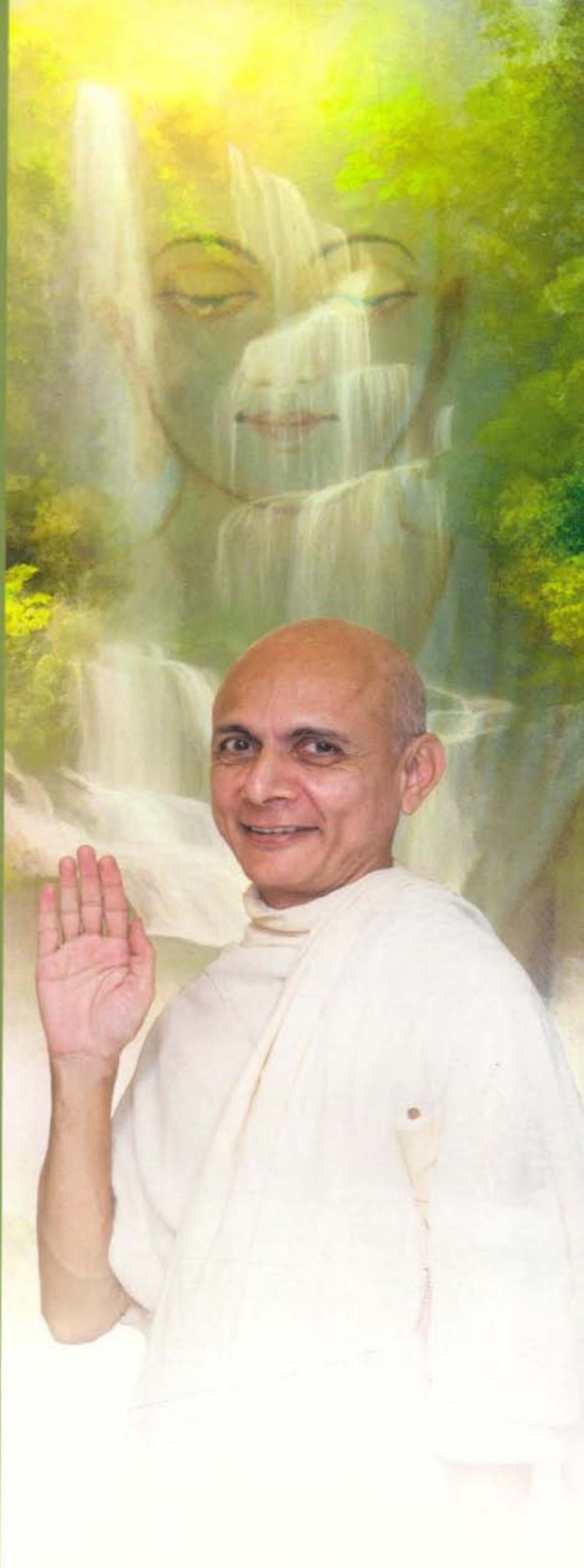

नत्या नत्यर्हताप्राप्तिः, स्तवनात्स्तुत्यसम्पदः ।
स्पर्शनात् शुचितास्पर्शो, गुरुः सर्वार्थसिद्धिदः ॥१०५॥

इत्येवं गुरुमाहात्म्यं, भावयन्तः स्वचेतसि ।
लभन्ते भवयात्रायां, भव्यास्ते पुण्यशम्बलम् ॥१०६॥

सूरीशो हंसरत्नोऽयं, पुरस्कुर्वन् स्वसाधनाम् ।
ज्ञायतां च यदग्रे किं, करिष्यति तपोनिधिः ॥१०७॥

प्रदर्शितं दिव्यतपस्विनोऽस्मिन्
सर्गे तपस्याजपनप्रमाणम् ।
निःश्रेयसार्थं पठनं ह्यमुष्य
भूयादिति प्रार्थय ईश्वराग्रम् ॥१०८॥ उपजातिः ॥

॥ अष्टमः पक्षः समाप्तः ॥

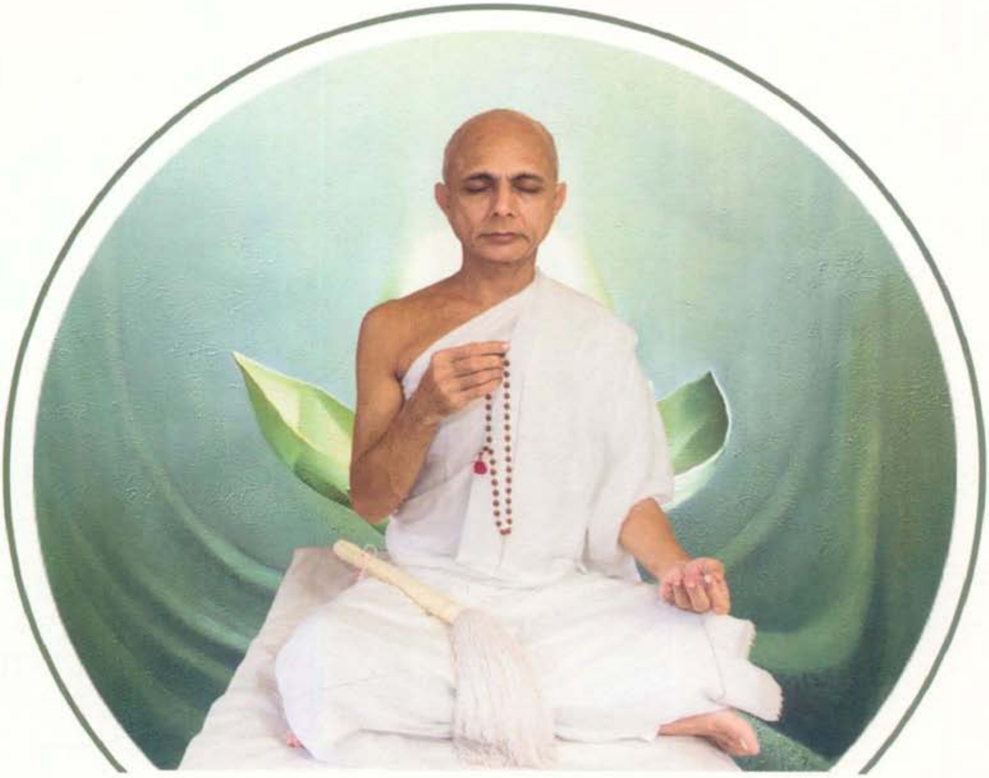

- नमन से नमस्कार की योग्यता प्राप्त होती है, स्तवना से स्तुत्य संपदा प्राप्त की जा सकती है, स्पर्श से शुद्धि का स्पर्श होता है - ऐसे गुरूदेव सर्व अर्थों की सिद्धि देने वाले हैं...१०५
- इस प्रकार अपने मन में गुरू की महिमा को गाने वाले भव्य जीव भव की यात्रा में पुण्य का पाथेय प्राप्त करते हैं...१०६
- अपनी साधना को आगे बढाने वाले तपस्वी आचार्य विजय हंसरत्नसूरि आगे क्या करेंगे वह (आगे के पक्ष में) जानिए...१०७
- इस पक्ष में दिव्य तपस्वी के तप और जप का प्रमाण दिखाया गया । इस (पक्ष) का पठन मोक्ष के लिए हो इस प्रकार मैं प्रभु के समक्ष प्रार्थना करता हूं...१०८

॥ आठवां पक्ष समाप्त ॥

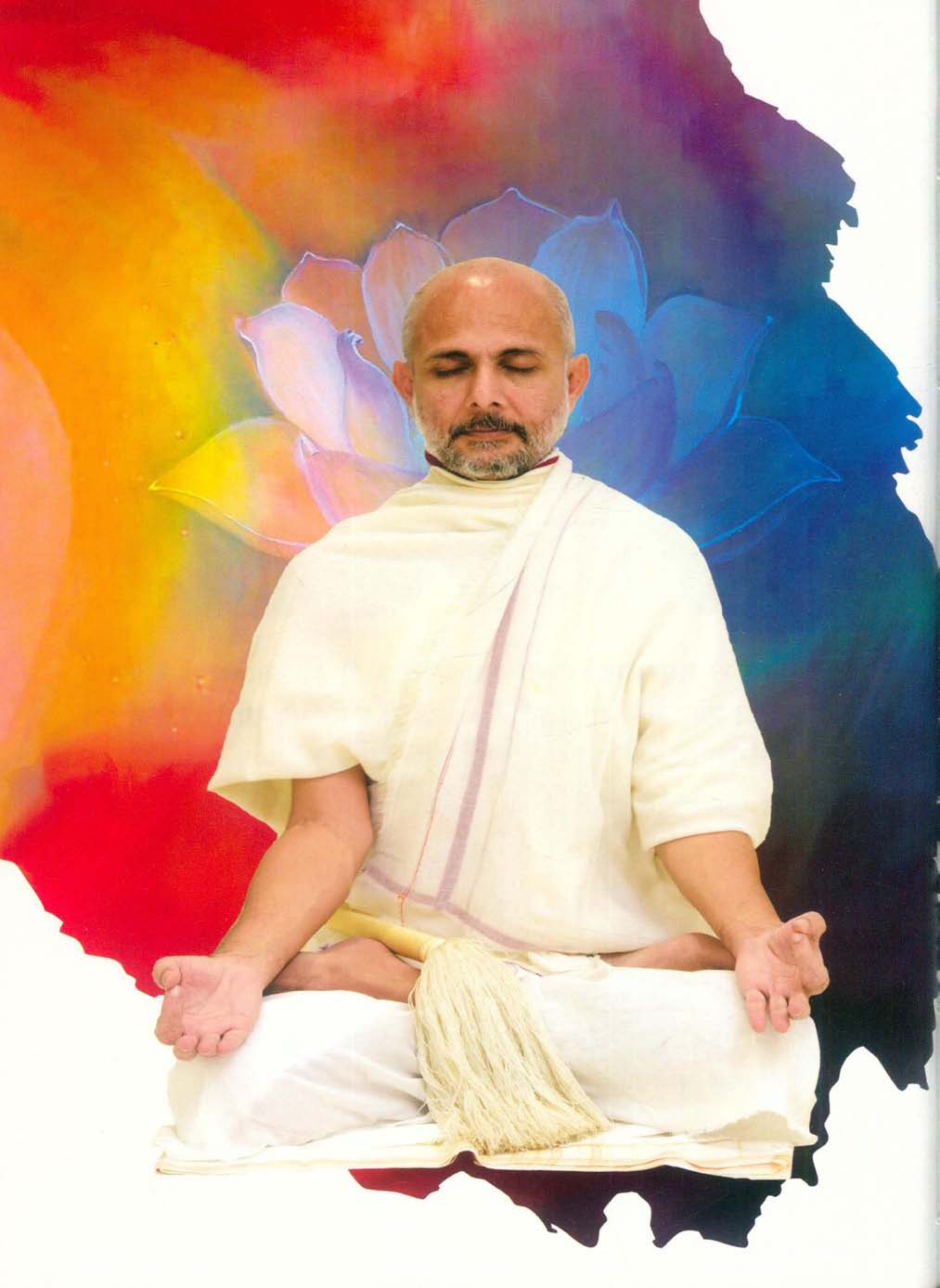

चित्रकाव्यम्

हंसबन्धः

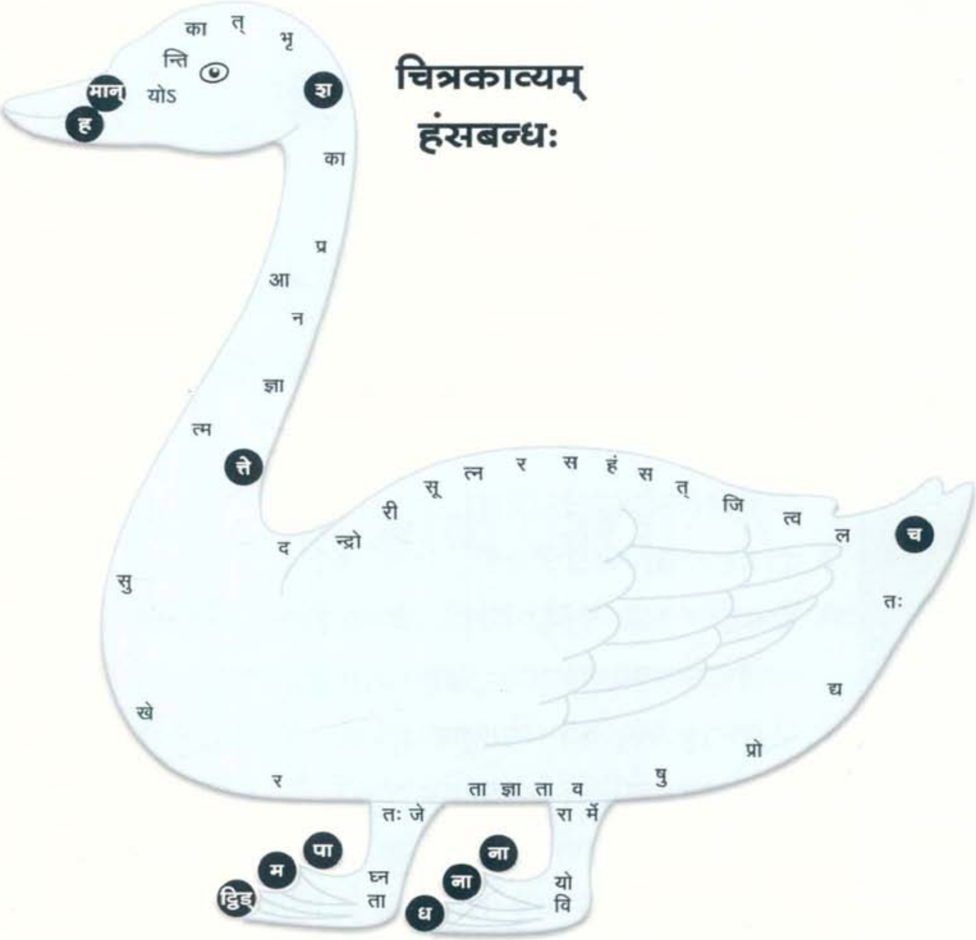

<u>शश</u>भृत्कान्ति**<u>मान्</u> <u>मान्</u>**यो**<u>ऽहह !</u>** आत्मसुखे रतः ।
<u>पापा</u>रिः **<u>मम</u>**ता**<u>द्विड्</u> <u>द्विड्</u>**-जेता ज्ञाता वरा**<u>ऽऽनन</u>**ः ।।१।।
यो **<u>नाना</u>**वि**<u>धध</u>**र्मेषु प्रोद्यत**<u>श्चच</u>**लत्वजित् ।
स हंसरत्नसूरीन्द्रो, दत्ते ज्ञानप्रका**<u>शश</u>**म् ।।२।। युग्मम् ।।

अर्थ : अरे ! चंद्र जैसी कांति वाले, (सज्जनों को) मान्य, आत्मसुख में रत, पाप के दुश्मन, ममता के दुश्मन, दुश्मन को जीतने वाले, ज्ञाता, सुंदर मुखवाले साथ ही जो विविध धर्म में उद्यत है, चंचलता को जीतनेवाले हैं वे आचार्य विजय हंसरत्नसूरीश्वरजी म.सा. ज्ञान के प्रकाश का आनंद देते हैं ।

लक्षणम्– मस्तकेन समारभ्य, चञ्चुद्वयं प्रपूर्य च ।
ततः पादौ ततः पत्रं, हंसबन्ध इति स्मृतः ।।

॥ नवमः पक्षः ॥

(महामारिसम्भवः, लोकबन्धः, चतुर्थषाण्मासिकतपश्च)

निरुपचरितसौख्यदो निर्निदानव्रतः,
स्वर्गजैरक्षतैरक्षतैरर्चितः,
परमगहनव्रात्यचर्याचरः, कर्मजिद्
विश्वविश्वे च साश्चर्यचर्यो विभुः ।
विदितसकलतत्त्वसारः प्रशान्तप्रभः,
पङ्किलांहःसरःशोषयित्नूपमः,
नरकमनुजदेवतिर्यक्त्वसन्मोचक-
-स्तं जिनेन्द्रं प्रणम्येह पक्षं ब्रुवे ॥१॥ दण्डकवृत्तम् ॥

रसभयखभुजाब्दमध्येऽथ (२०७६) विश्वे हहा !
चीनदेशोद्भवैषा महेतिः सृता,
ज्वरकफविधया मनःस्तापिका, सङ्क्रमे
पट्व्यरे ! रे ! कृतान्तप्रियेवाऽपरा ।
अखिलविषयतापिनी लोकदुर्दैवजा,
साम्यभावेन सर्वाऽऽततायिन्यहो !,
अनयनविषया मृतेः कारणं प्रायशो,
दुश्चिकित्स्या महाभीतिदा दर्दमा ॥२॥ दण्डकवृत्तम् ॥

॥ नौवा पक्ष ॥

(महामारि, Lockdown और चौथी बार १८० उपवास)

- निरूपचरित सुख देने वाले, निदान बिना के व्रत वाले, देवों के द्वारा अक्षत=अखंड चावलों से अर्चित, परम गहन ऐसे अवधूत की चर्या से सुंदर, कर्म को जीतने वाले, आश्चर्यकारी चर्यावाले, समस्त विश्व के विभु, समस्त तत्त्वों का सार जान लिया है जिन्होंने ऐसे प्रशंत प्रभावाले, कीचड़वाले पापरूपी सरोवर को सूखाने के लिए सूर्य समान, नरकत्व-मनुष्यत्व-देवत्व और तिर्यंचत्व... इन सबसे मुक्त करने वाले ऐसे जिनेश्वर को नमन करके मैं नौवे पक्ष को कहता हूं...१
- (वि.सं.) वर्ष २०७७ में चीन देश (चाइना) से उत्पन्न होनेवाली, बुखार-कफ के द्वारा मन को परेशान करने वाली, संक्रमण के स्वभाव वाली, अरे ! मानो यमराज की दूसरी पत्नी न हो ऐसी, समस्त देशों को पीडित करने वाली, जगत के दुर्भाग्य से पैदा होने वाली, समानता से अहो ! सब को परेशान करने वाली, जो नयन के लिए अगोचर है ऐसी, प्रायः मृत्यु का कारण, दुश्चिकित्स्य, महाभय देने वाली, कष्ट से दमन की जा सके ऐसी महामारी विश्व में फैल गयी...२

प्रदत्तं कोरोनेत्यभिहितममुष्यै बुधजनैः,
समन्ताद् वृद्धायै, स्थगितजनयात्रादिकृतये ।
भ्रमन्त्यै छन्नायै, भुवि विविधदेशाटनमिषाद्,
न कोऽप्यासीद्रोधः, प्रहृततनुमत्सौख्यततये ॥३॥ शिखरिणी ॥

साऽत्राऽऽगता भारतराष्ट्रमध्ये,
संसर्गयोगात्प्रसृता जनेषु ।
उद्घुष्टवान् लोकहिताय लोक-
-बन्धं तदा शासकसर्वकारः ॥४॥ इन्द्रवज्रा ॥

(लोकबन्धवर्णनम्)

गृहाद् बहिर्नैव कदाऽपि गम्यं,
व्यापार उज्झ्यो न वृथाऽटनीयम् ।
मन्ये प्रजातानि नियन्त्रणेन,
गृहाणि कारागृहसन्निभानि ॥५॥ उपजाति ॥

॥ शृङ्गाररसः ॥

धृत्वा किरीटं कुमनस्कसञ्ज्ञं,
विरूपरूपाऽपि कृतान्तकान्ता ।
क्षिप्रं जनानां हृदयं स्पृशन्ती,
विराजते साऽत्र महेतिराज्ञी ॥६॥ उपजातिः ॥

- चारों ओर से बढने वाली, जिसने लोकयात्रा को रोक दिया है ऐसी, भूमि पर देशाटन के बहाने से छुप-छुपकर घुमने वाली, जिसने जीवों के सुख के समुह को हर लिया है ऐसी, उस महामारि को ''कोरोना'' इस प्रकार बुद्धिमानों के द्वारा नाम दिया गया और उसे किसी भी प्रकार की रोक-टोक नहीं थी...३
- वह महामारी इस भारतदेश में आयी और संपर्क से लोगों में फैली, तब लोगों के हित के लिए शासक पक्ष ने Lockdown की घोषणा की...४

(Lockdown का वर्णन)

- ''घर से बाहर कभी नहीं जाना, व्यापार-धंधे छोड़ देना तथा घुमना नहीं'' (इस प्रकार के) नियंत्रणों से मानो घर जेल जैसे हो गये ऐसा मेरा मानना है...५
- कुमनस्क नाम के मुकुट को धारण करके कुरूप होने पर भी यम को प्रिय, तुरन्त लोगों के हृदय को स्पर्श करने वाली ऐसी महामारी नाम की रानी शोभा दे रही है...६

॥ हास्यरसः ॥

क्षौति त्विहैकः पिदधाति वक्त्र-
-मन्यस्तृतीयः स्वकरौ प्रमार्ष्टि ।
चतुर्थ आसेवत औषधं रे !
तेभ्यस्तथाऽन्त्यः किल याति दूरे ॥७॥ उपजातिः ॥

॥ भयानकरसः ॥

भीता जना वीक्ष्य महेतिदैत्यं,
सूक्ष्मं महाऽऽपायकरं परं तम् ।
प्राणान् हरन्तं तु विनाऽपि शस्त्रं,
प्रच्छन्नरूपं च विनाऽपि वस्त्रम् ॥८॥ इन्द्रवज्रा ॥

॥ करुणरसः ॥

केचिद् रुदन्तीह यथा- ''हहा ! मे,
मृताः प्रिया रे ! स्वजना महेत्या'' ।
केचित्पुनः सङ्क्रमणेन चाऽऽर्ताः,
क्रन्दन्ति प्रोञ्छन्ति च नेत्रनीरम् ॥९॥ उपजातिः ॥

॥ रौद्ररसः ॥

प्रविश्य तूर्णं किल फुप्फुसेऽयं,
श्वासावरोधं कुरुते प्ररौद्रः ।
क्रूरोऽदयो घातिगुरुस्तथोग्रो,
महेतिरक्षोऽसुमतः प्रहन्ति ॥१०॥ उपजातिः ॥

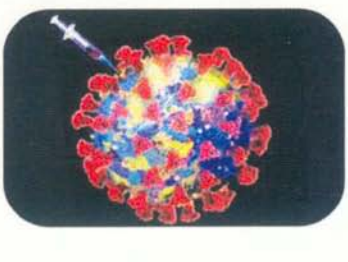

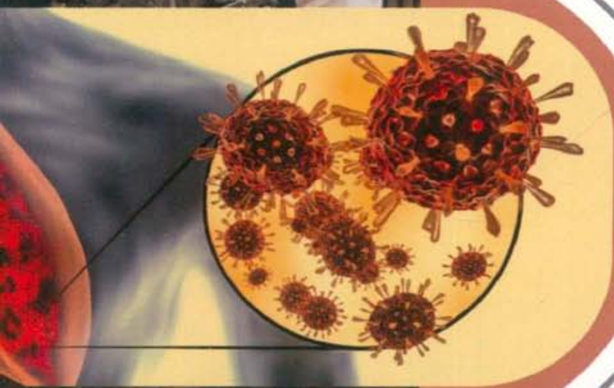

- पहला छींक खाता है, दूसरा मुंह ढंक देता है, तीसरा अपने हाथ धोता है, चौथा दवाई लेता है और आखरी अरे ! उन सबसे दूर चला जाता है । (ऐसी हास्यास्पद अवस्था लोकडाउन में होती थी)...७
- लोग सूक्ष्म लेकिन बड़े दुष्परिणामों को करने वाले ऐसे महामारिरूपी दानव को देखकर डर गये । जो बिना शस्त्र के भी प्राणों को हर लेता है और बिना वस्त्र भी गुप्तरूप है...८
- कुछ लोग रोते हैं, जैसे कि- ''हाय ! मेरे प्रिय स्वजन महामारि से मर गये ।'' तो कुछ संक्रमण से पीडित होकर क्रंदन करते हैं और आंसू पौंछते हैं...९
- अत्यंत रौद्र, क्रूर निर्दय, घातकों में बड़ा तथा उग्र ऐसा महामारि नाम का राक्षस तुरन्त फेफड़े में घुसकर श्वास को रोक देता है और जीवों को मार डालता है...१०

॥ बीभत्सरसः ॥

रे ! श्लेष्मलालाविलमास्यमङ्गं,
कृशं भृशं क्लान्तमिहाऽसु नृणाम् ।
भवन्ति यस्या महता महिम्ना,
सेतिर्जुगुप्साजननी मताऽस्ति ॥११॥ उपजातिः ॥

॥ अद्भुतरसः ॥

तीर्थं न भक्ता, वनिका न युग्माः,
शाला न बालाः, सुपथो न पान्थाः ।
हट्टो न चेक्ष्यन्त इहाऽऽपणेशा-
-स्तदद्भुतं दुर्ललितं महेत्याः ॥१२॥ उपजातिः ॥

॥ वीररसः ॥

एवं महेत्यामपि वैद्यमुख्या-
-श्चिकित्सया ते प्रहरन्ति पीडाम् ।
उत्साहपूर्णा नहि बिभ्यति तद्-
-भीत्या स्वसेवारसपानपीनाः ॥१३॥ उपजातिः ॥

॥ शान्तरसः ॥

''महेतिग्रस्ताः सुजनास्तु शीघ्रं,
स्वस्था भवेयुः कृपया जिनस्य ।''
एवं विचिन्त्य प्रमनाः प्रशान्तः,
सन्ध्यायतीशं मुनिसङ्घ एषः ॥१४॥ उपजातिः ॥

- अरे ! जिसकी बड़ी महिमा से लोगों का मुख श्लेष्म और लार से मलिन होता है, शरीर कमजोर हो जाता है और मन बहुत थक जाता है वह महामारि जुगुप्सा की जननी के रूप में मानी गयी है...११
- तीर्थ है, परन्तु भक्त नहीं हैं, उद्यान है परन्तु दंपत्ति नहीं हैं, शाला है परन्तु बच्चे नहीं है और यहां दुकाने दिखती है परन्तु व्यापारी नहीं हैं। यह इस महामारि का तूफान है...१२
- इस प्रकार महामारि में भी खुद की सेवा के रसपान से उन्नत, उत्साह से भरे वैद्य आदि उस महामारि के डर से डरते नहीं है और चिकित्सा द्वारा पीड़ा को दूर करते हैं...१३
- परमात्मा की कृपा से जो लोग महामारि से ग्रस्त हुए हैं वे शीघ्र स्वस्थ बने इस प्रकार सोचकर प्रसन्न मन वाला, प्रशांत मुनियों का यह समुह प्रभु का ध्यान करता है...१४

एवं रसा हन्त ! किलाऽनुभूता-
-स्तल्लोकबन्धे विविधाऽसुमद्भिः ।
सामग्र्यभावाद् व्यथिताः प्रजाता-
-स्ते पाशबद्धा इव गेहमध्ये ॥१५॥ इन्द्रवज्रा ॥

यान्त्यन्यगेहे न प्रयोजनेन,
विनैव सङ्क्रान्तिभियाऽसुमन्तः ।
यथा विना कारणमेति भिक्षा-
-र्थं स्थापनासत्ककुले मुनिर्न ॥१६॥ उपजातिः ॥

यो यानसम्मर्दभरः किलाऽऽसीत्,
सोऽद्यैकताभावरतोऽस्ति मार्गः ।
आशास्तथा या ध्वनिताः सदाऽऽसं-
-स्ता मौनभाजोऽहह ! सन्ति शान्ताः ॥१७॥ इन्द्रवज्रा ॥

शत्रुञ्जयः शङ्खपुरी तथाऽन्य-
-तीर्थानि रिक्तानीह सन्ति भक्तैः ।
मन्येऽर्गलीभूतमवर्णकर्म,
द्वाराणि तेषां पिहितानि यस्मात् ॥१८॥ इन्द्रवज्रा ॥

जना अनाप्त्वा प्रभुदर्शनादिं,
गृहे तदाकारविकल्पनेन ।
प्रपूजयन्तो निजभावनाभि-
-र्महेतिकाले स्तुवते जिनेन्द्रम् ॥१९॥ उपेन्द्रवज्रा ॥

- अरे ! इस प्रकार (नौ) रसों का अनुभव लोकडाउन में विविध जीवों के द्वारा किया गया और वे सामग्री के अभाव से घर में जंजीरों से बंधे व्यक्तियों की तरह व्यथित हुए...१५
- जैसे बिना प्रयोजन मुनि भिक्षा के लिए स्थापनाकुल में नहीं जाता वैसे लोग संक्रमण के भय से बिना प्रयोजन दूसरों के घर नहीं जाते थे...१६
- जो सदा वाहनों की भीड़ से भरा हुआ था वह मार्ग आज एकत्वभाव में रत है तथा जो दिशाएं सदा ध्वनित थी वे अरे रे ! आज शांत हैं और मौन धारण की हुई हैं...१७
- शत्रुंजय, शंखेश्वर तथा अन्य तीर्थ भक्तों से खाली हैं । जिस कारण से उन तीर्थों के द्वार बंद हैं उस कारण से अशुभ कर्म द्वार की कड़ी बना है ऐसा मैं मानता हूं...१८
- लोग प्रभु-दर्शन आदि न मिलने पर घर पर ही प्रभु के आकार की कल्पना करके अपनी भावनाओं से पूजा करते हुए महामारि के नाश हेतु प्रार्थना करते हैं...१९

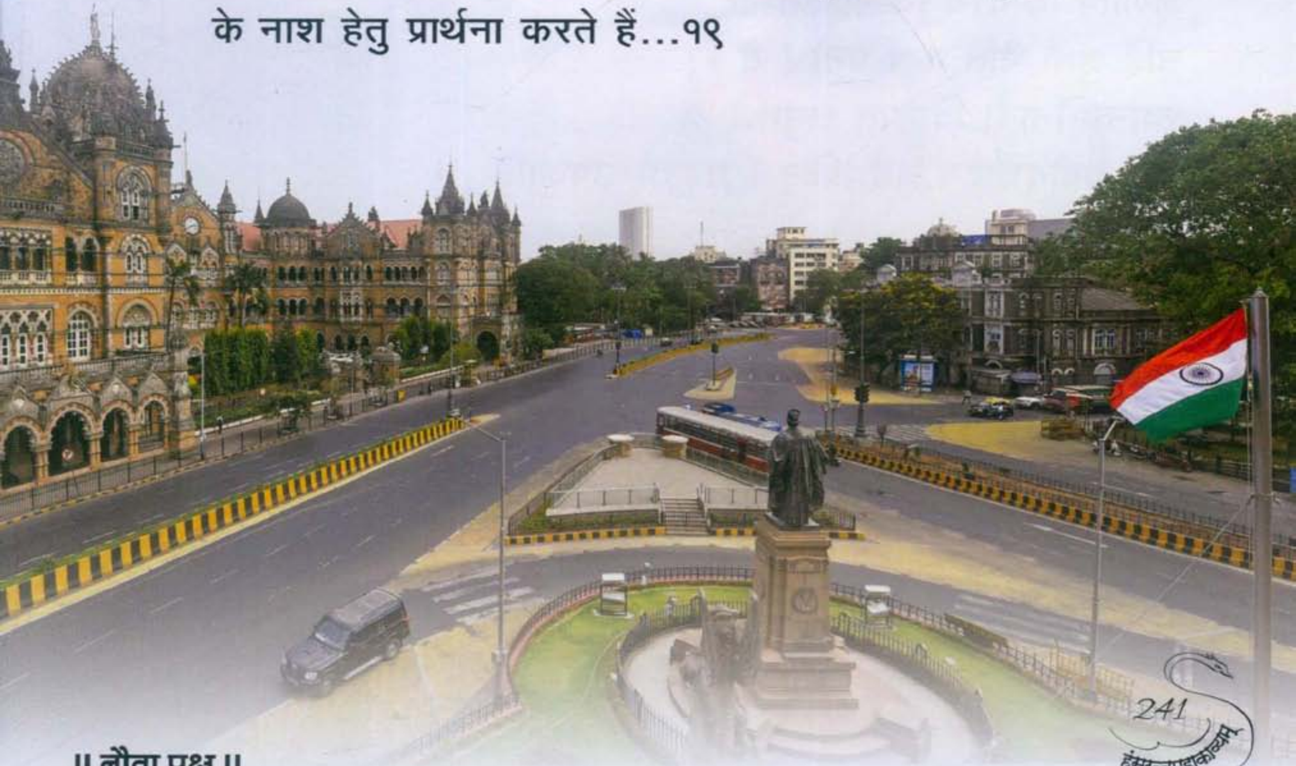

यथा हि-

किंयान् प्रभो ! ते विरहोऽस्ति शेषः ?
प्रवर्धते मेऽहह ! दर्शशोषः ।
पुनीहि कृत्वा वरदृष्टिपातं,
द्वारं तवोद्घाटय धर्मचक्रिन् ! ॥२०॥ उपजातिः ॥

नेत्रे कदा निर्विकृतित्वपूर्णे,
द्रक्ष्याम आश्यामलकोटितारे ।
वक्त्रं तथा वत्सलतां स्रवच्च,
द्वारं तवोद्घाटय धर्मचक्रिन् ! ॥२१॥ इन्द्रवज्रा ॥

त्वत्पादसंस्पर्शपवित्रगात्र-
मद्याविलं जातमपुण्ययोगात् ।
निरर्थकं सर्वमपि त्वयर्ते,
द्वारं तवोद्घाटय धर्मचक्रिन् ! ॥२२॥ उपजातिः ॥

शृणोषि विश्वस्य किलाऽऽर्तनादं,
तर्हि श्रुतौ नैति कथं प्रभो ! ते ।
स्वान्तर्निनादो विरहात् समुत्थो ?
द्वारं तवोद्घाटय धर्मचक्रिन् ! ॥२३॥ उपजातिः ॥

द्वारं सदा तेऽपिहितं पुराऽऽसीत्,
किमद्य तत् कीलितवाञ्जिनेन्द्र ! ।
नैतत्समीचीनमशेषदात्रे,
द्वारं तवोद्घाटय धर्मचक्रिन् ! ॥२४॥ उपजातिः ॥

- जैसे कि- हे प्रभु ! आपका विरह अभी कितना बाकी है ? अरे ! मेरे दर्शन की घुटन बढ रही है । आपके दृष्टिपात से पावन कीजिए । हे धर्मचक्री । आपके द्वार खोलिए...२०
- निर्विकारिता से भरे नयनों को, अंत तक श्यामल ऐसी पुतलियों को और वात्सल्य बहाने वाले मुख को कब देखूंगा ? हे धर्मचक्री ! आपके द्वार खोलिए...२१
- आपके चरणस्पर्श से पवित्र बना शरीर आज पाप के योग से मलिन हुआ है । आपके बिना सबकुछ निरर्थक है । हे धर्मचक्री ! आपके द्वार खोलिए...२२
- जगत का आर्तनाद तुम सुन रहे हो तो हे प्रभु ! आपके विरह से पैदा हुआ मेरा अंतर्नाद क्या आपके कानों तक नहीं पहुंच रहा ? हे धर्मचक्री ! आपके द्वार खोलिए...२३
- आपके द्वार पहले सदा खूले थे वे आज हे जिनेन्द्र ! क्यों बंद हैं ? यह अशेष (वस्तु) देने वाले के लिए उचित नहीं है । हे धर्मचक्री ! आपके द्वार खोलिए...२४

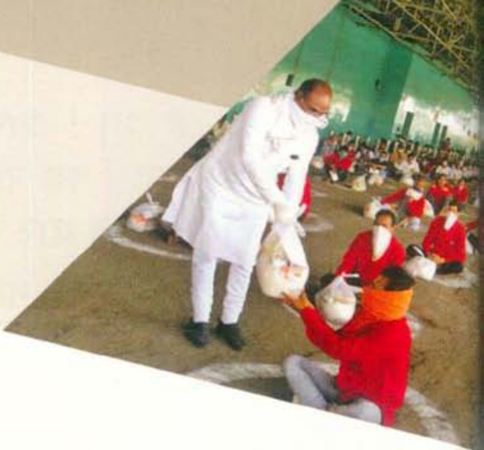

दूये वियोगज्वलनस्फुलिङ्गैः,
सन्तर्पयाऽऽशीर्जलसेचनेन ।
सम्पश्य मां स्निग्धविलोचनाभ्यां,
द्वारं तवोद्घाटय धर्मचक्रिन् ! ॥२५॥ इन्द्रवज्रा ॥

दत्तेऽअसा विष्टपमध्य इष्टं,
चिन्तामणिश्चिन्तितमर्थिनेऽर्थम् ।
त्वं नाथ ! तस्मात्किमु नातिशीषे ?
द्वारं तवोद्घाटय धर्मचक्रिन् ! ॥२६॥ इन्द्रवज्रा ॥

आशान्वितोऽहं तव दर्शनाय,
माऽऽशामरेऽर्हन् ! विफलीकरोतु ।
याचे तवाऽग्रे सुरशाखिकल्प !,
द्वारं तवोद्घाटय धर्मचक्रिन् ! ॥२७॥ इन्द्रवज्रा ॥

जिनगुणरतिमन्तः सन्त एवं जिनेन्द्रं,
व्यथितमनस उच्चैर्भक्तिभाजो भजन्ति ।
गदविरहिततां च प्रार्थयन्ते जनानां,
जगदुपकृतये स्युः श्रावका भावनाऽऽढ्याः ॥२८॥ मालिनी ॥

गृहीत्वा ते श्राद्धा, अशनवसनादीनभिनवान्,
प्रदातुं गच्छन्ति, प्रहतविधये दीनततये ।
ददत्याह्लादाऽऽढ्याः, सुकृतमुदिताऽदीनमनसा,
प्रसक्ताः सेवायां, प्रचितशुभपुण्याः सुहृदयाः ॥२९॥ शिखरिणी ॥

- मैं वियोग की आग की चिंगारियों से दुःखी हो रहा हूं, आर्शीर्वाद के जल का सिंचन करके मुझे संतर्पित कीजिए, मुझे आर्द्र आंखों से देखिए । हे धर्मचक्री ! आपके द्वार खोलिए...२५

- चिंतामणीरत्न इस जगत में याचक को इच्छित वस्तु तुरन्त दे देता है, हे नाथ ! क्या आप उससे अतिशययुक्त नहीं हैं ? हे धर्मचक्री ! आपके द्वार खोलिए...२६

- आपके दर्शन केलिए मैं आशान्वित हूं । अरे अरिहंत ! हमारी आशा को निष्फल मत कीजिए । हे कल्पवृक्ष ! आपके समक्ष मैं याचना करता हूं कि हे धर्मचक्री ! आपके द्वार खोलिए...२७

- जिनेश्वर के गुणों में आनंद पानेवाले, व्यथित मन वाले, भक्ति करने वाले सज्जन जिनेन्द्र को भजते हैं और लोगों की निरोगिता की प्रार्थना करते हैं । जगत के उपकार की भावना से श्रावक भरपूर होते हैं...२८

- वे श्रावक नये भोजन-वस्त्र आदि लेकर जिनका भाग्य नष्ट हो चुका है ऐसे दीन लोगों के समुह को देने के लिए जाते है और सेवा में आसक्त, शुभ पुण्य जिन्होंने अर्जित किया है वैसे, सुंदर हृदय वाले, सुकृत से आनंदित, अदीन मन से, आह्लाद से युक्त ऐसे (वे भोजनादि को) देते हैं...२९

चिकित्सका वैद्यमतल्लिकास्तथा,
भृशं यतन्ते जनरक्षणाय ते ।
रसायनं चेतिनिवारणक्षमं
गवेषयन्तीह विशारदोत्तमाः ॥३०॥ वंशस्थविलः ॥

प्रकुर्वते स्वव्यवसायमुक्ता
गृहस्य कार्याणि जनास्तु केचित् ।
स्वदूरवाण्या च वदन्ति केचिद्
मुहुर्मुहुर्मित्रजनैः समं वै ॥३१॥ उपेन्द्रवज्रा ॥

बहिर्न गच्छन्ति विनाऽऽस्यबन्धं
जना इहेत्याः प्रभिया कदाऽपि ।
प्रबन्ध आरक्षकसन्ततेश्च
दृढोऽस्ति शिक्षार्थमुपेक्षकाणाम् ॥३२॥ उपेन्द्रवज्रा ॥

शून्याऽऽलयो भाति समस्तलोकः,
शून्याऽऽनना भान्ति तथाऽत्र लोकाः ।
शून्येक्षणं वै नहि लोकबन्धे
कर्तुं समीहे खलु शोककारम् ॥३३॥ इन्द्रवज्रा ॥

श्राद्धा गृहेऽपि समतानुभवोत्कचित्ताः
सामायिकानि बहुशो विदधत्यनीहाः ।
सम्पूजयन्ति जिनपं गृहसन्निविष्ट-
-मष्टप्रकारकसमर्चनया च भक्त्या ॥३४॥ वसन्ततिलका ॥

- चिकित्सक और वैद्य, लोगों को बचाने के लिए बहुत प्रयास करते हैं और उत्तम विशारद लोग यहां महामारि को रोकने में सक्षम ऐसा टीका खोजते हैं...३०
- अपने व्यापार से रहित ऐसे कुछ लोग घर के काम करते हैं तो कुछ अपने मोबाइल से बारबार मित्रों से बात करते हैं...३१
- यहां महामारि के डर से लोग बिना मास्क के कहीं भी बाहर नहीं निकलते, पुलिसों का प्रबंध भी यहां उपेक्षा करने वालों की शिक्षा के लिए सख्त है...३२
- यहां समस्त लोक खंडहर जैसा लगता है और लोग किंकर्तव्यमूढ लगते हैं, लोकडाउन में ऐसा खेद कराने वाला शून्यदर्शन मैं नहीं करना चाहता...३३
- समता के अनुभव हेतु उत्कंठित मन वाले, इच्छा बिना के, घर पर भी बार बार सामायिक करते हैं और भक्ति से घर में रहे प्रभुजी की अष्टप्रकारी पूजा करते हैं...३४

स्थाल्यास्फालनदीपदर्शविधयाऽस्मिन् लोकबन्धे जनाः,
कार्तज्ञ्यं किल दर्शयन्ति गृहतो वैद्यादिवृन्दस्य रे ! ।
यच्छन्ति प्रचुरं धनं प्रमुदया दानार्थमिभ्यास्तथा,
कोपे प्राकृतिकेऽलकेश इव ते मन्येऽवतीर्णा भुवि ॥३५॥ शार्दूलविक्रीडतम् ॥

न केवलं भारतराष्ट्र एव
महेतिरेषा प्रसृता परन्तु ।
वर्षेषु नूनं द्विशताधिकेषु
ह्यस्याः प्रभावोऽस्ति हहा ! महीयान् ॥३६॥ उपजातिः ॥

श्मशानभूमिर्मृतकोत्करेण
भृता महामारिप्रकोपपात्रा ।
खाताः शवोत्सृष्टिकृते नवेला
वृद्धं तदेवं मरणप्रमाणम् ॥३७॥ उपजातिः ॥

मा पश्यन्तु जना स्थितिं भयकरीमेतादृशीमायतौ,
मा लान्तु स्वजनावलेर्विरहतां, माऽऽसन्नमृत्योर्भयम् ।
मा देवावसथा भवन्तु पिहितद्वारा महोद्धारका
इत्येवं परिचिन्तयन्ति हृदये लोका हितोद्भावकाः ॥३८॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

अकाले कालोऽयं, चरति भुवने मत्तमनसा,
मिषादीत्याः प्राणान्, हरति न वयः पश्यति तथा ।
अकाण्डे किं रुष्टः, स इति विमृशन्तीह सुजना
न कःस्यात्सद्यस्के, विपदवसरे चिन्तितमनाः ॥३९॥ शिखरिणी ॥

- थाली बजाकर, दीपक जलाकर लोग इस लोकडाउन में घर से ही वैद्य आदि की कृतज्ञता अभिव्यक्त करते हैं तथा धनवान दान के लिए खुशी से बहुत धन देते हैं। प्रकृति के इस प्रकोप में वे कुबेर की तरह धरती पर अवतरित हुए हों ऐसा मैं मानता हूं...३५

- सिर्फ भारतदेश में ही नहीं परन्तु यह महामारि २००से ज्यादा देशों में फैली। हाय ! निश्चित रूप से ही यह महामारि का बड़ा प्रभाव है...३६

- महामारि के प्रकोप का भाजन बनी श्मशानभूमि मृतकों के ढग से भर गई। शवों को दफनाने के लिए नयी भूमियां खुदवाई गई। इस प्रकार मृत्यु का प्रमाण बढा...३७

- भविष्य में लोग ऐसी भयानक स्थिति को ना देखें, स्वजनों का विरह न पाएं और निकट खडी मृत्यु का भय न पाएं तथा बड़े उद्धारक जिनालय बंद द्वारवाले न हों इस प्रकार हितचिंतक लोग ह्रदय में विचार कर रहे थे...३८

- असामायिक यमराज उन्माद वाले मन से इस जगह में घुम रहा है और महामारि के बहाने से प्राणों को हर लेता है तथा उम्र नहीं देखता। वह अचानक क्रोधित क्यों हुआ ? ऐसा सज्जन विचार कर रहे हैं। अचानक विपत्ति का अवसर खड़ा हो जाए तब किसका मन चिंतित नहीं होगा ?...३९

न सामाजिकाऽस्पृश्यता वर्ततेऽत्र,
परं सङ्क्रमस्यातिभीत्या पुमांसः ।
स्वजात्यन्यजात्योर्नरान्न स्पृशन्ति,
महामारिरेषा विचित्रा स्फुटं रे ! ॥४०॥ भुजङ्गप्रयातम् ॥

ज्वराऽऽक्रान्तमालोक्य दूरे व्रजन्ति
स्वसङ्क्रान्तिभीत्या नरा ईतिभीताः ।
भयस्यैकसाम्राज्यमस्ति प्रवृत्तं
न कुत्रापि शान्तिर्दरीदृश्यते हा ! ॥४१॥ भुजङ्गप्रयातम् ॥

लक्षाधिकाः सङ्क्रमणेन पीडिता
जना भवन्त्यन्वहमत्र भारते ।
केचित्तु तेभ्यः प्रगुणीभवन्ति रे !
केचिच्च पञ्चत्वमवाप्नुवन्त्यरे ! । ॥४२॥ इन्द्रवंशा ॥

विश्वस्वास्थ्याऽऽह्वसंस्थाऽनुदिनमभिनवान् सूचनादीन् प्रदत्ते,
किन्तु ज्ञातुं स्वरूपं, प्रभवति नहि सा, मारिसत्कं यथावत् ।
गम्या वैज्ञानिकैर्नो, पटुमतिविभवैः, सेतिरुद्दामचारा,
मृत्याह्वे स्वीयवक्त्रे, कवलयति जनान्, निर्दया राक्षसीव ॥४३॥ स्रग्धरा ॥

एवं काले, विधुरविषमे, तापसन्तापपूर्णे,
ग्रीष्माऽऽक्रान्ताऽम्भ इव सरसो, दृश्यतेऽत्रार्थतन्त्रम् ।
क्रीडाशैलं, प्रजिगमिषवः, स्वालयान्नासुमन्तोऽ-
-सूर्यम्पश्यास्स्त्रिय इव बहिः स्थापयन्ति स्वपादम् ॥४४॥ मन्दाक्रान्ता ॥

- यहां सामाजिक अस्पृश्यता नहीं है फिर भी लोग संक्रमण के डर से खुद की या दूसरी जाति वाले लोगों को छूते नहीं हैं । अरे ! महामारि विचित्र है...४०
- ज्वर से पीडितों को देखकर महामारि से डरे हुए लोग संक्रमण के भय से दूर चले जाते हैं । भय का ही एकछत्री साम्राज्य यहां फैला हुआ दिख रहा है । अरे ! कहीं भी शांति नहीं दिखती...४१
- प्रतिदिन यहां भारत में एक लाख से अधिक लोग संक्रमण से पीडित दिख रहे हैं, उनमें से कुछ ठीक होते हैं तो कुछ मृत्यु पाते हैं...४२
- W.H.O. संस्था प्रतिदिन नयी सूचना आदि देती है परन्तु खुद महामारी का व्यवस्थित स्वरूप जान नहीं सकती । तीव्र बुद्धि के वैभव वाले ऐसे वैज्ञानिकों के द्वारा भी जो नहीं जानी जाती वह यह महामारि निरंकुश होकर विचरने वाली है और निर्दय राक्षसी की तरह अपने मृत्यु नाम के मुख में लोगों को निगल जाती हैं...४३
- इस प्रकार दुःख से विषम, ताप-संताप से परिपूर्ण, काल में ग्रीष्मऋतु से पीडित तालाब के पानी जैसा अर्थतंत्र यहां (जर्जरित हो गया) दिख रहा है । हिल-स्टेशन पर जाने की इच्छा वाले लोग जिसने सूर्य न देखा हो (=घर में ही रहती हो) ऐसी कुलवधू की तरह घर से एक कदम भी बाहर नहीं रखते...४४

देवाधिदेवस्य कृपाप्रभावात्
प्रादुष्कृतं मारिहरं ततश्च ।
रसायनं लोकहिताय नैकै-
-र्वैज्ञानिकैः स्वीयबहुप्रयासैः ॥४५॥ उपजातिः ॥

द्रवप्राणवायुः क्वचित् क्षीयतेऽल्प-
प्रमाणात्तथा रुग्णसम्मर्दतश्च ।
तदा प्रेषयत्यञ्जसा सर्वकार-
स्तमार्तोपचाराय रुग्णालयेषु ॥४६॥ भुजङ्गप्रयातम् ॥

निश्चिन्ता रे ! धर्मार्थ[१]कामास्तमेनं,
कालं स्वं स्वाध्यायादिना यापयन्ति ।
कोरोनेत्या विध्वंसनाय प्रभुं ते
धृत्वा वै नानाभिग्रहान् प्रार्थयन्ते ॥४७॥ वैश्वदेवी ॥

सकललोकमहोदयकामिनो
विदधति श्रमणाः सुविशेषतः ।
प्रहरणाय महेतिविपत्ततेः
प्रतिदिनं तरसा जपनाऽऽदिकम् ॥४८॥ द्रुतविलम्बितम् ॥

आचार्यश्रीहंसरत्नोऽपि चित्ते
चिन्तारत्नाऽऽभे स निर्णीतवान् यत् ।
''सङ्कल्पेनाऽमा करिष्ये तपोऽहं
सर्वेषामीत्याः समाध्यर्थमुग्रम्'' ॥४९॥ शालिनी ॥

१. धर्मार्थकामाः - धर्मः- चारित्रधर्मादिस्तस्यार्थः प्रयोजनं मोक्षस्तं कामयन्ति- इच्छन्तीति विशुद्धविहितानुष्ठानकरणेनेति धर्मार्थकामा मुमुक्षवः । (दश०अ०६.सू.४)

- तत्पश्चात् देवाधिदेव परमात्मा के कृपाप्रभाव से लोगों के हित के लिए स्वयं के प्रचुर प्रयासों द्वारा वैज्ञानिकों ने महामारि को हरने वाला टीका बनाया...४५
- Oxygen कभी कम होने से और मरीजों की भीड़ बढ जाने से Oxygen कम पड जाए तब सरकार उन मरीजों के इलाज के लिए तुरन्त अस्पताल में Oxygen पहुंचाती है...४६
- अरे ! निश्चिंत ऐसे मुनि अपने इस समय को स्वाध्याय आदि से गुजार रहे हैं और विविध अभिग्रहों को धारण करके महामारि के नाश के लिए प्रभु से प्रार्थना करते हैं...४७
- समस्त लोक के महोदय की इच्छा रखनेवाले मुनि महामारि के उपद्रव को दूर करने के लिए प्रतिदिन विशेष उत्साह से जाप करते हैं...४८
- आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी ने भी चिंतामणीरत्न जैसे अपने मन में तय किया कि - ''मैं भी महामारि में सब की समाधि के लिए संकल्प के साथ उग्र ऐसा तप करूंगा ।''...४९

तपोऽथ साशीतिशतोपवासकं
चतुर्थवारं स विधातुमुत्सुकः ।
प्रजात एवं निरवद्यचेतनः
सुपुण्यलक्ष्म्याः कमनीयमन्दिरम् ॥५०॥ वंशस्थविलः ॥

विभाति भातिस्तपसस्तपस्विनो-
-ऽस्य हंसरत्नस्य महेत्यनेहसि ।
महाप्रभावो विषमस्थितिं समी-
-करोति संवर्तसमीरवत् सताम् ॥५१॥ वंशस्थविलः ॥

श्रीगीताञ्जलिसङ्घ एत्य यतनापूर्वं विहारेण वै,
दत्त्वा त्रिः सुप्रदक्षिणाश्च गुरवे कृत्वा तथा वन्दनम् ।
श्रीसूरीश्वररत्नसुन्दरगुरोर्वक्त्राम्बुजान्निःसृतं
प्रत्याख्यानमयं तपोजलनिधिर्गृह्णाति बद्धाञ्जलिः ॥५२॥ शार्दूलविक्रीडितम् ॥

समाप्तमेतस्य महातपोऽदो
महश्च जातं गणपाधिराज्ये ।
समर्पितं तेन तपः स्वकीयं
सरस्वतीलब्धप्रसादकाय ॥५३॥ उपेन्द्रवज्रा ॥

यत्रेतिजन्मजनसङ्क्रमलोकबन्धा-
-ऽऽदेर्वर्णनं सुतपसश्च तपस्विनश्च ।
हृद्यं कृतं स नवमो जयतात् सुपक्षः
श्रेयःप्रदः सुविहितावलिनन्दनश्च ॥५४॥ वसन्ततिलका ॥

॥ नवमः पक्ष समाप्तः ॥

- अब पुण्यरूपी लक्ष्मी का मानो सुंदर आवास, १८० उपवासरूप तप को चौथी बार करने के लिए वह पापरहित मन वाले (आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी) उत्सुक हुए...५०

- महामारि के समय में भी तपस्वी आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी के तप का प्रकाश शोभा दे रहा है। सज्जनों का महाप्रभाव संवर्तवायु की तरह विषम परिस्थिति को भी सम कर देता है...५१

- यतनापूर्वक विहार करके श्री गीतांजलि संघ में पधारकर तीन प्रदक्षिणा देकर तथा गुरूवंदन करके आचार्य विजय रत्नसुंदरसूरिजी म.सा. के मुख से निकला हुआ पच्चक्खाण यह तप के सागर (आ.वि. हंसरत्नसूरि) हाथ जोड़कर ग्रहण करते...५२

- इनका (आ.वि. हंसरत्नसूरि का) यह महातप समाप्त हुआ और गच्छाधिपति के शासन (=निश्रा) में उसका महोत्सव हुआ। उनके द्वारा खुद का तप **सरस्वतीलब्धप्रसाद आचार्य विजय रत्नसुंदरसूरिजी** को समर्पित किया गया...५३

- जहां महामारी का जन्म, लोगों में संक्रमण, लोकडाउन आदि का और तपस्वी के तप का सुंदर वर्णन किया गया है उस कल्याण को देने वाले, सुविहित मुनियों को आनंद देने वाले नौवे पक्ष की जय हो...५४

॥ नौवा पक्ष समाप्त ॥

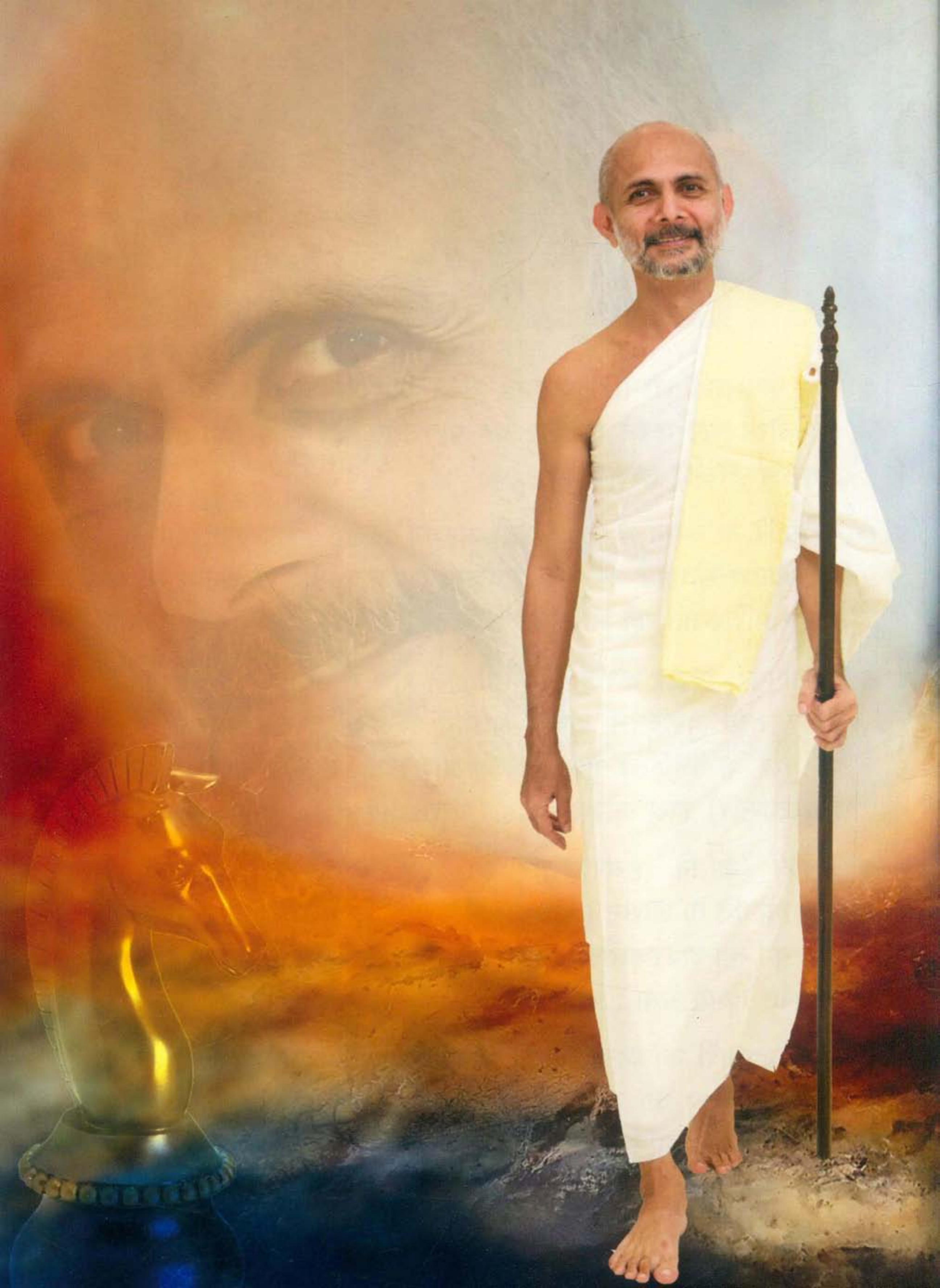

तुरगपदम्

१ श्री	३० लाऽ	९ पा	२० पाऽ	३ पा	२४ लाऽ	११ ला	२६ पाऽ
१६ पाऽ	१९ लाऽ	२ ला	२९ लाऽ	१० ला	२७ पाऽ	४ पा	२३ पाः
३१ ला	८ पा	१७ ला	१४ पा	२१ पाऽ	६ ला	२५ पा	१२ लाऽ
१८ पा	१५ पा	३२ पाऽ	७ ला	२८ लाऽ	१३ ला	२२ लाः !	५ पाः

श्रीलाऽपापाऽपालाऽलापाऽपाऽलाऽलालाऽलापाऽपापाः ! ।
लापा ! लापा ! पाऽलापालाऽपापापाऽलालाऽलाला ! पाः ! ॥ विद्युन्माला ॥

श्रील ! - सौभाग्यशालिन् !, अपाप - निष्पाप ! अपाल ! - अस्तुतिलम्पट !, अलाप ! - अभोजनशूर !, अप ! - अनृण ! अल ! - अनास्तिक !, अलाल ! - अलोभपूरण !, अलाप ! - लापरहित ! आपापाः ! - अलक्ष्मीपाल !, लापा ! - लयपालका, लापा ! - दानप्रयत्न !, प ! - प्रसन्न !, अलापाल ! - अललनापाल !, अपापाप ! - अलक्ष्मीपात्रप ! अलाल ! - अलीलाविलास !, अलालाः ! - अदीनदशाक ! पाः ! - पातः ! ।

- हे सौभाग्यशाली ! निष्पाप, स्तुति के जो लंपट नहीं है ऐसे, भोजन में जो शूर नहीं है (=उपवासी), ऋण बिना के, अनास्तिक (=आस्तिक), लोभ को पूर्ण न करने वाले, लाप=बातचीत से रहित (=मौनधारी), लक्ष्मी का पालन नहीं करनेवाले, लय को पालनेवाले, दान का प्रयत्न है जिसका ऐसे, प्रसन्न, स्त्री को नहीं पालनेवाले, निर्धन को पालनेवाले, (साधर्मिकवत्सल), लीला और विलास बिना के, अदीनदशा वाले, पालक ! (ये सभी आ.वि. हंसरत्नसूरिजी के संबोधन हैं ।)
- शतरंज के घोड़े की चाल से एक-एक अंक से आगे बढ़ने पर यह काव्य पूर्ण होता है ।

।। दशमः पक्षः ।।

(अलङ्कारहंस, समुदायरासः, उपसंहृतिश्च)

स्पृष्टः सुरेन्द्रमुकुटैरभितोऽविरामं,
दष्टः प्रवाहयति दुग्धसमानरक्तम् ।
दोलायितश्च सुरभूमिधरस्तु येन,
सोऽङ्गुष्ठ इष्टततिदोऽन्त्यजिनस्य भूयात् ।।१।। वसन्ततिलका ।।

उक्तस्तपोधनो हंसरत्नसूरीशसत्तमः ।
गीयते गीतिभिः सद्भिर्भावेन नम्यते तथा ।।२।।

मादृशां पीडितानां तु तपोऽन्तरायकर्मणा ।
स्यात् क्षयोपशमोपायो, गानमस्य तपस्विनः ।।३।।

जायते बहुशोभायायलङ्कारयुतो नरः ।
तथाऽस्यालङ्कृतैः श्लोकैर्गानमात्मविशुद्धिये ।।४।।

प्रस्तूयते ततो ह्यत्र, हंसरत्नर्षितल्लजः ।
अलङ्कारमयैः श्लोकैर्लालित्यौदार्यभूषितैः ।।५।।

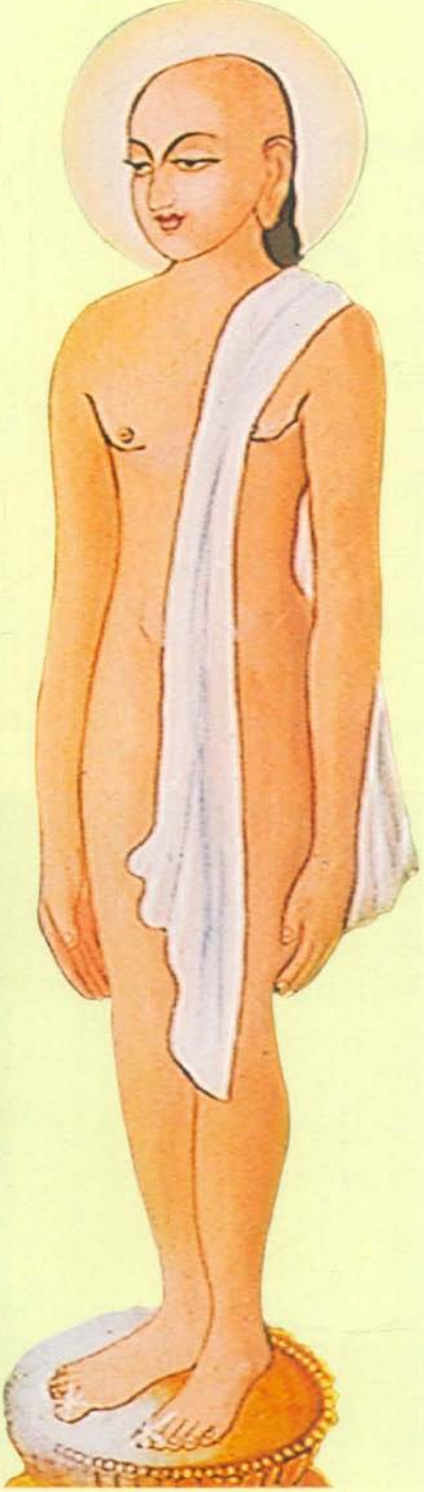

॥ दसवा पक्ष ॥

(अलंकार हंस, समुदाय का रास और उपसंहार)

- चारों ओर से इंद्रों के मुकुटों द्वारा जो सतत स्पृष्ट हैं, जो दंस मारने के बावजूद दूध जैसा (सफेद) रूधिर देते हैं और जिनके द्वारा श्रेष्ठ ऐसा मेरू पर्वत डोलाया गया है वह वीर प्रभु का अंगूठा इष्टवस्तु के समुह को देने वाला बने...१
- कथित तपस्वी आचार्य विजय हंसरत्न-सूरीश्वरजी म.सा. को सज्जनों के द्वारा गीतों से गाया जा रहा है और भाव से नमन किया जा रहा है...२
- तप के अंतरायकर्म से पीडित मुझ जैसे के लिए इस तपस्वी का गान क्षयोपशम का उपाय सिद्ध हो...३
- जैसे अलंकारयुक्त व्यक्ति अधिक शोभा देता है वैसे अलंकारमय श्लोकों के द्वारा इस तपस्वी का गान आत्मविशुद्धि के लिए होता है...४
- अतः यहां आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी को लालित्यपूर्ण अलंकारमय श्लोकों से प्रस्तुत किया जा रहा है...५

([1]वक्रोक्तिः)

कान्ता नेक्ष्येति प्रोच्याऽपि, ''वीक्ष्ये कान्ताऽऽकृतिं गुरोः'' ।
कथं नयन ! वक्ष्येवं ? ज्ञातं यत्तत्र ते रुचिः ॥६॥

([2]यमकम्)

कृत्याऽऽकृत्या रञ्जयन् भव्यलोकान्,
रत्याऽरत्या चोद्धरन् दूयमानान् ।
सत्याऽसत्यान्वेषणे यश्च दक्षः,
स्तुत्या स्तुत्यं स्तौमि तं हंसरत्नम् ॥७॥ शालिनी ॥

([3]अनुप्रासः)

मरौ रोरोऽमराऽऽराममरे ! माररमारमम् ।
प्राप्नुयान्नु कुतो ? हंसं, मन्दपुण्यस्तथा भवे ॥८॥

---

१. वक्ता को 'कान्ता' शब्द का 'सुंदर स्त्री' ऐसा अर्थ अभिप्रेत था, परंतु श्रोता जान-बूझकर 'कान्ता' का 'सुंदर' ऐसा विशेषणात्मक अर्थ करता है । वक्ता के कथन का अर्थ समझने के बावजूद दूसरा अर्थ स्वीकार करना वह वक्रोक्ति-अलंकार है ।
उक्तस्यान्येनान्यथाश्लेषादुक्तिर्**वक्रोक्तिः** ॥ ५/८ ॥ काव्यानुशासनम् ॥
वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यां वाक्यार्थान्तरकल्पनम् । ५/१११ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

२. एक से अधिक वर्ण का एक ही क्रम में एक से अधिक बार उपयोग किया जाए और एक से अधिक अर्थ दे तो यमक अलंकार ।
आवृत्तवर्णस्तवकं स्तवकन्दाङ्कुरं कवेः (**यमकम्**) । ५/८ (पूर्वार्धः) चन्द्रलोकः ।
इस अलंकार में अनुस्वर, विसर्ग, न-ण-, ड-ल, ब-व, श-स वैकल्पिक है ।

३. व्यञ्जनस्याऽऽवृत्ति**रनुप्रासः** ॥ ५/११ ॥ - काव्यानुशासनम् ॥
अनुप्रासः शब्दसाम्यं, वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् । १०/३ (पूर्वार्धः) साहित्यदर्पणम् ।

॥ अलंकार हंस ॥

- ''कान्ता (स्त्री) देखने योग्य नहीं है'' इस प्रकार कहने पर भी गुरु (आ.वि. हंसरत्नसूरिजी) की कान्त (सुंदर) आकृति को देखूंगा'' ऐसा हे नयन ! तुम क्यों कह रहे हो ? अरे ! पता चला कि तुम्हें वहीं रुचि है...६

- कार्य और आकृति द्वारा भव्यजीवों को खुश करनेवाले, रति-अरति से पीडितजनों का उद्धार करनेवाले एवं सत्य और असत्य को ढूंढने में कुशल ऐसे स्तुति के योग्य आ. वि. हंसरत्नसूरिजी की स्तुति द्वारा मैं स्तवना करता हूं...७

- अरे ! रंक बिचारा, कामदेव और लक्ष्मी को आनंद देनेवाला देवों का बगीचा रेगिस्तान में कैसे पा सकेगा ? वैसे ही मंदपुण्यवाला व्यक्ति आ.वि. हंसरत्नसूरिजी को (इस) भव में कैसे प्राप्त कर सकेगा ?...८

(४**पूर्णोपमा**)

चिक्कणे भोगरागेण, युगेऽस्मिन् भाति सन्मुनिः ।
अलिप्तो हंसरत्नस्तु, सरोजमिव कर्दमे ॥९॥

(५**प्रहर्षणम्**)

स्पृष्टौ गुरोः क्रमौ यावत्, तमोविनाशकाम्यया ।
तावदेव समुद्भूता, द्युतिरन्तस्तलेऽद्भुता ॥१०॥

(६**लुप्तोपमा**)

यस्य समो न दृष्टोऽस्ति, सम्प्रति सत्तपोधनः ।
ननु को हंसरत्नाऽऽभः ? ततः सोऽनन्यसत्तपाः ॥११॥

(७**सामान्यम्**)

शरदि धवलाऽम्भोदसङ्कीर्णे खे गुरो ! तव ।
प्रससाराऽमला कीर्तिः, स्पष्टमहो ! न लक्ष्यते ॥१२॥

---

४. स्यात् **सम्पूर्णोपमा** यत्र द्वयोरपि (उपमानोपमेययोः) विधेयता । १७/५ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
सा **पूर्णा** यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च ।
उपमेयं चोपमानं भवेद् वाच्यमियं पुनः ॥ १०/१५ साहित्यदर्पणम् ।

५. वाञ्छनादधिकार्थस्य संसिद्धिश्च **प्रहर्षणम्** । १२९ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

६. एकद्वित्रिलोपे **लुप्ता** ॥ ६/३ ॥ काव्यानुशासनम् ॥
लुप्ता सामान्यधर्मादेरेकस्य यदि वा द्वयोः ॥ १०/१७ ॥ त्रयाणां वाऽनुपादाने-साहित्यदर्पणम् ।

७. **सामान्यं** यदि सादृश्याद्, विशेषो नोपलक्ष्यते । १४६ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।
सामान्यं प्रकृतस्यान्यतादात्म्यं सदृशैर्गुणैः ॥ १०/८९ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।

- भोगराग से चीकने इस युग में आ.वि.हंसरत्नसूरिजी, चीकने कीचड में अलिप्त कमल की तरह शोभा दे रहे हैं...९
- अंधकार के नाश की इच्छा से जैसे ही मैंने गुरु के चरण का स्पर्श किया उसी समय मेरे भीतर अद्‌भुत ऐसा प्रकाश प्रकट हुआ...१०
- वर्तमान में आ.वि. हंसरत्नसूरिजी जैसा कोई तपस्वी नहीं । वास्तव में आ.वि. हंसरत्नसूरिजी जैसा कौन है ? इसीलिए वे अनन्य तपस्वी हैं...११
- शरद ऋतु में श्वेत बादलों से संकीर्ण ऐसे आकाश में हे गुरुदेव ! आपकी निर्मल कीर्ति फैल चूकी है जो स्पष्ट समझ में नहीं आती...१२

([8]अर्थापत्तिः)

जितस्त्वया गुणैः स्वस्य, महामोहमहीपतिः ।
का वार्ता शेषदोषाणां, तत्पदातिसधर्मणाम् ॥१३॥

([9]प्रतीपम्)

हंसरत्नस्तनोत्यत्र, तपोलीलां वरां यदि ।
किं लीलानाममात्रेण, हंस ! ते जलताडनम् ? ॥१४॥

([10]स्मरणम्)

तपःपुष्टो मुनिर्धन्यः, स्मर्यते कृशविग्रहः ।
तपस्तपन्तमालोक्य, हंसरत्नगुरूत्तमम् ॥१५॥

([11]सन्देहः)

किमेष पूषा ? नहि सोऽम्बरस्थः, किमेष चन्द्रो ? नहि सोऽङ्कयुक्तः ।
भुवां चरन्नेष सुदीप्ततेजा-स्तथाऽकलङ्की गुरुहंसरत्नः ॥१६॥

([12]भ्रान्तापह्नुतिः)

भीर्मे हरिण ! किं राहोः ?, स क्वचिद्ध्युपरज्यति ।
किन्तु भीर्मे तपोभासां, हंसस्येत्यवद् विधुः ॥१७॥

---

८. दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते । १०/८३ (पूर्वार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
अर्थापत्तिः स्वयं सिद्ध्येत् पदार्थान्तरवर्णनम् । ५/३७ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

९. **प्रतीपमु**पमानस्य हीनत्वमुपमेयतः । ५/१०० (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् ।
निष्फलत्वाभिधानं वा **प्रतीपमि**ति कथ्यते ॥ १०/८७ साहित्यदर्पणम् ।

१०. सदृशदर्शनात् **स्मृतिः** ॥ ६/२५ ॥ काव्यानुशासनम् ॥
सदृशानुभवाद् वस्तुस्मृतिः **स्मरण**मुच्यते ॥ १०/२७ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।

११. **सन्देहः** प्रकृतेऽन्यस्य संशय प्रतिभोत्थितः ॥ १०/३५ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।

१२. भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य, शङ्कायां भ्रान्तिवारणे । २६ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।
भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य, शङ्कया तत्त्वनिर्णये । ५/२६ (पूर्वाधः) चन्द्रालोकः ।

- (हे ! आ.वि. हंसरत्नसूरिजी) आपके द्वारा स्वयं के गुणों से महामोहराजा भी जीता जा चूका है तो उसके सुभट जैसे अन्य दोषों की तो क्या बात ?(अर्थात् उन्हें भी जीत लिया गया है)...१३

- यदि यहाँ आ.वि. हंसरत्नसूरिजी सुंदर ऐसी तप-लीला का विस्तार कर रहे हैं तो हे हंस ! लीला के नाम पर केवल जल-ताडन करने की तेरी क्रिया से क्या ? (यानि कि तेरी लीला व्यर्थ है)...१४

- तप से पुष्ट आ.वि. हंसरत्नसूरिजी को देखकर तप में मग्न, कृश शरीरवाले ऐसे धन्ना अणगार की याद आती है...१५

- क्या यह सूर्य है ? नहीं, वह तो आकाश में होता है । क्या यह चंद्र है ? नहीं, वह तो कलंकवाला है । यह तो भूमि पर विचरण करनेवाले, जिनका तेज चमक रहा है ऐसे कलंकरहित आ.वि. हंसरत्नसूरिजी हैं...१६

- ''हे हिरण ! क्या मुझे राहु का भय है ? नहीं नहीं, वह तो कभी-कभार ही मेरा ग्रहण करता है । परंतु मुझे आ.वि.हंसरत्नसूरिजी की किरणों का भय है । ''इस प्रकार चंद्र ने कहा...१७

(13 **व्यतिरेकः**)

मृगारिरिव शूरस्त्वं, कोमलहृदयः परम् ।
मृग इव सुनेत्रश्च, निर्भयो भवकानने ॥१८॥

(14 **यथासङ्ख्यम्**)

दत्तवान् हंसरत्नोऽयमवर्ण्यगुणवारिधिः ।
रे ! शोक-श्लोक-लोकेभ्यो, नीर-श्रम-कृपाञ्जलीः ॥१९॥

(15 **अर्थान्तरन्यासः**)

तपसा हंसरत्नस्याऽवर्धन्ताऽभ्यन्तरश्रियः ।
आप लब्धीर्वज्रनाभः, किमसाध्यं तपस्विनाम् ? ॥२०॥

(16 **सापह्नवातिशयोक्तिः**)

हंसरत्न ! तव हृत्खे, ज्ञानसूर्यः प्रदीप्यते ।
मूढास्तु सूर्यमन्वेष्टुं, दत्ताक्षा उदयाचले ॥२१॥

(17 **उत्प्रेक्षा**)

विहारे हंसरत्नस्य, दृष्ट्वा सुललितां गतिम् ।
मानसेऽद्यापि तामाप्तुमिव हंसस्तपस्यति ॥२२॥

---

१३. उत्कर्षापकर्षहेत्वोः साम्यस्य चोक्तावनुक्तौ
चोपमेयस्याधि **व्यतिरेकः** ॥ ६/१८ ॥ काव्यानुशासनम् ॥
उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः । १०/१०५ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

१४. **यथासङ्ख्यं** क्रमेणैव, क्रमिकाणां समन्वयः ॥ १०/१०८ (उत्तरार्धः) काव्यप्रकाशः ।
यथासङ्ख्यमनुद्देश, उद्दिष्टानां क्रमेण यत् । १०/७९ (पूर्वार्धः) साहित्यदर्पणम् ।

१५. भवे**दर्थान्तरन्यासो**ऽनुषक्तार्थान्तराभिधा । ५/६८ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते ।
यत्र सो**ऽर्थान्तरन्यासः** साधर्म्येणेतरेण वा ॥ १०/१०९ काव्यप्रकाशः ।

१६. यद्यपह्नुतिगर्भत्वं, सैव सापह्नवा मता । ३५ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

१७. **उत्प्रेक्षो**न्नीयते यत्र, हेत्वादिर्निह्नुतिं विना । ५/२९ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
त्सम्भाव**नोत्प्रेक्षा**, प्रकृतस्य परात्मना । १०/४० (पूर्वार्धः) साहित्यदर्पणम् ।

- (आ.वि.हंसरत्नसूरिजी) आप भवरूपी जंगल में शेर जैसे शूरवीर हो फिर भी, कोमल हृदयवाले हो और हिरण जैसे सुन्दर नेत्रवाले हो फिर भी, निर्भय हो...१८
- अवर्ण्य (वर्णनातीत) गुणों के समुद्र समान आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ने शोक को जल की, श्लोक को (स्वाध्याय को) श्रम की और लोगों को कृपा की अंजलि दी...१९
- आ.वि. हंसरत्नसूरिजी की तप द्वारा आभ्यन्तर लक्ष्मी बढ़ी । पूर्वकालीन वज्रनाभमुनि ने भी तप द्वारा लब्धियां प्राप्त की थी । तपस्वी के लिए असाध्य क्या होता है ?...२०
- हे आ वि.हंसरत्नसूरिजी ! आपके हृदयरूपी आकाश में ज्ञान का सूर्य चमक रहा है । मूढ लोग सूर्य को देखने के लिए उदयाचल पर्वत पर नजर टिकाये बैठे हैं...२१
- विहार में आ.वि. हंसरत्नसूरिजी की सुंदर गति को देखकर आज भी मानो उसी (गति) को पाने के लिए हंस मानसरोवर में तपस्या कर रहा है...२२

([18] कारणमाला)

हंसरत्नगुरोर्दर्शो, भाववृद्धेः सुकारणम् ।
तया च कर्मणो नाशस्तेन मुक्तिपदाऽऽपनम् ॥२३॥

([19] आक्षेपः)

दीप ! दीप्यस्व दीप्रैः स्वैर्द्युभिस्तमोहराय वै ।
अथवाऽत्रास्ति हंसाऽऽर्यो, दीप्यमानस्तपोधनः ॥२४॥

([20] अर्थश्लेषः)

स्फुटमेव तपस्तप्तं, वर्यपुद्गलपिण्डितम् ।
निःश्रेयसानुकूलं ते, देहं कर्म च सद्गुरो ! ॥२५॥

([21] रूपकम्)

यन्मुखं स्फुटं चन्द्रो, मोदयति जननयनचन्द्रमणिम् ।
हरति चित्तसन्तापं, स हंसरत्नः कलिनिशि जयतु ॥२६॥ आर्या ॥

([22] अतद्गुणः)

प्रविश्यापि तपोवह्नौ, शीतलेश्योऽसि सद्गुरो ! ।
संसारदावतप्तास्ते, प्रणिशाम्यन्ति सन्निधौ ॥२७॥

---

१८. यथोत्तरं पूर्वस्य हेतुत्वे **कारणमाला** ॥ ६/३० ॥ काव्यानुशासनम् ।
परं परं प्रति यदा पूर्वपूर्वस्य हेतुता । तदा **कारणमाला** स्यात् । १०/७६ साहित्यदर्पणम् ।

१९. विवक्षितस्य निषेध इवोपमानस्याक्षेपश्चाक्षेपः ॥ ६/११ ॥ काव्यानुशासनम् ।
आक्षेपः स्वयमुक्तस्य, प्रतिषेधो विचारणात् । ७२ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

२०. **अर्थश्लेषो**ऽर्थमात्रस्य यद्यनेकार्थसंश्रयः । ५/६५ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

२१. सादृश्ये भेदेनाऽऽरोपो **रूपकमे**कानेकविषयम् ॥ ६/५ ॥ काव्यानुशासनम् ॥
यत्रोपमानचित्रेण, सर्वथाऽप्युपरज्यति ।
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते ॥ ५/१०५ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

२२. सङ्गतान्यगुणानङ्गीकारमाहु**रतद्गुणम्** । ५/१०५ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
तद्रूपाननुहारस्तु हेतौ सत्यप्य**तद्गुणः** ॥ १०/९० साहित्यदर्पणम् ।

- आ.वि. हंसरत्नसूरिजी का दर्शन भाववृद्धि का कारण है । उससे कर्म का नाश होता है और उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है...२३
- हे दीपक ! अंधकार को दूर करने के लिए तुम तुम्हारी तेजस्वी किरणों से प्रकाशित हो जाओ, अन्यथा यहाँ पर तपस्वी आ.वि. हंसरत्नसूरिजी तो है ही (इसीलिए तुम्हें प्रकाशित होने की कोई जरूरत नहीं)...२४
- हे सद्‌गुरुदेव ! आपका शरीर और आपके कर्म दोनों ही तप से तप्त हो चूके पुद्‌गलों से बने हुए हैं और मोक्ष के लिए अनुकूल हैं...२५
- जिसका मुख निश्चित ही चंद्र है जो लोगों के नयनरूपी चंद्रकांतमणि को आनंदित करता है, मन के संताप को दूर करता है वह आ.वि. हंसरत्नसूरिजी की कलियुग की रात्रि में जय हो !...२६
- तपरूपी अग्नि में प्रवेश करकेभी हे सद्‌गुरुदेव ! आप शीतल किरणवाले हो । संसाररूपी दावानल से तपे हुए जीव आपके सांनिध्य में शांति महसूस करते हैं...२७

(23 **विशेषोक्तिः**)

शय्या मृदुर्मन्दतमाः प्रकोष्ठ-
-श्चित्तं विचिन्तं विरतश्च घोषः ।
निद्राऽसुरी किन्तु समैति नाऽक्ष्णोः,
श्रीहंसरत्नस्मरणप्रभावात् ॥२८॥ इन्द्रवज्रा ॥

(24 **अप्रस्तुतप्रशंसा**)

सहस्रभानुः समभूद् विभानुः, सहस्रबाहुर्गलितोरुवीर्यः ।
सहस्रदृग् मीलितनेत्रसङ्घः, श्रीहंससूरेस्तरसः पुरस्तु ॥२९॥ उपजातिः ॥

(25 **कैतवापह्नुतिः**)

अस्खलिता वहन्ती या, जिनेन्द्रकरुणाऽपगा ।
पतति सद्धृदो भूम्यां, सा हंसरत्नदृङ्मिषात् ॥३०॥

(26 **अन्योऽन्यम्**)

मोदयति विधुर्हंसं, ध्यानानुकूलरश्मिना ।
हंसो मोदयतीन्दुं च, ध्यानस्य शान्तमुद्रया ॥३१॥

---

२३. **विशेषोक्ति**रनुत्पत्तिः कार्यस्य सति कारणे ॥ ५/७८ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः । १०/१०८ (पूर्वार्धः) काव्यप्रकाशः ।

२४. **अप्रस्तुतप्रशंसा** स्यात्, सा यत्र प्रस्तुतानुगा ।
कार्यकारणसामान्यविशेषादेरसौ मता ॥ ५/६६ चन्द्रालोकः ।

२५. **कैतवापह्नुति**र्व्यक्तौ व्याजाधैर्निह्नवे पदैः । ५/२५ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

२६. **अन्योऽन्य**मुभयोरेकक्रियायाः करणं मिथः । १०/७२ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
अन्योऽन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम् । ५/८४ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

- गद्दी कोमल है, कक्ष अल्प अंधकारवाला है, मन निश्चिंत है और बाहर नीरव शांति है फिर भी निद्रा नाम की असुरी आ.वि. हंसरत्नसूरिजी के प्रभाव से मेरी आँखों में प्रवेश नहीं कर रही है..२८
- आ.वि.हंसरत्नसूरिजी की ऊर्जा के समक्ष सूर्य भी निस्तेज है, शिवजी की शक्ति भी गल चुकी है और इंद्र ने भी अपनी आँखे मूंद ली है...२९
- जिनेश्वर प्रभु की करुणा नाम की जो नदी अस्खलित बह रही है वह आ.वि. हंसरत्नसूरिजी की आँखों के बहाने से सज्जनों के हृदय की भूमि पर गिर रही है । (अर्थात् आ.वि.हंसरत्नसूरिजी की आँखों में भक्तों को प्रभु की करुणा का एहसास होता है)...३०
- चंद्र ध्यान के लिए अनुकूल किरणों से आ.वि.हंसरत्नसूरिजी को खुश करता है और आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ध्यान की शांत मुद्रा से चंद्र को खुश करते हैं...३१

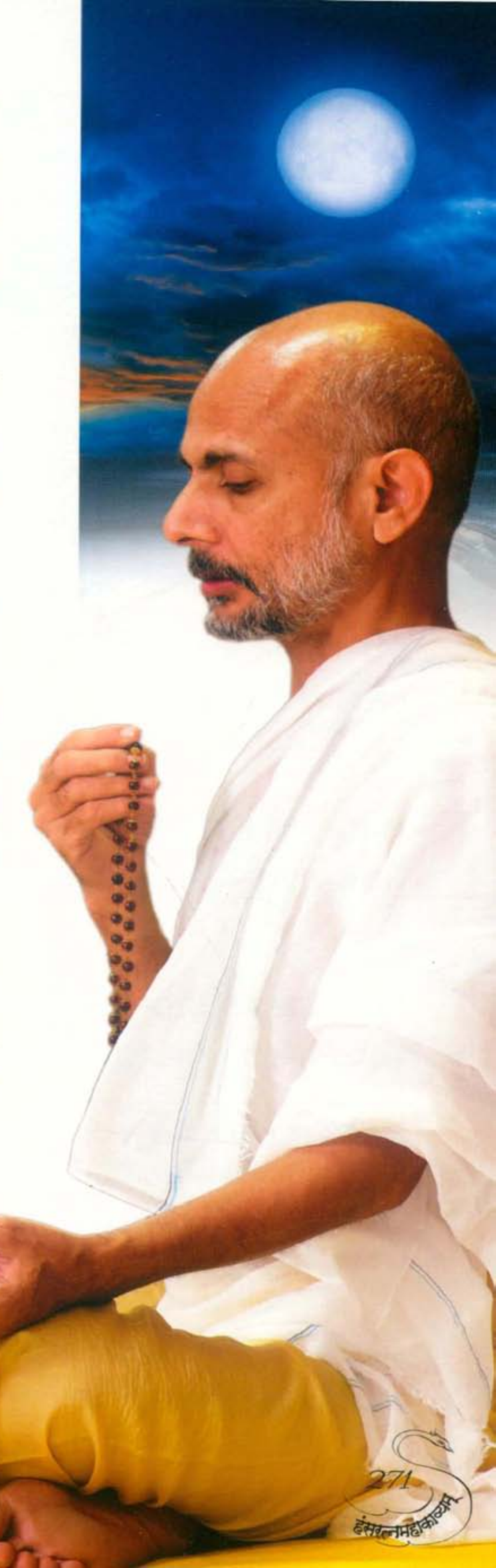

(२७ **उल्लेखः**)

कल्पितोऽसि भवाऽटव्यां, त्वमहो ! गुरुसत्तमः ।
भ्रान्तैर्दीपोऽङ्घ्रिपः श्रान्तैर्निष्क्रान्तैः सार्थवाहकः ॥३२॥

(२८ **भ्रान्तिमान्**)

जापादनून्मीलिते, सितनयने चन्द्रद्वयमिति मत्वा ।
विस्मयं किं नाऽऽप्नुयुर्हंसरत्न ! जननयानि रे ॥३३॥ आर्या ॥

(२९ **दृष्टान्तः**)

हंसरत्नो हि शक्तोऽस्ति, साधयितुं महत्तपः ।
षट्खण्डसाधने वीरश्चक्री हि भवति क्षमः ॥३४॥

(३० **लोकोक्तिः**)

साम्येन लोकते सर्वान्, हंसरत्नो न भेदतः ।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् ॥३५॥

(३१ **लेशः**)

मुखरत्वं स्फुटं दोष-रूपं प्रोक्तं मनीषिभिः ।
स्याद् गुणाय गुणश्रेणिगाने तदेव ते परम् ॥३६॥

---

२७. क्वचिद्, भेदाद् ग्रहीतॄणां, विषयाणां तथा क्वचित् ।
एकस्यानेकधोल्लेखो, यः स **उल्लेख** उच्यते ॥३७॥ साहित्यदर्पणम् ।

२८. साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धि**र्भ्रान्तिमान्** प्रतिभोत्थितः ॥ १०/३६ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
विपर्ययो **भ्रान्तिः** ॥ ६/२६ ॥ काव्यानुशासनम् ।

२९. चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं **दृष्टान्त**स्तदलङ्कृतिः । ५० (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

३०. लोकप्रवादानुकृति**र्लोकोक्ति**रिति कथ्यते । १५३ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

३१. **लेशः** स्याद्दोषगुणयोर्गुणदोषत्वकल्पनम् । १३७ कुवलयानन्दः ।

- अहो गुरुदेव ! भवरूपी वन में भटके हुए लोगों ने आपको दीपक माना, थके हुए लोगों ने आपको वृक्ष माना और दीक्षित महानुभावों ने आपको सार्थवाह माना...३२
- आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ! जाप के पश्चात् खूले हुए आपके दो श्वेत नैनों को दो चंद्र समझकर क्या लोगों की आँखें विस्मित नहीं होगी ?...३३
- आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ही बड़े तप करने में समर्थ है, वास्तव में वीर चक्रवर्ती ही षट्खंड को साधने में समर्थ होता है...३४
- आ.वि. हंसरत्नसूरिजी सभी को समदृष्टि से देखते हैं, नहीं कि भेदभाव से । (वैसे) उदार-चरित्रवालों के लिए यह धरती ही परिवार है...३५
- जरूर मुखरता को विद्वानों द्वारा दोषस्वरूप बताया गया है किंतु गुरुदेव ! आपके गुणसमुह को गाने में वही (मुखरता) गुण के लिए होती है...३६

([32]श्लेषप्रीणितोत्तरम्)

कस्तरति मानससरसि ? भ्राम्यति कश्च दिवि सुदीप्रतेजसा ? ।
क उद्धर्ता भविनां च ? हन्त ! हंस इत्युत्तरं खलु ॥३७॥ आर्या ॥

([33]विचित्रम्)

दूरे स्थातुं समीहेऽहमनुजानीहि हंस ! माम् ।
यच्छुश्रावाऽतिदूरे ते, याति दृष्टिर्विशेषतः ॥३८॥

([34]मालोपमा)

सुधयेव सुधाभानुः, समुद्र इव मुद्रया ।
पुष्पन्धयैरिव पुष्पं, तपसा त्वं महातपाः ॥३९॥

([35]परिणामः)

त्वत्सान्निध्यतरुच्छाया, सुखैकधामतामगात् ।
भवाऽटव्यां भ्रमन्नृणां, हंसरत्नमुनीश्वर ! ॥४०॥

३२.यच्चासकृदसम्भाव्यं, सत्यपि प्रश्न **उत्तरम्** ॥ १०/८२ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
प्रश्नोत्तरं क्रमेणोक्तौ स्यूतमुत्तर**मुत्तरम्**। ५/१०८ (पूर्वाधः) चन्द्रालोकः ।
इस श्लोक में 'हंस' शब्द में हंस, सूर्य और आ.वि. हंसरत्नसूरिजी का श्लेष है इसलिए यह श्लेषप्रीणित अलंकार है ।

३३.**विचित्रं** तद्विरुद्धस्य, कृतिरिष्टफलाय चेत् । १०/७१ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
विचित्रं चेत् प्रयत्नः स्याद्, विपरीतफलप्रदः । ५/८१ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
आ.वि. हंसरत्नसूरि गुरुदेव ! आपसे दूर क्यों रहना उसका जवाब यह है कि यदि दूर जाऊंगा तो ही आपकी नजर में रहूंगा । 'दूर रहने से नजर में रहा जाता है' यह चमत्कृति है इसलिए 'विचित्र' अलंकार है ।

३४.**मालोपमा** यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते । १०/२६ (पूर्वार्धः) साहित्यदर्पणम् ।

३५.**परिणामो**ऽनयोरस्मिन्नभेदः पर्यवस्यति । ५/२२ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
परिणामो भवेत्तुल्यातुल्याधिकारणो द्विधा । १०/३५ (पूर्वार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
व्या. आरोप्यमाणस्यारोविषयात्मतया परिणमनात् **परिणामः** ।

- मानसरोवर में कौन तिर रहा है ? हंस, कौन अत्यंत तेज से आकाश में भ्रमण कर रहा है ? हंस (सूर्य) और कौन भव्यजीवों का उद्धारक है ? अरे ! हंस (आ.वि. हंसरत्नसूरिजी) इस प्रकार का उत्तर है...३७
- हे आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ! मैं आपसे दूर रहना चाहता हूं । मुझे अनुज्ञा दीजिए क्योंकि आपकी दृष्टि विशेष तौर पर दूर जाती है ऐसा मैंने सुना है...३८
- अमृत से मानो चंद्र, मर्यादा से मानो सागर, भौंरो से मानो पुष्प ऐसे आप तप से महातपस्वी है...३९
- भवजंगल में भटकते लोगों के लिए हे आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ! आपकी सांनिध्यरूपी वृक्ष की छाया सुख का एकमात्र धाम बन चूकी है...४०

([३६]**सहोक्तिः**)

त्वत्तपसः सुगन्धेन, समं वात्यब्जसौरभम् ।
हंस ! परमुभे भिन्ने, ज्ञायेते काम्यकामिभिः ॥४१॥

([३७]**मिथ्याध्यवसितिः**)

सुकरं मन्यतेऽङ्गुल्या, सूर्यांशुगणनं तु यः ।
सुकरं गणनं तस्य, हंसरत्नगुणावलेः ॥४२॥

([३८]**पर्यस्तापह्नुतिः**)

समुद्रोऽपि न स-मुद्रः, समुद्रोऽसि त्वं हंसरत्नगुरो ! ।
स्वान्तर्निश्चलत्वेन, न मुद्रामतिलङ्घसे क्वचित् ॥४३॥ आर्या ॥

([३९]**एकावलिः**)

चकोरश्चन्द्रमोमग्नश्चन्द्रमाश्चन्द्रिकारतः ।
सा च हंसमुखाऽऽसक्ता, तन्मुखं गुरुसन्मुखम् ॥४४॥

---

३६. सहार्थबलाद् धर्मस्यान्वयः **सहोक्तिः** ॥ ६/१३ ॥ काव्यानुशासनम् ॥
सा **सहोक्तिः** सहार्थस्य, बलादेकं द्विवाचकम् ॥ १०/११२ (उत्तरार्धः) काव्यप्रकाशः ।

३७. किञ्चिन्मिथ्यात्वसिद्ध्यर्थं, मिथ्यार्थान्तरकल्पनम् । **मिथ्याध्यवसितिः** ॥१२६ कुवलयानन्दः ।

३८. **पर्यास्तापह्नुतिर्**यत्र धर्ममात्रं निषिध्यते । ५/२५ (पूर्वाधः) चन्द्रालोकः ।
अन्यत्र तस्या (प्रकृतस्या-ऽऽरोपार्थः **पर्यस्तापह्नुतिश्च** सः । २६ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

३९. पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम् ॥ १०/७७ ॥
स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत् स्यात्त**दैकावली** द्विधा । साहित्यदर्पणम् ।
गृहीतमुक्तरीत्यर्थश्रेणि**रेकावली** मता । ५/८८ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

- हे आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ! कमल की सुगंध आपके तप की सुगंध के साथ बह रही है मगर वह कामी और निष्कामी लोगों के द्वारा भिन्न जानी जाती है...४१
- जो ऊंगली से सूर्य के किरणों को गिनना सरल है ऐसा मानता है उसके लिए आ.वि. हंसरत्नसूरिजी का गुणसमुह गिनना सरल है...४२
- समुद्र भी समुद्र (मर्यादावाला) नहीं है, आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ! आप समुद्र (मर्यादावाले) हो । स्वयं के भीतर की निश्चलता से आप कभी भी मर्यादा नहीं लांघते...४३
- चकोर चंद्र में मग्न है, चंद्र चांदनी में मग्न है, चांदनी आ.वि. हंसरत्न-सूरिजी के मुख पर आसक्त है और वह मुख गुरु के सन्मुख है...४४

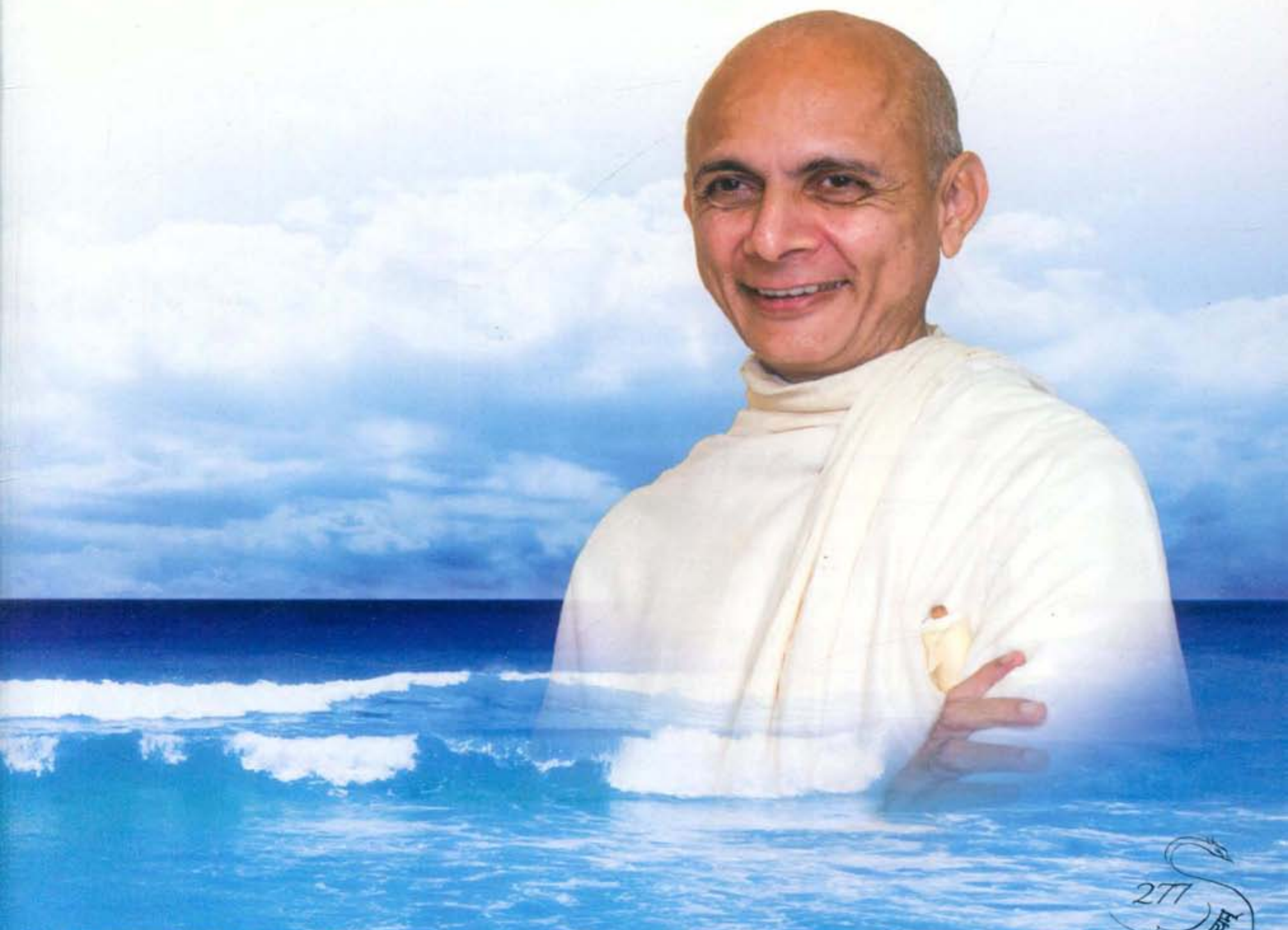

([४०]**दीपकम्**)

पिकः स्वादुस्वरं, पद्मं सुरूपं, सुरसं मधु ।
सौम्यत्वं च बिभर्तीन्दुस्तथाऽयं सद्‌गुणान् गुरुः ॥४५॥

([४१]**व्याघातः**)

स्तुत्यर्[४२]ध्यन्ति गुरोः सुज्ञा, निन्दयाऽज्ञा दरिद्रति ।
जीवेद् येनाऽम्भसा विश्वं, तेनैवाऽग्निर्विपद्यते ॥४६॥

([४३]**भाषासमः**)

आत्तसुगुणसन्दोहं, विजितपञ्चसायकम् ।
हंसगुरुवरं वन्दे, समतारसपायकम् ॥४७॥

([४४]**सारः**)

ज्ञातो द्वारेभभालाष्टकर्ममर्मविदारणात् ।
तीक्ष्णः करिरदौ तस्मात् सिंहहस्तो गुरोस्तरः ॥४८॥

---

४०. अप्रस्तुतप्रस्तुतयो**र्दीपकं** तु निगद्यते ॥ १०/४८ ॥
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ॥ साहित्यदर्पणम् ।
प्रस्तुताप्रस्तुतानां च तुल्यत्वे **दीपकं** मतम् । ५/५३ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

४१. **व्याघातः** स तु केनाऽपि, वस्तु येन यथाकृतम् ॥ १०/७४ ॥
तेनैव चेदुपायेन कुरुतेऽन्यस्तदन्यथा ॥ साहित्यदर्पणम् ।
स्याद् **व्याघातो**ऽन्यथाकारि वस्त्वन्यक्रियमुच्यते ॥ ५/८६ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

४२. अवर्णस्येवर्णादिनैदोदरल् ॥१/२/६॥ सिद्धहेमशब्दानुशासनम् ।

४३. शब्दैरेकविधैरेव भाषासु विविधास्वपि ।
वाक्यं यत्र भवेत् सोऽयं **भाषासम** इतीष्यते ॥ १०/१० साहित्यदर्पणम् ।
यह श्लोक संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में पढा जा सकता है इसलिए भाषासम है ।

४४. उत्तरोत्तरमुत्कर्षो, वस्तुनः **सार** उच्यते ॥१०/७८ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
सारो नाम पदोत्कर्षः, सारताया यथोत्तरम् ॥ ५/९० (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।

- कोयल मधुर स्वर को, कमल सुंदर रूप को, शहद मधुर रस को, चंद्र सौम्यता को धारण करते हैं वैसे सद्‌गुरुदेव सद्‌गुणों को धारण करते हैं...४५
- गुरुदेव की स्तुति द्वारा सुज्ञ लोग समृद्ध बनते हैं और निंदा द्वारा अज्ञ लोग दरिद्र बनते हैं । जिस जल से पूरा विश्व जीवन जीता है उसी जल से अग्नि मृत्यु को प्राप्त करता है...४६

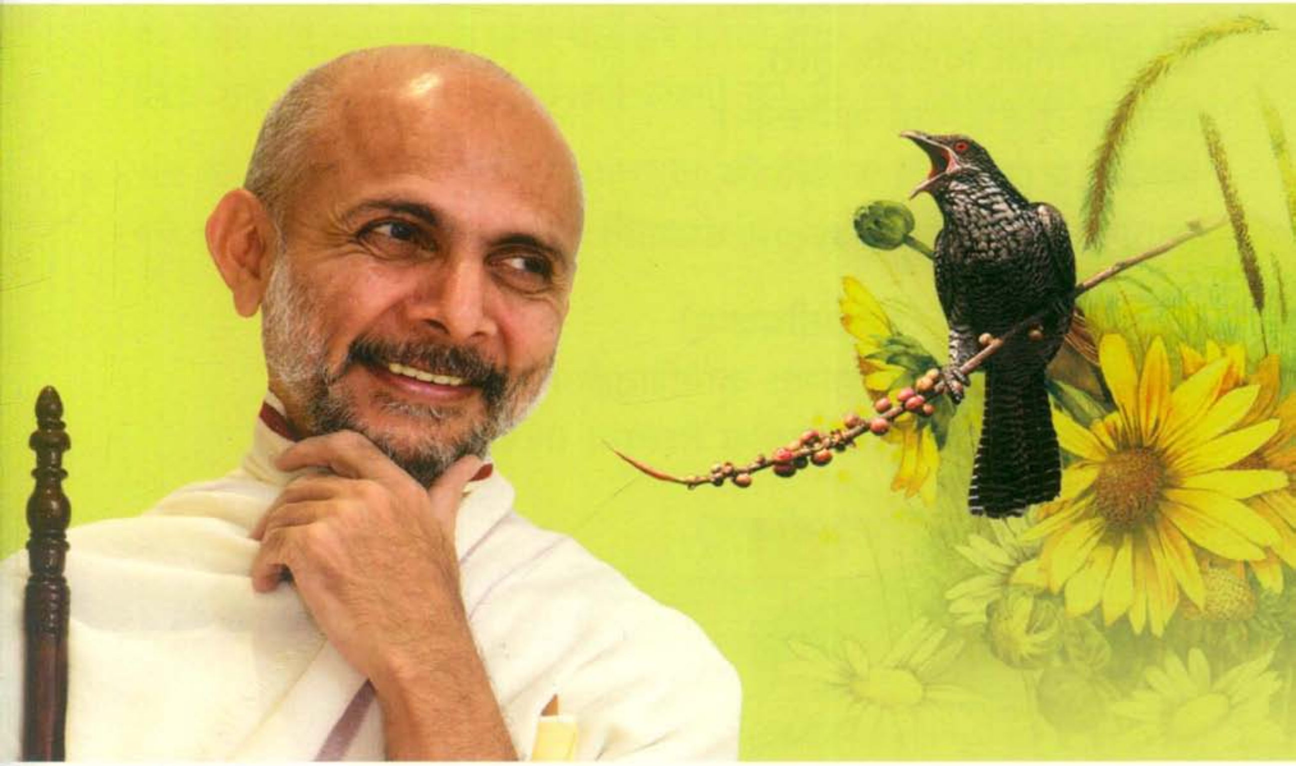

- जो सद्‌गुण के समूह को पा चूके हैं, कामदेव को जीत चूके हैं और जिन्होंने समतारस का पान किया है उस आ.वि हंसरत्नसूरिजी को मेरी वंदना हो...४७
- द्वार, हाथी का ललाट और कर्म के मर्म को चिर देने से क्रमशः हाथी के दांत, शेर का हाथ और गुरुदेव (आ.वि.हंसरत्नसूरिजी) का पराक्रम तीक्ष्ण माना गया है...४८

(45 **निश्चयः**)

नेदमिन्दीवरं किन्तु, गुरोर्नेत्रं मधुव्रत ! ।
तस्मिंश्च बन्धवा नो ते, कृष्णतारा परं च सा ॥४९॥

(46 **विभावना**)

हतस्तृतीयाक्षि विनाऽपि मारो,
विना च तन्तुं रचिता श्रुतिस्रक् ।
कर्माणि शस्त्राणि विना जितानि,
रिपूपमानानि तपोधनेन ॥५०॥ उपजातिः ॥

(47 **मालादीपकम्**)

अन्तरङ्गारिसङ्ग्रामे, बाणाः कामेशितुर्हृताः ।
तैर्बलं तेन च प्राणा, विजयश्रीश्च तैस्त्वया ॥५१॥

(48 **प्रत्यनीकम्**)

शशिज्योत्स्नानिभायास्त्वन्मुखप्रशान्तदीधितेः ।
असूययाऽक्षमो राहुः, शशिनमुपरज्यति ॥५२॥

---

४५. अन्यन्निषिध्य प्रकृतस्थापनं **निश्चयः** पुनः ॥ १०/३९ (उत्तरार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
एकस्य च ग्रहे न्यायदोषाभावाद**निश्चयः** ॥ १०/१४० (उत्तरार्धः) काव्यप्रकाशः ।

४६. **विभावना** विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ॥ १०/६६ (पूर्वार्धः) साहित्यदर्पणम् ।
विभावना विनाऽपि स्यात्कारणं कार्यजन्म चेत् । ७६ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

४७. **तन्मालादीपकं** पुनः ॥ १०/७६ ॥ धर्मिणामेकधर्मेण सम्बन्धो यद्यथोत्तरम् । साहित्यदर्पणम् ।
मालादीपकमाद्यं चेद्यथोत्तरगुणावहम् । १०/१०४ (पूर्वार्धः) काव्यप्रकाशः ।

४८. **प्रत्यनीकम**शक्तेन प्रतीकारे रिपोर्यदि ।
तदीयस्य तिरस्कारस्तस्यैवोत्कर्षसाधकः ॥ १०/८६ साहित्यदर्पणम् ।
प्रतिपक्षमशक्तेन प्रतिकर्तुं तिरस्क्रिया । १०/१२९ (पूर्वार्धः) काव्यप्रकाशः ।

- भ्रमर ! यह श्वेतकमल नहीं अपितु, गुरुदेव की आँख है और उसमें जो दिख रहा है वह तेरे भाई नहीं किंतु काली पुतली हैं...४९

- तपस्वी (आ.वि.हंसरत्नसूरिजी) ने तीसरी आँख बिना भी कामदेव को मार डाला, धागे के बिना भी कीर्ति की माला बनाई और बिना शस्त्र भी शत्रु की उपमा धारण करनेवाले ऐसे कर्मों को जीत लिया...५०

- आभ्यंतरशत्रु के संग्राम में (गुरुदेव !) आपके द्वारा कामराजा के बाण हर लिए गए, उससे उसका बल हर लिया गया, उससे उसके प्राण हर लिये गये और उससे विजयरूपी लक्ष्मी को भी हर लिया गया...५१

- चंद्र की चांदनी जैसी तुम्हारे शांतमुख की किरणों की ईर्ष्या से असमर्थ बने हुए राहु ने चंद्र का ग्रहण किया...५२

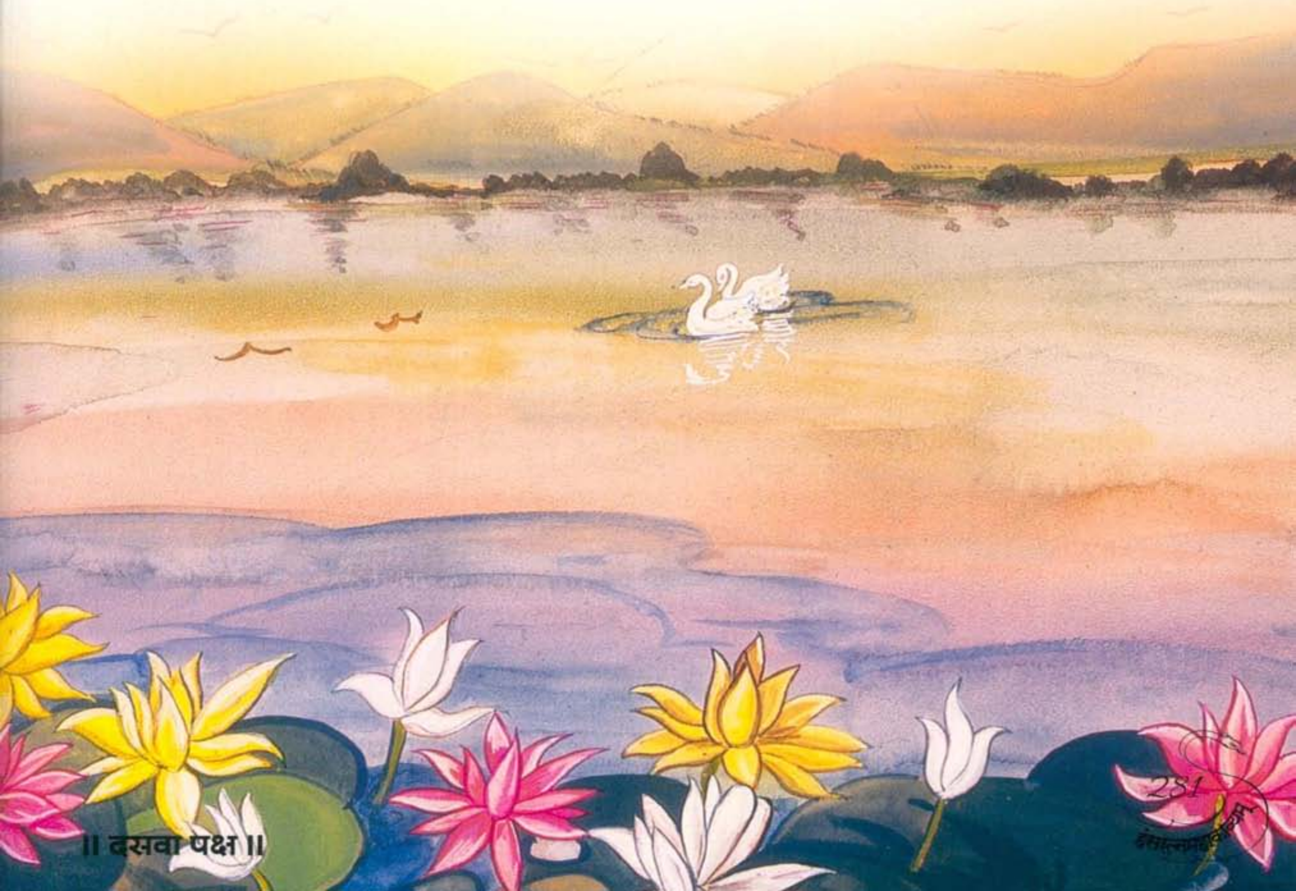

(^{४९}**अन्त्यानुप्रासः**)

त्वमेव रागाहिविषैकमन्त्रस्त्वं कर्मपाशेभ्य इह स्वतन्त्रः ।
मोक्षैककामः शमितान्यकामस्तपोविधानेन तथाऽभिरामः ॥५३॥ उपजातिः ॥

(^{५०}**व्याजस्तुतिः**)

अहो ! ते कीदृशं वीर्यं, यन्मौनं वचसि द्विषाम् ।
अहो ! चाऽऽशीःप्रभावस्ते, येनाऽभूद् विधवा रतिः ॥५४॥

(^{५१}**भेदकातिशयोक्तिः**)

अन्यदेवास्ति शौण्डीर्यमन्य एव पराक्रमः ।
अन्यैव च तपःसम्पद्, हंसरत्न ! गुरो ! तव ॥५५॥

(^{५२}**परिवृत्तिः**)

समर्प्य गुरवे चित्तमात्ता हंसेन तत्कृपा ।
व्रतं दत्त्वा गुरुणाऽऽत्तं, तस्य सत्कर्मणां यशः ॥५६॥

---

४९. व्यञ्जनं चेद् यथावस्थं, सहाद्येन स्वरेण तु ।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वा**दन्त्यानुप्रास** एव तत् ॥ १०/६ साहित्यदर्पणम् ।

५०. स्तुतिनिन्दयोरन्यपरता **व्याजस्तुतिः** ॥ ६/१६ ॥ काव्यानुशासनम् ।
व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दा स्तुतिर्वा रूढिरन्यथा ॥ १०/११२ (पूर्वार्धः) काव्यप्रकाशः ।

५१. **भेदकातिशयोक्ति**श्चेदेकस्यैवान्यतोच्यते । ५/४५ (पूर्वार्धः) चन्द्रालोकः ।
भेदकातिशयोक्तिस्तु तस्यैवान्यत्ववर्णनम् ॥ ३६ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

५२. पर्यायविनिमयौ **परिवृत्तिः** ॥ ६/२२ ॥ काव्यानुशासनम् ।
परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः । १११ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

- गुरुदेव ! आप ही यहाँ राग रूपी सर्प के विष को दूर करनेवाले एकमात्र मंत्र हो, कर्म के बंधनों से स्वतंत्र (मुक्त) हो, मोक्ष की एकमात्र इच्छावाले हो और जिनकी अन्य कामनाएँ शांत हो चुकी हैं ऐसे हो तथा तप के विधान द्वारा सुंदर हो...५३

- अहो ! आपकी क्या शक्ति है कि आप दुर्जन के वचन पर भी मौन रहते हो और अहो ! आपके आशीर्वाद का प्रभाव भी कैसा है कि जिससे रति (कामदेव की पत्नी) भी विधवा हो गयी...५४

- हे आ.वि. हंसरत्नसूरिजी ! आपकी वीरता कुछ अलग ही है, आपका पराक्रम कुछ अलग ही है और आपकी तपसंपदा भी कुछ अलग ही है...५५

- गुरु को मन सौंपकर पूज्य हंसरत्नविजयजी द्वारा उनकी कृपा प्राप्त की गयी और उन्हें (पू. हंसरत्नविजयजी को) दीक्षा देकर गुरुदेव द्वारा उनके सत्कार्यों का यश प्राप्त किया गया...५६

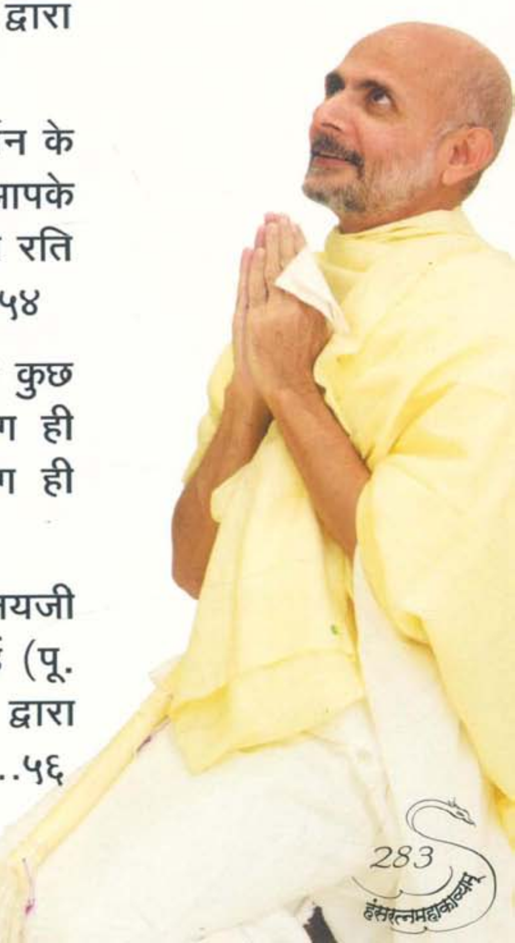

([५३]परिसङ्ख्याः)

किं स्वादु ? सद्गुरुवचो, न पयो न वाऽऽम्रं,
किंवा सुधा ? गुरुकृपा, न निशाकरोत्था ।
किं मूल्यवद् ? गुरुपदस्य रजो, न रत्न-
मेवं हि हंससुगुरोर्विमृशन्ति भक्ताः ॥५७॥ वसन्ततिलका ॥

एवं स्तुत्या गुरोर्हंसरत्नसूरिवरस्य तु ।
भवति युगपद् वृद्धिर्निर्मलगुणपुण्ययोः ॥५८॥

अथाऽहं वच्मि सद्गच्छं, हंसरत्नतपस्विनः ।
चन्दनमीदृशं रम्यं, नन्दनं तर्हि कीदृशम् ! ॥५९॥

---

५३. पृष्टेऽपृष्टे वा अन्यापोहपरोक्तिः **परिसङ्ख्या** ॥ ६/२९ ॥ काव्यानुशासनम् ।
परिसङ्ख्या निषिध्यैकमेकस्मिन् वस्तु यन्त्रणम् ॥ ११२ (पूर्वार्धः) कुवलयानन्दः ।

- मधुर क्या है ? - गुरु के वचन, ना कि दूध या आम,
  अमृत क्या है ? - गुरु की कृपा, ना कि चंद्र से उत्पन्न होनेवाला अमृत,
  मूल्यवान क्या है ? - गुरु की चरणरज, ना कि रत्न-
  इस प्रकार गुरुदेव आ.वि. हंसरत्नसूरिजी महाराजा के भक्त सोचते हैं...५७
- इस प्रकार आचार्य विजय हंसरत्नसूरि की स्तुति से निर्मल गुणों की और निर्मल पुण्य की एक साथ वृद्धि होती है...५८
- अब मैं तपस्वी हंसरत्नसूरि महाराज के गच्छ को बताता हूं । यदि चंदन इतना सुंदर हो तो (उसका उत्पत्तिस्थान) नंदनवन कैसा होगा ?...५९

प्रेमभुवनभानुसूरिसमुदायरासः

(राग : यो हि गर्वमविवेकभरेण... उपमिति)

सर्वदर्शिजिनदर्शितसत्पथरागिनः,
सुव्रतव्रततिसंवृतसद्‌गुरुसङ्गिनः ।
प्रेमभानुजयघोषसुगच्छसदाश्रयं,
ते श्रयन्तु कलिकालमरौ मरुशाद्वलम् ॥ ध्रुवकम् ॥६०॥

सारपूर्णगहनाऽऽगमतत्त्वविवेचकाः,
कर्मघर्महरणाय वचोऽमृतसेचकाः ।
भान्ति शान्तिवनितारमणा श्रमणा इमे,
सूरिराजप्रमुखेन्द्रसुशासितसद्‌गणे...सर्व... ॥६१॥

ग्रन्थवृन्दपरिशोधनलेखनपाठनं,
यत्र सर्वविषयेषु विराजति पाटवम् ।
तत्र नः सुसमुदाय उरुश्रिय आस्पदे,
संयताः शुचिगुणा विलसन्ति पदे पदे...सर्व...॥६२॥

श्रीजिनेन्द्रगुणरङ्गसुरञ्जितमानसा,
अन्तरङ्गबहिरङ्गकुसङ्गविमोचनाः ।
मन्त्रतन्त्रजपनैश्च प्रणामितनिर्जराः,
पान्ति ते गणगता मुनयः कृतनिर्जराः...सर्व...॥६३॥

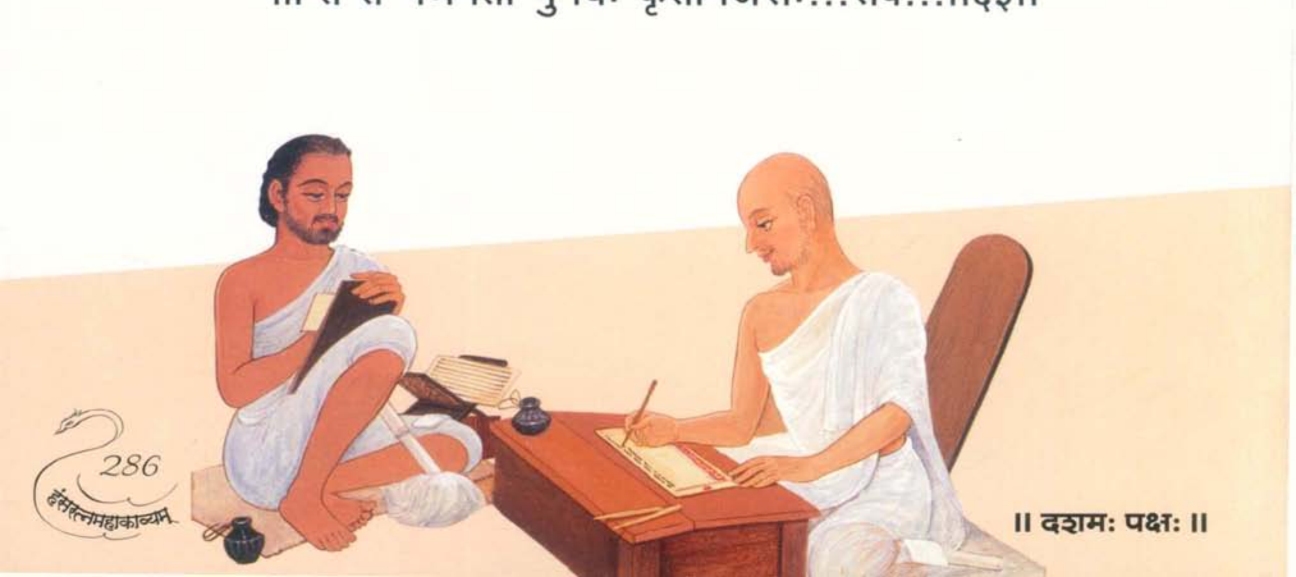

प्रेम-भुवनभानुसूरि समुदाय का रास

- जो सर्वदर्शी जिनेश्वर प्रभु ने बताये हुए पथ के रागी हैं, सुव्रतरूपी लता से आवृत्त सद्‌गुरू के संगी हैं वे कलिकाल के रेगिस्तान में हरियाली के समान प्रेम-भुवनभानु-जयघोषसूरिजी गच्छरूपी सुंदर आश्रय का आसरा लें...६०

- सारपूर्ण, गहन आगमतत्त्व के विवेचक, कर्म की उष्णता को हरने के लिए वचन का अमृत सिंचने वाले, शांतिरूपी स्त्री को प्रिय ऐसे ये श्रमण आचार्य विजय राजेन्द्रसूरि महाराज के गण में सुंदर लग रहे हैं...६१

- ग्रन्थ समुह का संशोधन-लेखन-अध्यापन आदि तमाम विषयों में पटुता जहां शोभा दे रही है उस प्रचूर लक्ष्मी के स्थान समान हमारे समुदाय में सुंदर गुणवाले मुनि कदम-कदम पर विकास कर रहे हैं...६२

- श्री जिनेश्वर प्रभु के गुणरूपी रंग से रंगे हुए मन वाले, बाह्य-आभ्यंतर कुसंग को छोडने वाले, मन्त्र आराधन और जाप के द्वारा जिन्होंने देवताओं को झुकाया है, निर्जरा जिनके द्वारा की गयी है ऐसे गण में स्थित मुनि रक्षा करते हैं...६३

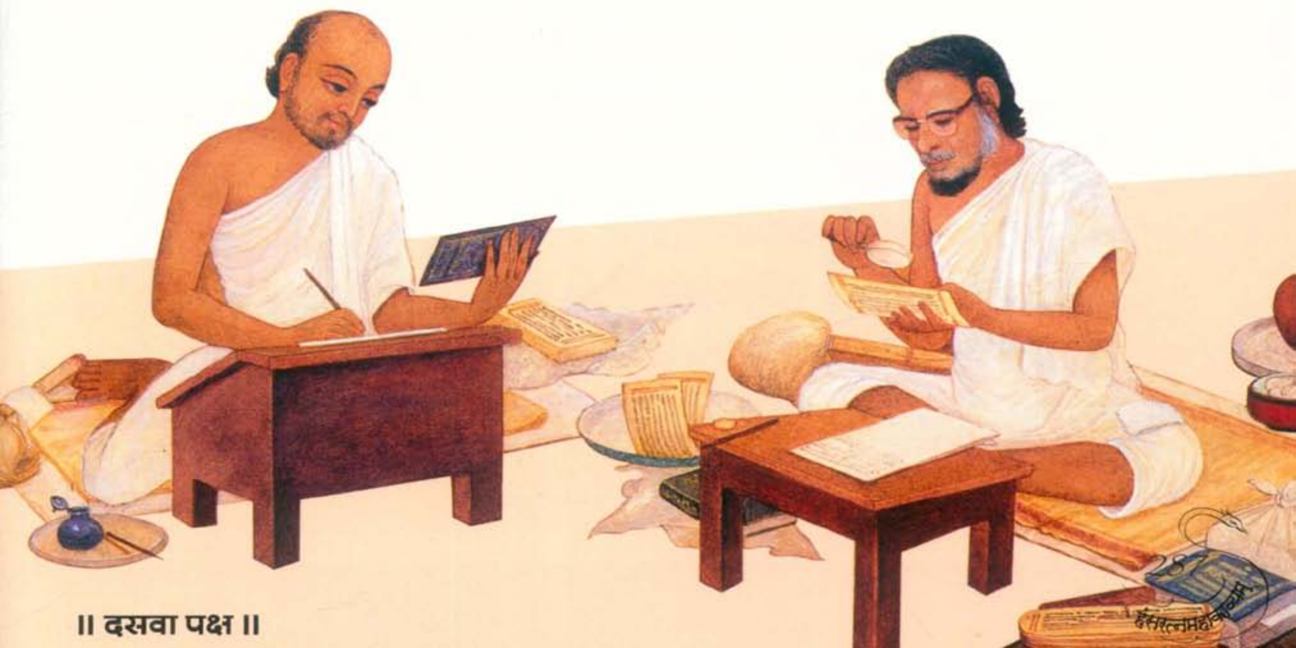

स्मारणाप्रमुखदण्डचतुष्कप्रयोजनं,
यत्र शल्यहरणाय मुनौ क्रियते घनम् ।
गृह्यते च मुनिभिः सुगवेषितभोजनं,
तत्र गच्छतिलके ननु कस्य न रोचनम् ?...सर्व...॥६४॥

शुद्धगुप्तिसमितिष्वपि ये विहिताऽऽदराः,
कुक्षिशम्बलतया च किलाऽत्र कृशोदराः ।
बह्मचर्ययतनाव्रतपालनतत्पराः,
सन्तु ते हि शरणा मुनिराजमतल्लिकाः...सर्व...॥६५॥

श्रोतृकर्णशिखिनन्दिजलाऽऽगमसोदरं,
कुर्वते प्रवचनं गुरवोऽत्र मनोहरम् ।
तन्निशम्य प्रतरन्ति भवाम्बुनिधिं जना,
जायते च जिनशासनसत्कप्रभावना...सर्व...॥६६॥

नित्यशर्मजलवर्षणकारिघनाघनाः,
सप्तभङ्गिनयदर्शनशास्त्रवदावदाः ।
निर्मलस्वगुणनन्दितकृत्स्नचराचरा,
गच्छराज्यसुभटाः शुभपुण्यधराधरा...सर्व...॥६७॥

गारवत्रयमदाष्टकचूर्णन उद्यता,
धारिताऽद्रिसमदुर्वहपञ्चमहाव्रताः ।
पालयन्ति दशधा यतिधर्ममहर्निशं,
सन्तु ते मुनिजनाः स्मरणाऽध्वनि मेऽनिशम्...सर्व...॥६८॥

- जहां शल्य दूर करने के लिए सारणा आदि चार दंडों का प्रचुर प्रयोग मुनिओं पर किया जाता है और मुनियों द्वारा गवेषणा की गयी (=निर्दोष) भिक्षा ग्रहण की जाती है उस श्रेष्ठ गच्छ के प्रति किसे रूचि नहीं होगी ?...६४
- शुद्ध गुप्ति और समिति के प्रति जो आदर वाले हैं, कुक्षी शंबलता के द्वारा जो कृशोदर हैं, ब्रह्मचर्य-यतना और व्रत के पालन में तत्पर वे श्रेष्ठ साधु मेरी शरण है...६५
- श्रोता के कानरूपी मयूर को आनंदित करनेवाले, बादल जैसे मनोहर प्रवचन यहां (गच्छ में) गुरू करते हैं और उसे सुनकर लोग भवसागर तिरते हैं और जिनशासन की प्रभावना होती है...६६
- जो निरंतर आनंद को बरसाने वाले बादल के समान हैं, सप्तभंगी-नय-दर्शनशास्त्र को कहने वाले हैं, अपने निर्मल गुण से संपूर्ण विश्व को आनंदित करने वाले हैं वे गच्छरूपी राज्य के सुभट शुभपुण्य के राजा हैं...६७
- तीन गारव और आठ मद को चूरने में उद्यत हैं, पर्वत के समान कठिनाई से वहन किये जा सके ऐसे पांच महाव्रतों को धारण करने वाले हैं, दस प्रकार के यतिधर्म का दिन-रात पालन करने वाले हैं वे मुनिजन मेरे स्मृतिपथ पर सतत रहें...६८

''व्यञ्जनार्थतदुभावितथाऽभिनिबोधनं,
कालपालनमनादरदोषविवर्जनम् ।
ज्ञानतत्परिवृढाविनयादिसमुज्झनं,''
ज्ञानमाददत एवमिह व्रतिनोऽनघम्...सर्व...।।६९।।

वादयन्ति शमडिण्डिममार्जवझल्लरीं,
सत्त्वदुन्दुभिमुदारमनःस्थितिवल्लकीम् ।
शुद्धभावमुरजं धीरतापणवं तथा,
ध्यानपर्वणि निजात्मन उत्कतयर्षयः...सर्व...।।७०।।

प्रीतिभक्तिवचनैः सदसङ्गतया तथा,
साधयन्ति दमिनः शुभयोगदशां पराम् ।
कामनामवपुषामभिषङ्गविनाशनं,
जायते मुनिगणे मम कामितपूरणम्...सर्व...।।७१।।

श्रेणिसिद्धिगुणरत्नतपोभिरनुत्तमैः,
कर्मकाष्ठतनुखादनदक्षघुणोपमैः ।
शोधयन्ति निजचेतनमत्र मुनीश्वरा,
गच्छमध्य उपकारपरा हि तपोधना...सर्व...।।७२।।

मित्रताऽऽह्वमुकुटं करुणाभुजबन्धनं,
सद्गुणाऽऽमुदवतंस उपेक्षणविष्टरम् ।
ज्ञानरोचनक्रियारुचिसञ्ज्ञकचामरौ,
ह्येवमत्र यमिराजविभूतिरलत्यहो !...सर्व...।।७३।।

• व्यंजन-अर्थ और तदुभय का अवितथ बोध, समय का पालन, अनादर दोष का वर्जन, ज्ञान और ज्ञानी के अविनय का त्याग-इस प्रकार मुनि यहां सुंदर ज्ञान को ग्रहण करते हैं...६९

• उपशम की घोषणा, ऋजुता की झालर, सत्त्व की दुंदुभि, उदार मनोस्थिति की वीणा, शुद्धभाव का मृदंग, धीरता का नगाडा-इन वाजिंत्रों को स्वयं की आत्मा के ध्यान पर्व में उत्सुकता से मुनि बजाते हैं...७०

• प्रीति-भक्ति-वचन तथा असंग अनुष्ठान के द्वारा साधु श्रेष्ठ ऐसी शुभयोगदशा को साधते हैं । मुनिगण में मेरे काम-देह और नाम के अध्यास का नाश होता है और इच्छापूर्ति होती है...७१

• श्रेणितप, सिद्धितप, गुणरत्नसंवत्सरतप आदि कर्मरूपी लकड़ी के शरीर को खाने में कुशल दीमक समान उत्तम तप के द्वारा यहां गच्छ में उपकार में तत्पर, तपस्वी मुनि अपनी आत्मा को शुद्ध करते हैं...७२

• मैत्री नाम का मुकुट, करूणारूपी बाजुबंध, सद्गुण के आनंद का (=प्रमोद का) हार, उपेक्षा का आसन, ज्ञानरूचि-क्रियारूचि नाम के दो चामर-अहो ! इस प्रकार यहां मुनिराज की विभूति शोभा दे रही है...७३

आप्तवागतिक्रमः श्रमणाऽऽचरणाऽरुचि-
र्मातृस्थानश्रयणं परदोषगवेषणम् ।
द्रोहधाष्ट्र्यकलहभ्रममुख्यकुवृत्तयो,
नोद्भवन्ति किल तास्तु कदाऽपि गणे मम...सर्व...॥७४॥

उल्लसद्यतिसहायगुणोत्कलिकाभरं,
नैकयोगझषसन्ततिसंक्षुभिताऽऽत्मकम् ।
प्रेङ्खदात्मरमणत्वसुपोतमनोरमं,
नौमि तं मुनिगणाम्बुनिधिं गुणसन्निधिम्...सर्व...॥७५॥

धीधनाः शमितराजसतामसवृत्तयः,
प्राप्तचित्तमलमोचकसात्त्विकवृत्तयः ।
वर्धमानप्रकृतौ सदुपग्रहकारिणि,
साधवो मुनिगणे विभान्ति गुणाऽऽलयाः...सर्व...॥७६॥

कर्मशास्त्रनवसर्जनप्रेरणकारिणः,
कर्मराजगजराजकपोलविदारिणः ।
सद्गुणाऽऽत्मफलराजिविराजितशाखिनः,
प्रेमसूरिगुरवोऽत्र जयन्ति सुवादिनः...सर्व...॥७७॥

वर्धमानतपसा रसरागविदारकः,
पोतकल्प इह संसृतिसागरतारकः ।
ध्वस्तचेतनविकारकमन्मथचारकः,
पात्ययं **भुवनभानुगुरु**र्गणपालकः...सर्व...॥७८॥

- आप्तवचनों का उल्लंघन करना, श्रमण के आचारों में अरूचि, माया का आसरा लेना, दूसरों की गलती ढूंढना, द्रोह, धृष्टता, कलह, भ्रम आदि कुवृत्तियां प्रायः कभी भी यहां मेरे गण में उत्पन्न नहीं होती...७४
- उल्लसित मुनि के सहायगुण की लहरों से भरे हुए, अनेक योगरूपी मछलियों के समुह से संक्षोभ को प्राप्त किये हुए, झुल रही आत्मरमणता की नावों से मनोरम ऐसे गुण के भंडार मुनिगणरूपी समुद्र को मैं नमन करता हूं...७५
- मति है धन जिनका ऐसे, जिनकी राजस और तामस वृत्ति शांत हो गई है ऐसे स्वभाववाले, चित्त के मल से मुक्त करनेवाली सात्त्विकवृत्तियाँ जिसने पाली है ऐसे उपकार करने वाले साधु निरंतर बढ रहे इस गण में शोभा दे रहे हैं...७६

- कर्मशास्त्र के नवसर्जन की प्रेरणा करनेवाले, कर्मराजरूपी हाथी का भाल भेदने वाले, सद्‌गुणरूपी फल के समुह से शोभित वृक्षसमान, सुवादी, **आचार्य विजय प्रेमसूरिजी महाराजा** यहां विजय प्राप्त करते हैं...७७
- वर्धमान तप के द्वारा रस राग को तोडनेवाले, जहाज की तरह संसार सागर से पार उतारने वाले, आत्मा को विकृत करनेवाले कामदेव का कारावास जिन्होंने ध्वस्त किया है वे गण के पालक **आचार्य विजय भुवनभानुसूरिजी** रक्षा करते हैं...७८

यः स्वयं निरतिचारसुसंयमसाधकः,
स्वाऽऽश्रयस्थयमिनामपि दोषनिरोधकः ।
क्षेमयोगकरणे कुशलो मुनिसन्ततौ,
सोऽत्र **पद्मविजयो** जयताद् भरतक्षितौ...सर्व...॥७९॥

आगमावलिसुधारसपानरतः परं,
नव्यजैनवरवाङ्मयबोधतृषाऽऽतुरः ।
चिन्तनाऽम्बरविहारपरायणखेचरः,
सूरिराज**जयघोषगुरु**र्नतनाकजः...सर्व...॥८०॥

याति दूरमपि यो जिनदर्शनकाम्यया,
माति नो च हृदि यस्य समासुमतां दया ।
स्नाति चाऽऽगमसरस्यनिशं तमहर्निशं,
धर्मजिद्गुरुवरं गुणदं प्रणमाम्यहम् ॥८१॥

बोधिता मरुधरस्य जना वचनाऽमृतैः,
शोधिताः सुकृतयो नवशास्त्रततेस्तथा ।
रोधिता भवपरिभ्रमकारणमाश्रवाः,
श्रीजितेन्द्रसुगुरुर्जयताद् भुवि सर्वदा ॥८२॥

श्रेष्ठमङ्गलमुहुर्तप्रदानविशारदः,
शारदाम्बुद इव स्फटिकामलमानसः ।
मानसौक इव सारग्रही ह्युतवाचको,
वाचको **विमलसेनगुरु**र्ददतां श्रियम्...सर्व...॥८३॥

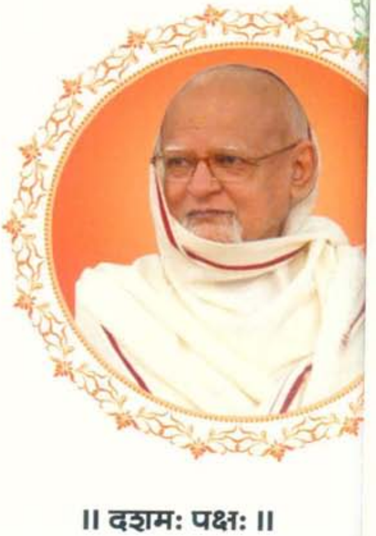

- जो स्वयं निरतिचार संयम के साधक हैं, अपने आश्रय में आनेवाले मुनियों के दोष के निरोधक हैं, मुनि के समूह के विषय में योगक्षेम करने में जो कुशल हैं उस **पंन्यास पद्मविजयजी म.सा.** की भरतक्षेत्र की भूमि पर जय हो...७९

- आगम की श्रेणीरूपी अमृत के पान में रत होने के बावजूद जो नये जिनवचनों के बोध की प्यास से आतुर हैं, चिंतन के आकाश में उड़ने में परायण पक्षी समान, देवों से वंदित वे **आचार्य विजय जयघोषसूरिजी महाराजा** हैं...८०
- जो प्रभु के दर्शन के लिए दूर भी जाते हैं, जिनके हृदय में सभी जीवों के प्रति दया का भाव समा नहीं रहा है और प्रतिपल आगम के सरोवर में स्नान करते हैं, ऐसे गुण को देनेवाले **आचार्य विजय धर्मजितसूरिजी महाराजा** को मैं रोज प्रणाम करता हूं...८१

- जिन्होंने अमृत समान वचनों से मारवाड की जनता को प्रतिबोधित किया, जिन्होंने नूतन शास्त्रसमूह की कृतियाँ संशोधित की है, जिन्होंने भवभ्रमण के कारणरूप आश्रवों को रोक दिया है वैसे **आचार्य विजय जितेन्द्रसूरिजी महाराजा** को नमन करता हूँ...८२
- श्रेष्ठ मंगल मुहूर्त देने में निपुण, शरदऋतु के बादल जैसे, स्फटिक जैसे निर्मल मन वाले, हंस की तरह सार को ग्रहण करने वाले, सत्य कहनेवाले, **उपाध्याय विमलसेनविजयजी महाराज** कल्याण कीजिए...८३

पद्मरागगुलिकाकलधौतमणिप्रभा-
स्पर्द्धिनी तव विभाति किलाऽत्र तपःप्रभा ।
साधुसेवनरतिं प्रददस्व कृपापर !
त्वादृशीं गुरुवरेण्य ! मुनीश ! **मणिप्रभ** !...सर्व...॥८४॥

धातवो द्विसहस्रमिता निशि योऽस्मरत्,
स्वप्नमध्य इह नैकसुशास्त्रविचक्षणः ।
वक्ष्यमाणगुरुत्रितयसत्क सुशिक्षको,
गुणानन्दगुरुदेव उदारगुणेश्वरः...सर्व...॥८५॥

तीर्थरक्षणपटो ! चटुलाक्षनियामक !,
यामकन्दलजलोपम ! सङ्घविरोचन ! ।
रोचन ! श्रमणपङ्कजमोदनचन्द्र ! शे,
चन्द्रशेखरगुरो ! ददतां स्थिरतां हि मे...सर्व...॥८६॥

पद्मभूषणविभूषित ! लब्धसरस्वती-
सत्कृप ! प्रभुपदैकविलग्न ! यशोनिधे ! ।
पञ्चशाखरचिताभिनवश्रुतशाख ! रे,
रत्नसुन्दरगुरो ! भविनां भवतु श्रिये...सर्व...॥८७॥

शोधितं प्रवचनैर्युवमानसमन्दिरं,
स्थापितं च भुवनाद्भुतमानसमन्दिरम् ।
येन स श्रुतविबोधितमानसमन्दिरो,
हेमरत्नगुरुरेतु सतां स्मृतिमन्दिरे...सर्व...॥८८॥

- पद्मराग, चांदी, सोना, मणि आदि की प्रभा के साथ स्पर्धा करनेवाली आपके तप की प्रभा चमक रही है। हे कृपा करने में तत्पर गुरूदेव ! **मुनिराज श्री मणिप्रभविजयजी महाराज !** आप जैसा साधु-सेवा का आनंद दीजिए...८४

- रात्रि में २००० धातुओं का स्वाध्याय स्वप्न में करने वाले, अनेक शास्त्रों को जानने वाले, उदार गुण के स्वामी ऐसे **आचार्यदेव श्रीमद् विजय गुणानंदसूरिजी महाराज** हैं जो अब कहे जाने वाले तीन गुरूभगवंतों के शिक्षादाता हुए...८५

- हे तीर्थरक्षा में कुशल ! चंचल इन्द्रियों को नियंत्रित करने वाले ! व्रतरूपी अंकुर के लिए जल समान, संघ के सूर्य ! सुंदर ! श्रमणरूपी कमल को आनंद देने वाले चन्द्र ! हे **पंन्यासप्रवर चन्द्रशेखरविजयजी** गुरूदेव ! मुझे आनंद में स्थिरता दीजिए...८६

- पद्मभूषण सम्मान से भूषित ! सरस्वती देवी की कृपा प्राप्त करने वाले ! प्रभु चरणों में स्थित ! यश के भंडार ! हस्त के द्वारा जिन्होंने श्रुत की नयी शाखा रची है ऐसे हे **आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसुंदरसूरीश्वरजी** गुरूदेव ! आप भव्य लोगों के कल्याण का हेतु बनिए...८७

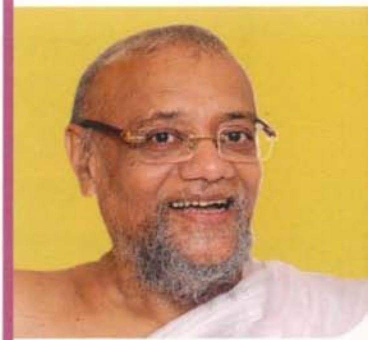

- जिन्होंने प्रवचन के द्वारा युवाओं के मनमंदिर को शुद्ध किया है, लोक में अद्भुत ऐसे मानसमंदिर तीर्थ की स्थापना की है, ऐसे श्रुत से बोधित है मनमंदिर जिनका ऐसे **आचार्य विजय हेमरत्नसूरिजी महाराज** सज्जनों के स्मृतिमंदिर में पधारिये...८८

यत्र सन्ति गुरवो बहवो जिनशासना-
रातिचक्रदलनाः प्रथिताऽऽर्हतशासनाः ।
यं ह्यवाप्य समुदायमहं किल भाग्यभाक्,
प्राप्नुयां भवभवे तमिति प्रभुमर्थये...सर्व...॥८९॥

***

एवं श्री हंसरत्नाऽऽर्यो, भावयत्यनिशं हृदि ।
गच्छस्य दुष्प्रतीकारा, उपकारा गुरोरिव ॥९०॥

(उपसंहारः)

इत्येवं हंसरत्नस्य, जीवनमतिसुन्दरम् ।
वर्णितमस्ति काव्येऽस्मिन्, श्रेयसे स्वपराऽऽत्मनोः ॥९१॥

श्रीहंसरत्नसूरीशमेवं ध्यात्वा हृदि प्रगे ।
पठित्वा काव्यमेनं चाऽऽप्नुतः नृजन्मनः फलम् ॥९२॥

सम्यक्त्वममलं लान्तु, जीवा मार्गानुसारिणः ।
विरताविरतत्वं च, सम्यक्त्वगुणधारिणः ॥९३॥

श्रामण्यं लान्तु श्राद्धाश्च, साधवः क्षीणमोहताम् ।
इतः परं न मन्येऽहं, काव्यस्य फलमुत्तमम् ॥९४॥

- जहां कई गुरू जिनशासन के दुश्मनों के दल को परास्त करने वाले हैं, जिनशासन का विस्तार करने वाले हैं और जिस समुदाय को प्राप्त करके मैं भाग्यशाली हूं वह समुदाय मुझे जनम-जनम प्राप्त हो ऐसी मैं प्रभु से विनती करता हूं...८९
- आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी हृदय में निरंतर इस प्रकार की (ऊपर बतायी गयी) भावना भाते हैं । गुरु के उपकारों की तरह गच्छ के उपकार बदला न चुकाया जा सके ऐसे होते हैं...९०
- इस प्रकार इस काव्य में आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी के अतिसुंदर जीवन का संक्षेप से, अल्पबुद्धि से वर्णन किया गया है...९१

(उपसंहार)

- ऐसे आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी का इस प्रकार प्रातःकाल में हृदय में ध्यान करके और इस काव्य का वाचन करके (भव्य जीव ! मनुष्य-) जन्म का फल प्राप्त करें...९२
- मार्गानुसारी जीव निर्मल सम्यक्त्व प्राप्त करें और सम्यक्त्वी जीव देशविरति प्राप्त करें...९३
- श्रावक श्रमणजीवन प्राप्त करें और श्रमण क्षीणमोहदशा प्राप्त करें, इससे अधिक उत्तम इस काव्य का फल कुछ हो ऐसा मैं नहीं मानता...९४

फलं काव्यस्य जायेत, तपसि मे प्रवर्तनम् ।
गुणिषु बहुमानं च, देवगुरुसमर्पणम् ॥९५॥

हंसरत्नगुरुर्वर्यः, सम्प्रत्यपि तपस्यति ।
अर्हन्तं प्रार्थयेऽहं यद्- जीवेत्स शरदः शतम् ॥९६॥

यन्मया लिखितं काव्येऽस्मिन् हीनं यदिवाऽधिकम् ।
मिथ्या मे दृष्कृतं भूयात्तदिति जिनमर्थये ॥९७॥

लभेय जैनसाम्राज्यं, लभेय चेदृशं गुरुम् ।
लभेय हंसरत्नाभं, तपस्विनं भवेभवे ॥९८॥

कल्याणहेतुर्भववार्धिसेतुः ।
श्रीहंसरत्नः सुगुरुः स्तुतोऽयम् ।
यत्र स्वलङ्कारमयैः सुवृत्तैः
पक्षः स भद्राय भवत्ववन्याम् ॥९९॥ इन्द्रवज्रा ॥

॥ इति दशमः पक्षः समाप्तः ॥

❊ कलशः ❊

भविचित्तरञ्जनदुरितभञ्जनसच्चिदञ्जनकारणं,
मदमोहद्रोहव्यपोहकारि कर्मवारणमारणम् ।
जयतु चिरं जयतु चिरं भवतु तथा श्रुतिभाजनं,
भुवि हंसरत्नसूरीन्द्रकाव्यं सम्प्रमोदयतु जनम् ॥

॥ इति श्रीहंसरत्नमहाकाव्यं समाप्तम् ॥

- इस काव्य के फलस्वरूप मेरी तप में प्रवृत्ति हो, गुणीजनों के प्रति (मुझे) बहुमान जाग्रत हो और देव-गुरू के प्रति (मुझे) समर्पणभाव उत्पन्न हो...९५

- आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी वर्तमानकाल में भी तपस्या करते हैं और मैं चाहता हूं कि वे सैंकडों वर्ष जीएं...९६

- मेरे द्वारा इस काव्य में यदि अल्प-अधिक लिखा गया हो तो इसके लिए मैं प्रभु के पास मिच्छामि दुक्कडं मांगता हूं...९७

- जनम-जनम मैं जैनशासन, ऐसे गुरुदेव और आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी जैसे तपस्वी को प्राप्त करता रहूं ऐसा चाहता हूं...९८

- कल्याण का कारण, भवसागर को तिरने का सेतु ऐसे इस आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी की जहां (मेरे द्वारा) अलंकारमय ऐसे सुंदर छंदों से स्तवना की गयी है यह (दसवा) पक्ष पृथ्वी पर कल्याण के लिए हो...९९

॥ दसवा पक्ष समाप्त ॥

❊ कलश ❊

- भव्यजीवों के चित्त को प्रसन्न करने वाला, पाप को तोड़ने वाला, सम्यग् ज्ञान के अंजन का कारण, मद-मोह-द्रोह को दूर करने वाला, कर्मरूपी हाथी को नष्ट करने वाला, श्रेष्ठ ऐसे आचार्य विजय हंसरत्नसूरिजी महाराज का यह काव्य चिरकाल तक विजयी हो, कीर्ति का भाजन बने और लोक को आनंदित करे...१००

॥ श्री हंसरत्नमहाकाव्य समाप्त ॥

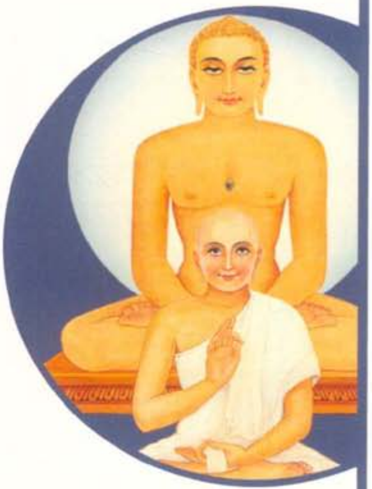

॥ प्रशस्तिः ॥

यस्य पञ्चमकालेऽस्मिन्नप्रतिहतशासनम् ।
पृथिव्यां स सदाकालं, जयता**दन्त्यकाश्यपः** ॥१॥

तदन्वये **सुधर्मा**दिपट्टप्रभावकोत्तमाः ।
जाता भव्यालित्रातारो, ज्ञातारः शास्त्रसन्ततेः ॥२॥

पट्टावल्यां **तपागच्छसाम्राज्य**मतिविस्तृतम् ।
भासते शासनेऽद्यापि, **माणिभद्र**सुरक्षितम् ॥३॥

तत्तपागच्छसाम्राज्यमण्डनः पापखण्डनः ।
आचार्यविजयाऽऽ**नन्दसूरि**रभूद् गुरूत्तमः ॥४॥

तत्पट्टेऽभूत्प्रभावाऽऽढ्यः, शुद्धसंयमपालकः ।
विजयाङ्कित आचार्यः, **कमलसूरि**सञ्ज्ञकः ॥५॥

तत्पट्टे **दानसूरीन्द्र**, आचार्यविजयाङ्कितः ।
सर्वाऽऽगमरहस्यानां, वेद्यभूद् भद्रदर्शनः ॥६॥

॥ प्रशस्ति ॥

- पंचम काल में जिनका शासन अप्रतिहत है उस चरम **तीर्थंकर प्रभुवीर** की धरती पर सदा जय हो...१
- प्रभुवीर के वंश में **सुधर्मास्वामी** आदि उत्तम पट्टप्रभावक हुए जो भव्यों के समुह को बचानेवाले और शास्त्रसमुह को जाननेवाले थे...२
- पाटपरंपरा में जिस **तपागच्छ का साम्राज्य** अतिविस्तृत था वह हाल भी **माणिभद्र यक्षराज** से सुरक्षित ऐसा जिनशासन में चमक रहा है...३

- उस तपागच्छ के साम्राज्य का मंडन करने वाले और पाप का खंडन करनेवाले, गुरूओं में उत्तम ऐसे **आचार्य विजयानंदसूरि (आत्मारामजी महाराज)** (पाटपरंपरा में) हुए...४
- उनकी पाट पर शुद्ध संयम के पालक, प्रभावशाली **आ.वि. कमलसूरिजी म.सा.** हुए...५
- उनकी पाट पर जिनके दर्शन कल्याणकारी हैं वे सकलागमरहस्यवेदी **आ.वि. दानसूरिजी म.सा.** हुए...६

आचार्यविजयप्रेमसूरिस्तत्पट्टभूषणः ।
सञ्जातो गणकल्पद्रुशाखावर्धनदक्षधीः ॥७॥

आचार्यविजयश्रीमद्भुवनभानुसूरिराद् ।
तत्पट्टे सङ्घक्षेमैकदत्तचित्तोऽभवद् गुरुः ॥८॥

आचार्यविजयजयघोषसूरिरभूत्ततः ।
पट्टे विशालगच्छेशः, श्रीसिद्धान्तदिवाकरः ॥९॥

विजयान्वित **आचार्यराजेन्द्रसूरि**नामकः ।
प्रशान्तमूर्तिरारूढस्तत्पट्टे साधुवत्सलः ॥१०॥

तस्य साम्राज्यभूषाऽऽभो, **देवसुन्दर**नन्दनः ।
आचाार्यरत्नसुन्दरसूर्यभूद् विजयाङ्कितः ॥११॥

तस्याशिषां प्रभावेण, काव्यमेतन्मया कृतम् ।
युगसुन्दरसूर्यन्तेवासिना मन्दमेधसा ॥१२॥

- उनके पट्टालंकार, गच्छरूपी कल्पवृक्ष की शाखाओं का विस्तार करने में कुशल बुद्धिवाले **आ.वि. प्रेमसूरिजी म.सा.** हुए...७
- उनकी पाट पर जिनका मन संघ के कल्याण में लगा हुआ है ऐसे **आ.वि. भुवनभानुसूरिजी म.सा.** हुए...८
- उसके बाद की पाट पर सुविशाल गच्छाधिपति सिद्धांत दिवाकर **आ.वि. जयघोषसूरिजी म.सा.** हुए...९
- जिन्हें साधुभगवंतो पर अत्यंत वात्सल्य है वे प्रशांतमूर्ति (वर्तमान गच्छाधिपति) **आ.वि. राजेन्द्रसूरि म.सा.** उनकी पाट पर आरूढ हुए...१०
- उनके साम्राज्य के आभूषण समान, **मुनिराज देवसुंदरविजय** के नंदन **आचार्य विजय रत्नसुंदरसूरिजी** हुए...११
- उनके आशीर्वाद के प्रभाव से **आचार्य विजय युगसुंदरसूरिजी म.सा.** के शिष्य ऐसे मेरे द्वारा अल्पबुद्धि से यह काव्य किया गया है...१२

अपार्थाऽश्ववसुन्यादहीरपविकजप्रियः ।
नाहमस्मि परं नाम, ममाऽस्मिन्नेव विद्यते ॥१३॥

गृह्णात्यलिः पद्मरजो न पद्मं,
स क्लामयत्येवमिह प्रगल्भाः ।
लिहन्ति काव्यस्य रसं न काव्यं,
प्रदूषयन्ति स्फटिकाऽऽशयास्ते ॥१४॥ ॥ उपजातिः ॥

यद्यपि पूर्णयत्नेन, काव्यमेतत्परीक्षितम् ।
तथापि यदि दोषः स्यात्, शोध्यस्तर्हि स वेदिभिः ॥१५॥

रम्यं रम्यतरं भूयात्, सद्भिर्यदि परीक्ष्यते ।
चन्द्रः शुभ्रतरो भूयादङ्को यद्यपनीयते ॥१६॥

सप्तसप्ततिसम्पृक्तद्विसहस्रतमेऽब्दके ।
वैक्रमेऽत्र मङ्गलापुर्यां, मुम्बापुर्याः प्रभागके ॥१७॥

सृष्टो **वीरर्षिणा** सप्तविंशतिभवसत्स्तवः ।
यद्दिने तद्दिने ह्येव, काव्यमाप्तं समापनम् ॥१८॥ युग्मम् ॥

॥ स्वस्ति सकलसङ्घाय ॥

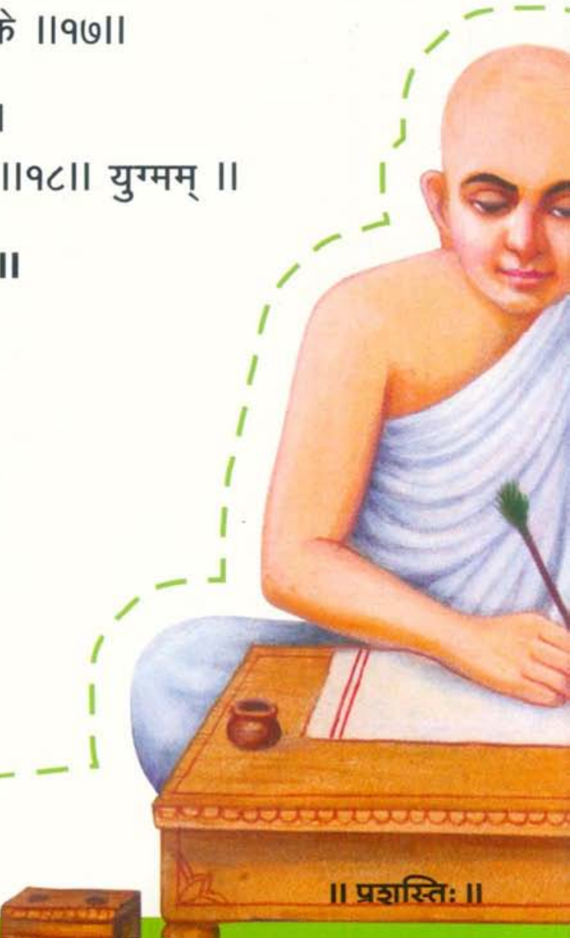

- **अपार्थ** = खराब तर्क, अ**श्व**, व**सु**=संपत्ति, **न्याद**=भोजन, ही**र**=हीरा, प**वि**=वज्र, क**ज**=कमल जिसे प्रि**य** है ऐसा मैं नहीं हूं फिर भी इस श्लोक में मेरा नाम (पार्श्वसुंदरविजय) विद्यमान है...१३

- भौंरा पुष्प में से पराग चुन लेता है और पुष्प को पीडा नहीं देता उस प्रकार विद्वज्जन काव्य का रस चख लेते हैं मगर काव्य को दूषित नहीं करते...१४

- यद्यपि पूर्ण यत्न से इस काव्य का परीक्षण किया गया है, फिर भी यदि दोष रह गया हो तो विद्वानों के द्वारा वह सुधारने योग्य है...१५

- कलंक को दूर किया जाए तो चंद्र अधिक उज्ज्वल बनेगा, यदि सज्जनों के द्वारा इस (काव्य) का परीक्षण किया जाए तो यह सुंदर काव्य अधिक सुंदर बनेगा...१६

- विक्रम संवत २०७७ में यहां मुंबई के मुलुंड नाम के विस्तार में **पूज्य वीरविजयजी महाराज** के द्वारा जिस दिन (प्रभु वीर का) २७ भव का स्तवन रचा गया उसी दिन **(श्रावण सुदि १५)** यह काव्य समाप्त हुआ...१७-१८

॥ श्रीसंघ का कल्याण हो ॥

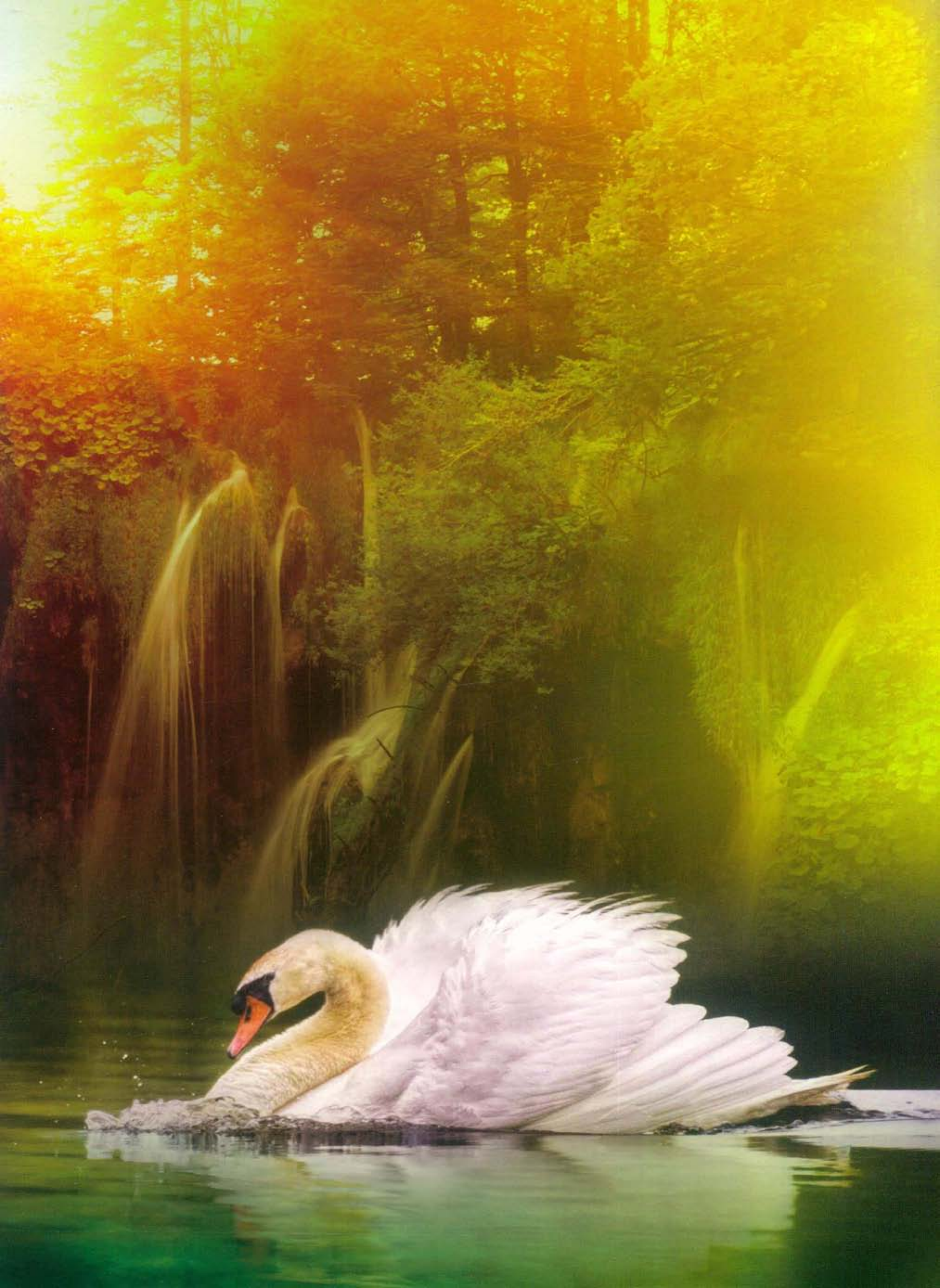

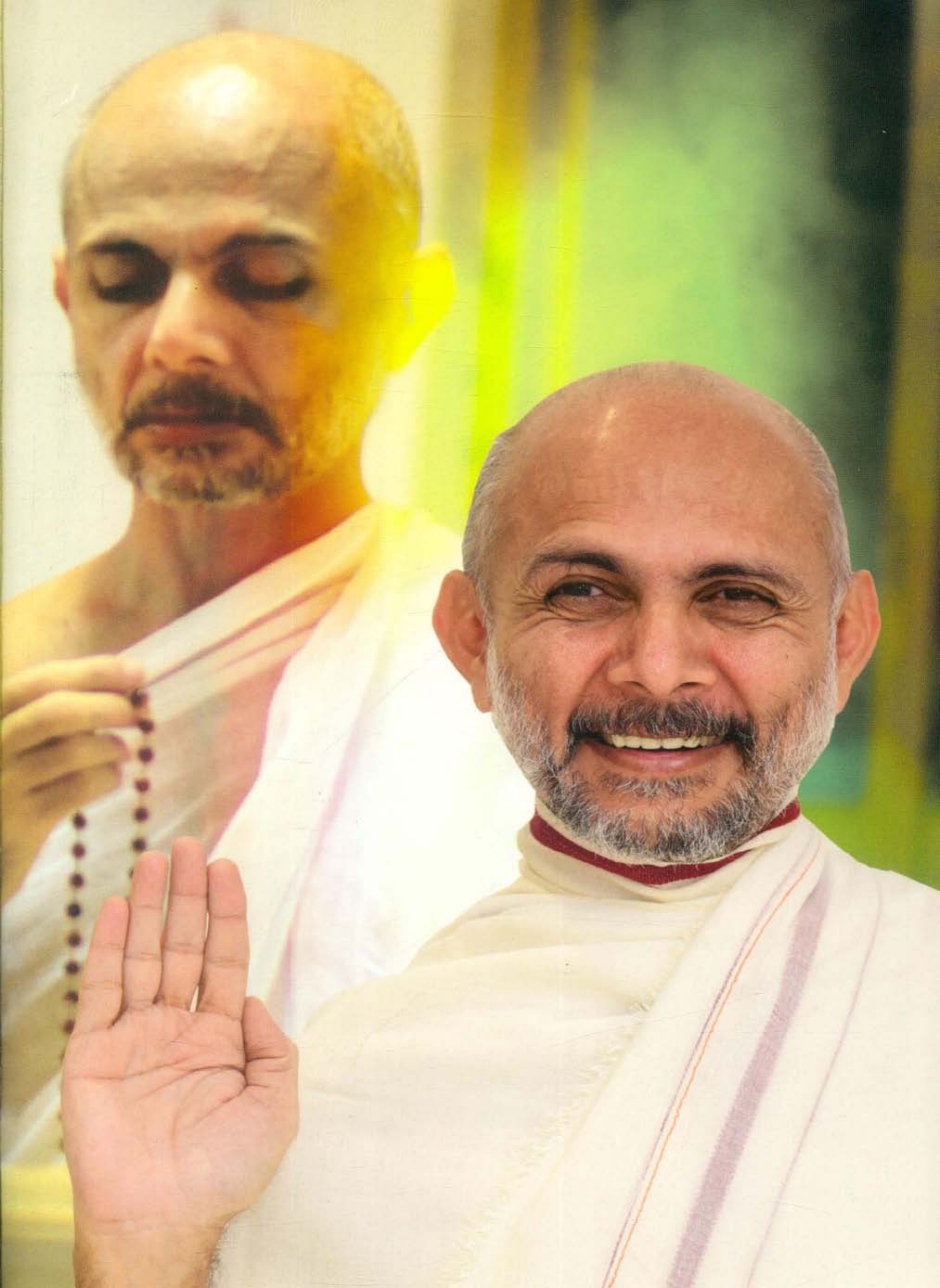

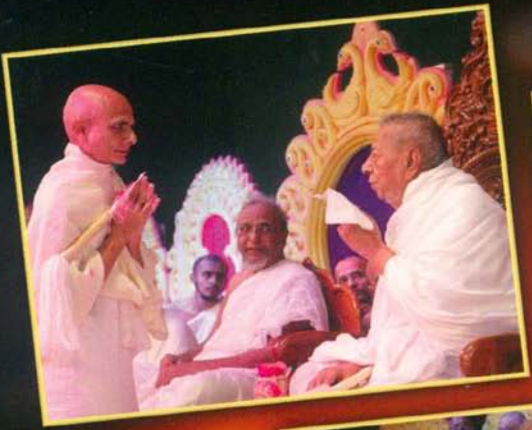
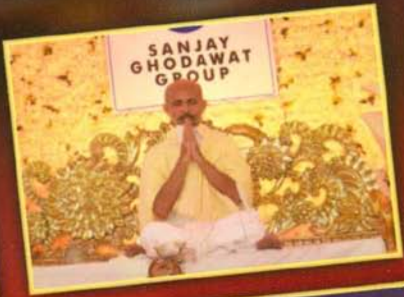
SANJAY
GHODAWAT
GROUP

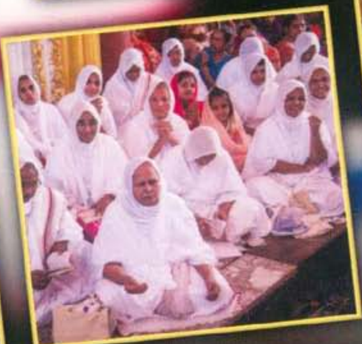

પારણોત્સવ

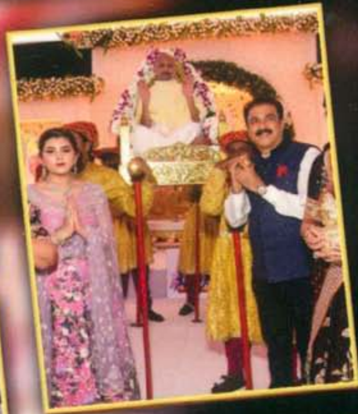

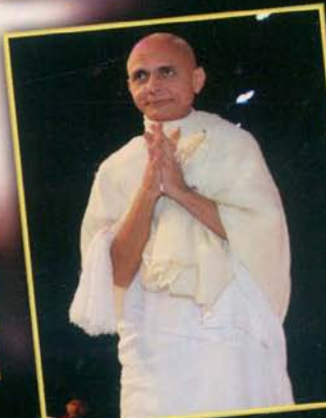

हंस हंसेति जापेन,
नश्यति सर्पजं विषम् ।
हंसरत्नेति नाम्नैव
मोहविषं प्रणश्यति ॥

"हंस हंस"
इस प्रकार जाप करने से
सर्प का जहर उतर जाता है ।
जबकि
आ.वि. हंसरत्नसूरिजी के
नाम मात्र से ही
मोहरूपी विष का
नाश हो जाता है ।

तो चले,
हंस के कदम-कदम पर
इस महाकाव्य के मानसरोवर में
एक डूबकी लगाएँ...

Nehaj
28736745 9322227939